

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj)**

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

आजकलका भारत

रमेश धापर

कृत " INDIA IN TRANSITION " का

हरिशंकर और

रवीन्द्रनाथ चतुर्वेदी

द्वारा किया हुआ अनुवाद.



मयूर
किताबें

कीमत १-७१

प्रथमावृत्ति १९५८

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
वा. ग. टवले
कॅन्टॉक मुरणालय
चौरावजार, बम्बई २

प्रकाशक
वा. ग. टवले
मयूर सिताबें
चौरावजार, बम्बई २

चि० मालविका
और वाल्मिक को
वे अपने
वचन के
इस कालिका
किसी समय
सिंहावलोकन
करेंगे, इसलिए...

विषय - सूची

विहंगावलोकन	६
भूत			
१ - सत्ताहस्तांतरण	३
२ - एकीकरणका आरम्भ	१३
३ - एक युगका अंत	२०
४ - दो प्रवृत्तियाँ	४०
५ - शीतयुद्धका तर्क	५३
६ - कमिंसकी आर्थिक नीति	६६
७ - नई प्रवृत्तियाँ	७७
८ - भाषावाद	८३
वर्तमान			
१ - महत्वपूर्ण वर्ष	१०३
२ - प्रचुरताकी योजना	१३१
३ - सौहार्द्रताका प्रसार	१६७
४ - पंचशील क्यों ?	१८३
५ - राजनैतिक शतरंज	१६८
भविष्य			
१ - सार्वजनीन एकता	२१५
२ - नव चिंतित	२३७
सूची	२४३

वि हं गा व लो क न

एक भारतीय दार्शनिकने कहा है, कि “मुझसे मेरे देशके विषयमें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। राजनीति और अर्थशास्त्रके सामान्य निदान्तों द्वारा भारतकी न तो विवेचना ही हो सकती है और न उसके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकता है। हम पूर्णरूपेण विविन्न हैं। मोहन जोदपो और हड़प्पा युगमें आज तक पिछले पाँच हजार वर्षोंमें हम तन्मय और मुसकृत ही रहे हैं। पराजय तथा निराशा, विजय तथा स्वपालके बावजूद भी हमारे विचारों और व्यवहारोंकी सुसज्जना कायम है। हम सदैव विविन्न बने रहेंगे। भारतीय इतिहास तथा हमारे दृष्टिकोणके निर्माता बुद्ध, अशोक, अकबर और गांधी जैसे महापुरुषों और उनके आशेलनोंमें यही शिक्षा मिलती है। जब बूँकि हम पुनः स्वतंत्र हो गये हैं, हम विश्वकी प्रगति हेतु नवीन पथोंको प्रकाशित करेंगे ! ...”

और इस प्रकार यह अनुमान किया जाता है कि भारत शांति स्थापनका प्रयत्न हम कारण करता है, क्योंकि वह सदैव शांतिमय विचारोंका केन्द्र-स्थल रहा है। देशके नेता समाजवादका उपदेश हम कारण देते हैं, क्योंकि समस्त युगोंमें भारतीय व्यवहारका यही अत्यावश्यक तत्व रहा है। अहिंसा, शाकाहारिता, नैतिक, आत्मिक, रहस्यात्मक मूल्य, पुनर्जन्मकी कल्पना, समा करो और भूल जाओ आदि अनेक गुण हमारी राष्ट्रीय योग्यताके प्रमुख तत्व हैं। सबसे बड़ी बात यह बही जानी है कि हम अपने आगामी जीवनके निर्माता हैं और वर्तमान कर्मोंके अनुसार हम उसे अच्छा या बुरा बना सकते हैं।

हमने कतेमान युगके अंदर लौह और बौद्ध आवरणके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुना है, लेकिन इन मिथ्या धारण की भित्तिके विषयमें हमें अत्यंत अल्प ज्ञान है। इसने भारतीय घटना सम्बन्धी हमारे ज्ञानकी आच्छादित कर रक्खा है। भारतीय कार्यवाहियोंकी योही बहुत अद्वितीय आत्मिक शक्तिमें प्रेरित प्रमाणित करनेके लिये कुछ उल्टे-सीधे उदाहरण प्रस्तुत करना मनोरञ्जनका एक उपयोगी साधन हो गया है।

एक सामान्य सर्वेक्षण के उपरान्त हमें इस बात पर विश्वास हो जायगा। भारतीय स्वतंत्रता करोड़ों व्यक्तियों के बीरतापूर्ण संघर्ष और अन्यायों सहकर नहीं, बल्कि सभ्य कार्यों द्वारा प्राप्त की गई थी। और आजकल समाजवाद को बिना किसी प्रकार के वर्गसंघर्ष के प्राप्त किया जा रहा है। ऐतिहासिक तर्कों द्वारा भूमि पुनर्रचना प्रयत्न हो रहा है। राजनैतिक विरोधों को भी इसी तरह अनशन तथा आत्मशोधक उपवासों द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है। आयकर बचा कर 'स्वेच्छया' अंशदान स्वरूप जमा कर दिया जाता है। 'अहिंसा' आगे बढ़ कर सर्वोदय और दानका रूप धारण कर लेती है और दानों को भी अनेक प्रकार के जैसे भूदान, संपत्तिदान, जीवनदान, धर्मदान आदि।

हमें बतलाया जाता है कि सनस्त 'बादों' का समय व्यतीत हो चुका है। केवल दान ही सदैव के समान बात भी प्रामाणिक और अत्यावश्यक बना हुआ है। यथार्थता बादी इस अनुसिद्धि को पुनर्जीव देते हैं। इस बात पर विश्वास न करनेवाले लोगों को उन देशद्रोहियों के साथ सम्बन्धित किया जाता है, जिन्हें विदेशी खेतों में मोल्नाहन प्राप्त है।

क्या हमने अपने अहिंसक भूतकाल में तथा आजकल भीषण और साहसिक उत्तेजना के दर्शन नहीं किये हैं? क्या हमारे देश के लक्ष्मणी किसी भी स्थिति में समाजवादी प्रक्रिया का विरोध नहीं करेंगे, जिसके कारण समाज के अंदर उनकी स्थिति उपेक्षित हो गई है? क्या भारतीय जमींदारों ने अपने किसानों को अपने समक्ष रखे जाने के प्रत्येक प्रयत्न का सदैव विरोध नहीं किया है? यदि लोग अपने कर्तव्य को पूरा-पूरा जमा कर दिया करें तो अंशदान को क्या आवश्यकता है? इस तरह के प्रश्न निश्चित रूप से सार्थक हैं। किन्तु हमारे मौलिक विचारों को यह बातें अप्रबलित प्रतीत होती हैं।

सम्भव है कुछ लोग इसका कारण जानने का शोध संवर्धन न कर सकें। हमका उत्तर भी तैयार रक्खा है। हमें वर्तमान भारतीय जागरूकता की प्रगति समझाई जायगी। तत्पश्चात् हमें ऐसे सुवृत्त इतिहास की ओर अनुसरण किया जायगा जिसमें किसी एकान्ती घटना निर्मात्री अनेकानेक पापों और अन्यायों की उपेक्षा की गई हो।

परिणामस्वरूप हमें निम्नलिखित सत्तों और अर्थसत्तोंका एक अजीब सम्मिश्रण देखनेको मिलेगा जिसमें यदा कदा थोड़ा-बहुत अंतर पड़ सकता है।

तथ्य १ — जहाँ एक ओर सन १८५७ में राजाओं तथा सामन्तोंने स्वतंत्रता संग्रामके अवसरपर भारत-वासियोंका नेतृत्व किया, वहाँ दूसरी ओर इसके आगे और पीछे राजा राममोहन राय जैसे सुधारक और स्यातिशास विचारक जल्द-बाजीसे मुक्ति प्राप्त करनेका विरोध करनेके लिये शेष रह गये। लुटेरों, दुसाह-सिक्कों और धार्मिक रहस्यवादियों आदि सभीको सार्वजनिक निष्ठा प्राप्त हो गई। साथही साथ साहसी अन्वेषक मस्तिष्क जो समयके साथ चल रहे थे, पृष्ठभूमिमें पहुँच गये।

तथ्य २ — बीमवी सताव्वी आते आते आतंकवादी विप्लवी गुप्त सस्थाके स्थानपर ए. सी. ह्यूम नामक एक अमेरिकी भारतीयोंकी राजनैतिक आकाङ्क्षा की ओर ध्यान अतृष्ट किया और एक ऐसी सस्थाकी नींव रखी जो आगे चल कर 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' कहलाई। उन्होंने यह कदम एक सुरक्षा कपाट पानेके लिये उठाया था। परन्तु फिर भी उन्हें भारतीय स्वदेशाभिमान की लोकोत्त समर्थन मिला।

तथ्य ३ — जब इसके मजदूर जारशाहीकी जड़ खोदनेमें व्यस्त थे और जब साम्यवादी विचार संग्रामके अनेक भागोंमें व्यक्त हो रहे थे, उस समय भारतीय राजनीतिके पथ-प्रदर्शक, विद्रोह मिहामनके प्रति स्वाभिभक्ति प्रदर्शन सम्बन्धी बातचीतमें लगे हुए थे।

तथ्य ४ — भारतने लेनिनके स्थानपर गांधीमें क्रांतिकारी भावनाके दर्शन किये थे। गांधीने स्वतंत्रता संपर्गमें सविधानवादी दमदलसे निष्कल कर सार्वजनिक कार्यवाईके सुरक्षित धरातलपर ला रक्खा। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो भारतीय संगमचपर सक्रियता आ गई है। इसके पश्चात सत्य और नैतिक शुचिताकी प्रधानता देनेवाला अहिंसक शांतिपूर्ण सत्याग्रह आया। इसके अजीब रूपका ससार उपह्वान करता था। किन्तु लगेपड़ीधारीकी बोझ ही दिनेकि अंदर अभूतपूर्व सङ्घर्षमें अपने अनुयायी प्राप्त हो गये। उनके नेतृत्वमें यह संपूर्ण उपमहाद्वीप सक्रिय हो उठा।

तथ्य ५ — चीनकी क्रांतिने उद्देक्षित कर रक्खा था। भारतमें शांतिपूर्ण सत्याग्रहका प्रभाव था। चीनमें रक्तकी नदियाँ बहती थीं। भारतमें रक्तकी एक

बूंदके गिरते ही सन्ध्यायुद्ध रोक दिया जाता था। चीनके अंदर साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी झुंझार अभियान तीव्रतर होता गया। भारतमें भी तीव्रता तदनुरूप ही थी, किन्तु अंतर्वत्सु पूर्णतया भिन्न थी। साम्राज्यवादका सर्वनाश नहीं करना था, बल्कि उसे सशान्त बँकना था।

तथ्य ६—फासीजम सामने आया। समारमें महायुद्धकी दुंदुभी बज उठी। एशियाके सुविस्तृत प्रदेशोंको जापानने परेस्तले रौंद डाला। जनता विरोध करनेके लिये सज्जिन हुई। भारतमें क्या हुआ? भारतवासियोंने युद्धकर्मोंमें असहयोग किया, क्योंकि उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई थी। उन्होंने विरोध नहीं किया। उन्होंने सहायता भी नहीं दी।

तथ्य ७—जब आनकवाद फासीजम भूलुडित हो गया, जापानके विरोधमें लड़नेवाले एशियावासियोंने अपनी बंदूकोंमें मुँह पुराने परिचमी आकाताओंकी ओर फेर दिये। औपेक्षी तरह एशियाभरमें औपनिवेशिक युद्ध आरम्भ हो गये। लेकिन भारतमें यह बात नहीं हुई। ब्रिटिश शासन समाप्त करनेके लिये शांति पूर्ण वार्ताएँ आरम्भ हुई और अंतमें सफल भी हुई, वाहे देशका विभाजन भले ही करना पड़ा हो। आकांता और आकात दोनोंने सैन्यता स्वरूप हाथ मिला लिया।

तथ्य ८—अब साम्राज्यिक दंगोंका दैनिक रूप दिखलाई पड़ा। क्या यह इस बातका प्रमाण था कि भारत भी रक्तप्रेमी है? निश्चित रूपसे नहीं। अन्यथा क्या बापूकी भयरहित बाणीको शांत करनेवाली हथौड़े की गोलियोंके अकसर पर आपुनिक आधर्मिक दर्शन हो सकते? इस दुःखद घटना की समझालीन साम्राज्यिक शांतिकार नातुक संतुलन मुट्ठ होना गया। अनेक उतेजना फैलाने वालोंके पदचक्रों और छेड़छाड़के बावजूद भी जो यशस्वय यत्न तब कथम मचानेमें सफल हो जाते थे, शांतिकार साम्राज्य कथम रद्द तथा साम्राज्यिक मेलजोल बना रहा। क्या इतिहासमें अन्य कोई ऐसा उदाहरण खोजनेपर मिल सकता है, जहाँ केवल एक व्यक्तिके बलिदान द्वारा शाना भारी परिवर्तन सम्भव हुआ हो?

वि हं गा व लो क न

यदि अब भी आपको भारतके अद्वितीय रूपसे कुछ संदेह रह गया हो तो आपकी ऐसी धारणाको मिटानेके लिये अन्य अनेक " निर्णयात्मक तथ्य " दिखलाये जा सकते हैं ।

तथ्य E - जिन लोगोंने अंग्रेजोंके साथ सत्ता हस्तांतरण विषयक शान्तिवार्ता की, वे संदनके आश्रित बने रहनेके लिये तैयार न थे । उन्होंने क्रमिक रूपसे अपनी निराश्रयता अधिकाधिक प्रदर्शित की । भारत राष्ट्रमंडलसे सम्बंधित रहनेके उन्नात भी अपनी परराष्ट्रीय नीतिके अंतर्गत राष्ट्रीय पारस्परिक शान्ति समर्थन करता है, यह स्थिति साम्राज्यवादी हितोंके पूर्णतया विपरीत है ।

तथ्य १० - यह नीतिके अंदर सरकारने सीमिन मताधिकार और गतवाक्तीन सुविधान लागू करके अपने आपको सन्तुष्ट नहीं किया । एक अधिक नवीन एवं लोकतांत्रिक स्वरूपकी रचना की गई है । एक वर्गकी अपेक्षा दूसरे वर्गके पास अधिक धन और सुविधा उपलब्ध होनेकी अवस्थामें जिनने निम्न और स्वतंत्र सामान्य चुनाव सम्भव हैं वैसे ही भारतमें भी हुए । और इसके परवान में जीवियोंने मजदूरोंकी पुनार पर ध्यान देकर दस वर्षके अंदर समाजवाद प्राप्त करनेका वचन दिया । जनताको उन्होंने यही विश्वास दिलाया था ।

अभी तक हमने अंतिम तथ्यके विषयमें तो कुछ सुना ही नहीं है जो समय बीतनेके साथ साथ अधिक शक्तिशाली होना जायगा और हममें कोई संदेह नहीं कि लोगोंके अंदर यही दृष्टिकोण अपनावनेकी प्रवृत्ति प्रमुख रूपसे विद्यमान है । वे घटनाओंमें से ऐसे ही तथ्य खोज निकालते हैं, और उनमें से भी केवल उन्हीं पर ध्यान देते हैं जिनमें उन्हें सतोष होता है तथा अन्योकी अपेक्षा कर देते हैं । वे सरकार और जनताकी प्रगतिको एक निश्चित रूपमें प्रस्तुत करते हैं तथा उन अनेक परस्पर विरोधी तत्वोंकी अपेक्षा कर देते हैं, जिनसे मिला कर उस निश्चित रूपकी रचना हुई है । वे यह अनुमान कर लेते हैं कि घटनायें एकात्मिक रूपमें लीह मुहल सीमाओंके अंदर बन सकती हैं और दुराग्रहपूर्वक इस बातको अस्वीकार कर देते हैं कि दिल्लीके विचारों पर सुदूरवर्ती प्रदेशोंकी प्रगति भी कुछ असर पड़ा होगा ।

भारतीय घटनाओं की विशिष्टता

इस बातको तो कोई व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारतवासियोंकी और भारतीय घटनाओंकी अपनी एक खास विशिष्टता रही है और रहेगी।

इस विशिष्टताका उद्भव केवल भारतीय रूढ़ि नामक भावात्मक तत्वसे ही नहीं बल्कि उस बेगरील सक्रमणाने भी होता है जिसे आज समस्त समार देख रहा है। वस्तुतः हम नवीन आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक स्तरोंके प्रति अधिकारिक जागरूक होते जा रहे हैं, जिनका हमें पहले न तो अनुभव ही होता था और न हमारी धारणा हो थी। पर्यान्त विलम्बके पश्चात् औद्योगिक क्रांति हमारे ओर अपसर हो रही है। भारतीय रूढ़ि हमने प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती।

फिर भी समस्त बाहरी प्रभावोंका भारतके अंदर प्रविष्ट होते समय घोर-बहुत परिवर्तित हो जाना आवश्यक है। इसके अंदर कोई अहिंसीयता नहीं है। सभी लोगोंने यह सामान्य अनुभव रहा है।

जीवनके सभी स्तरोंमें सुधार और समन्वयका प्रभाव देखनेको मिलता है। भारतवासी निरल और विरक्त थे। वे यह भी जानते थे कि उन्हें ऐसे विदेशी शासकोंका सामना करना पड़ रहा है, जो अपने देशके उदार दबावके प्रति सचेत थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलनने नेतृत्व द्वारा सर्पक मार्ग खोजनेके लिये यह तथ्य ही पर्यान्त औचित्य प्रस्तुत करते हैं। इस सर्पक स्वरूप पृथक हो सकता था लेकिन जिन सचेतोंने भारतवासियोंको ऐसा करनेके लिये प्रेरित किया, वे लगभग वैसा ही थे जैसे वर्तमान युगकी सभी क्रांतिकारी सार्वभौमिक प्रेरक हैं।

गांधीजीकी अहिंसक पीछा फासीस्ट जर्मनीके सैनिकोंके सामने विम क्षमते आती। जिन विरोधोंने उनके विरुद्ध हलकी-सी भी आवाज उठाई थी, उसे उन्होंने नेस्तनाबूद कर डाला था। युद्धके कारागिरियों (कैदेन्देशन कैदों) में लाखों व्यक्तियोंको मौतके घाट उतरना पड़ा। यह सोचना कि वे सत्य और हानकी अपील के सामने मुक्त जाँगे, सिर्फ उपहासास्पद कल्पना है।

स्वतंत्रता सपने तथा उसके पश्चात् प्रभावोंके अनेकानेक स्वरूपोंमें ऐसे अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। सपनोंमुख स्वदेशाभिमानी दृष्टिकोणके लिये यह आवश्यक संशोधन है जो आवश्यक इस देश तथा इस देशवासियोंके लिये सुझाई जानेवाली अनेक विषय और कभी कभी उपहासास्पद सिद्धान्तोंकी नींव प्रस्तुत करते हैं।

वि हं गा व लो क न

अन्य राष्ट्रों के समान ही भारतके भी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परीक्षाओं का सामना करना पड़ेगा। वेद, रामायण, महाभारत, बुद्ध, अरोक, अस्वर और गांधी, संघर्षनामादो सन्यासों और रहस्यवादियोंकी भूमि भी आणविक युगकी कठिन वास्तविकताके सामने इतनी ही अधोमुख है, जिनना राजादियोंकी गुनामीके दरबारत नव जागरण प्राप्त करनेवाला चीन है।

जो लोग हर्ने 'दान' प्राचीन धर्म पुस्तकों एवं भोजनों पर आलेखित प्रयोगों और प्रत्यावर्तित करना चाहते हैं, उन्हें पुनः विचार करना पड़ेगा। ईर, बुद्ध, जोरास्टर, ईसा, मुहम्मद, कन्फ्यूशियस, स्वामीजी आदि अपने समयमें एशियाके शक्तिशाली महापुरुष थे। किन्तु वर्तमान युग भूतकालीन सर्वरोगाग्र औरधियोंके सहारे जीवित नहीं रह सकता। उसे उन समस्याओंका उत्तर खोजना पड़ेगा जिनका सामना उनके पूर्वजोंने कभी न किया हो।

इसी प्रकार हर्ने उस बातका भी उत्तर खोजना पड़ेगा जिसे भारतका "एक बड़ा प्रदत्तवाचक चिन्ह" कहा जाता है। उस नवविकसित भारतका जो मानव जीवनकी कठिनाईका रूप निर्धारित करनेवाला प्रमुख शक्तियोंमें से एक है। जब तक यह 'प्रदत्तवाचक चिन्ह' रहता है तब तक निर्णयात्मक बीसवीं शताब्दीके उत्पत्ति का रूप निर्धारित करनेवाली उसकी कार्यस्थिति का मोटे तौर पर अनुमान लगाना भी कठिन है।

वस्तुतः भारतकी स्थिति अविच्छिन्न विनम्र होनी जानी है, क्योंकि जहाँ योजनायें और कुछ रूपोंमें उनके परिणाम भी प्रभावोत्पादक हैं, वहाँ लोगोंकी परिस्थिति योही ही परिवर्तित हुई है। भूमिपर जोतनेवालोंका अधिकार नहीं है। एक छोटेने व्यापारी वर्ग द्वारा भारी लाभ उठाये जाते हैं। विदेशी विनियोजन भी बढ़े हैं और अर्थव्यवस्थामें प्रविष्ट होते जा रहे हैं। मामूली विरोध प्रदर्शनको कुचलनेके लिये अभी तक गोलियों बरसाई जाती हैं। भयंकर और सिंघारशका बाजार गर्म है। परंतु जनता सामान्यतया कांग्रेसपार्टी सरकारका समर्थन करती है। इसी कारण कांग्रेसको पूर्ण आत्मविश्वास है कि वह १९१७ में होनेवाले आम चुनावमें विजयी होगी।

वर्तमान निर्णायक संधिकालमें इस परिस्थितिके समझना, उसमें सक्रियता उत्पन्न करनेवाली और उसका निर्देशन करनेवाली मुख्य प्रवृत्तियोंको देखना, देशके राजनैतिक जीवनके लिये अत्यंत महत्वपूर्ण है।

किसी विशेष व्यक्तिवको उन्मूलक स्थिति पर विन्हीं नीतियोंको आधारित बदलाना, समस्त उपलब्धियोंको अस्वीकार करके स्वयं रूपमें वितर्क करना, भारतकी नवोदित परिस्थितियोंमें दूसरे देशोंके अनुभवको यथार्थ लागू करना आदि बातोंका परिणाम राष्ट्रीय प्रगतिके आंदोलनको निष्प्रभाव करना है और फलस्वरूप वह इस सकटपूर्ण समयमें प्रतिरक्षा करनेमें असमर्थ और नेतृत्वहीन हो जायगा।

भारतके वर्तमान स्वरूपको देखते हुए ऐसा सकट बिना किसी चेतावनीके अकस्मात् प्रकट हो सकता है और उसमें देशकी शान्तिप्रिय विचित्र जनताके जोशों पर प्रक्षेपित होनेवाली अनेक आशयों भी हूव सकती हैं।

अगस्त १९५६

भूतकाल

सत्ता हस्तान्तरण

गिरि, समुद्र, धरती, नाचै, लोक नाचै हँस रोद ।

—कबीर

ज्योतिषियोंसे भविष्य पूछनेकी आदत हम भारतवासियोंको पूर्वजोंकी देन है । भविष्यमें क्या होगा, यह जाननेकी जिज्ञासा राजनैतिक क्षेत्रमें भी दिखाई पड़ती है ।

हमारे आधुनिक इतिहासमें सी-भी बयोंमें कालान्तर हुआ है, विद्वत्पूर्वक आज भी ऐसा कहनेवाले कम नहीं हैं । १७५७ में प्लासीकी सफाई, इसके बाद १८५७ में विदेशी सत्ताके विरुद्ध पहली क्रांति हुई और सी बयों बाद भारत स्वतन्त्र होगा — अर्थात् १९५७ में ।

परन्तु ॥ भविष्य वृत्ताओंकी गणनामें कहीं कुछ गलती जरूर हो गई । हमें इस सत्ता पहलू ही १९५७ में स्वतन्त्रता मिल गई । अतः ये १० वर्ष हमारे इतिहासमें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इस अवधिकी घटनाओंका दूरगामी प्रभाव हुआ ।

सन् १९५७ के पहलेका काल बहुत ही उपलब्ध-सुखलका था । सत्ताके अर्थात् प्रबल माघाज्यवादको हमने आन्दोलन दिया था । परन्तु हमारा आन्दोलन अहिंसात्मक था, नैतिक मामलार्थ और सत्याग्रहका था । हमारे आराम किये हुए सत्याग्रहका जोर धीरे-धीरे बढता गया, उसमें किमानोंकी जागृति थी, मजदूरोंका आन्दोलन था । उपवास — ‘भूख हड़ताल’ — जेल जाना — जेलमें हूटना आदि जारी था । उस अभिनव ‘शस्त्र’ का परिणाम व्यापक और चिरकालीन होनेवाला था । उस समय हमारी निर्भय मानना प्रकट हुई । शौर्यको विस्वास मिला । उसी कालमें साम्यवादको हमने स्वीकार किया, पीछे हटे और गढ़बज मचानेके करणीभूत हुए । इस गढ़बजीमें दो बातें विलकुल स्पष्ट हो गई ।

पहली : अभिज्ञोके अन्धकारसे जनताका निरचय दूर हुआ ; विदेशी सत्ताका मुकाबला करनेके लिए — स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए, लाखों लोग आन्दोलनमें शामिल हुए ।

“इन्कलाब जिन्दा बाद!”

दूसरी : स्वाधीनता की घोषणा अधिक स्पष्ट, अधिक तीव्र हुई। केवल अंग्रेजों को हटा देने के ही चैन चलने वाला नहीं, यह बात भी लोगों की समझ में आ गई। उन्होंने अर्थिक-मर्यादा के स्वतंत्रता की मांग की। इसके बिना राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं। राष्ट्रीय समाने सचका मिलान हुआ था—स्वातंत्र्य प्राप्त करने वाले—उमर के लिए सुझावला करने वाले—मर्मा और एक छत्रछाया में रहने हुए—राष्ट्रीय समाने के मंडके नीचे आये—और ‘इन्कलाब जिन्दाबाद’ में आवाज गूंज उठा।

स्वाधीनता आन्दोलन के समय ये दोनों ही बातें बिल्कुल स्वाभाविक थीं। परन्तु साम्राज्यवाद को समझने में पहले तो उसे बहुत बड़ा धक्का लगा। इस समय समानवादियों के मुख-स्थ—नये समान की नवीनता; आकर्षक लग रही थी। विदेशी साम्राज्यवाद के बदले स्थानीय पूँजीवाद की स्थापना करके चलने वाला न था। आकाश में फिर खरपर उड़ने के समान एक के चंगुल में मिलाकर दूसरे के बंदीखाने में पड़ने की ताकत न थी। हाँ, यह अवसर था कि यह चेतना हमारे समान न थी। कुछ लोगों में तो स्पष्ट थी, पर कुछ में अस्पष्ट थी। किन्तु हम चेतना के एक स्तर पर पहुँच गए, कि हमारा आन्दोलन सुन्य-स्थिति हुआ। स्थानीय पूँजीवादियों के हाथ की कठपुतली बनने की शलसे हम बच गये।

दूसरे महायुद्ध के समय हमारे इन आन्दोलन की दिशाएँ अन्तरी त्वरित हुईं। जर्मन-जापानी जीतें अनेक नाष्टन पड़ीं। यूरोप खंड लगभग तिन टुकड़ों में चीन और दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों पर जापानी सैनिकों ने अपनी जोरदार हमला बजाई। ब्रिटिश, फ्रेंच और डच साम्राज्यवादियों को अन्तः ही पड़ी। अमेरिकी युद्ध की लड़ाई अधिक न हुई थी। फामिष्ट मरणा की रोहगा पक्ष भारत की ओर बढ़ रही थी—बीराने समाने की स्थिति में मरणा की वजह हमारी हुई—और अन्तः की मरणा की वजहों की ओर।

ऐसे समय अन्तः की मरणा की वजहों की ओर। हमारे देश में भी वही हाल होगा, ऐसा हम सोच रहे थे। परन्तु सोच अनुसरी हो चुके थे, उन्होंने साम्राज्यवाद से किसी भी अवस्थान में समझना न करने का निश्चय लिया था।

स चा ह स्ता न्त र ण

राष्ट्रीय सभाका कहना था कि हमारी स्वायत्तता की मांग स्वीकार करें। ऐसा होनेपर ही हम फासिस्ट आक्रमणके विरुद्ध लड़ेंगे, राष्ट्रीय सभाका यह आग्रह था। पर अंग्रेजोंकी ओरसे कोई उत्तर आना सम्भव न था। फासिस्ट विजयी हुए तो समारकी हिन्दुस्तानकी—क्या परिस्थिति होगी, इसकी कल्पना दूसरोंकी अपेक्षा पं. नेहरू को अधिक थी, इसलिए देशी और विदेशी प्रयत्न उन्होंने किये। उनका यह प्रयत्न इसी उद्देश्यसे था कि कोई उपाय निकलना है क्या, देखना चाहिए।

परन्तु ब्रिटिश सरकारको अन्तर्ज्यो की स्थिति रही। सर स्टैफर्ड क्रिप्स जैसे प्रतिनिधियों से कहकर देखा, पर व्यर्थ। फासिस्ट विरोधी, साम्राज्यवादका विरोध करनेमें ऐसी विचित्र अवस्था शायद ही हुई हो। आन्दोलन रोगना असमर्थता था और उस आन्दोलनके कारण जापानी पीजको मराना दिखाकर बुलाने जैसा हुआ होता। बम्बईकी सीमा पर वे जमाकर बैठे ही थे।

‘भारत छोड़ो’ ऐसी घोषणा आवश्यक हुई, परन्तु संगठित आन्दोलन आरम्भ नहीं हुआ। वैसा हुआ होता तो ब्रिटिश सेनाका यहाँ कहीं भी पता न लगता होता। वे अपनेमें ही उलझकर रह जाते और चानीस करोड़ जनताकी यह क्रांति सरल हुई होती। क्योंकि सहृदयपर कदाई करनेके लिए सारी चीजें तैयार थी।

जापानी सेना बंगालमें प्रवेश करे यह कल्पना ही नेगाजी सुभाषचन्द्र बोसकी आई. एन. ए. के कितने ही लोगोंको अशक्य लगी थी। आई. एन. ए. के पहले स्थापक मोहनसिंह तो जेलमें थे, क्यों कि जापानियोंका आधिकार्य मानने में उन्होंने इन्कार कर दिया था। स्वयं नेगाजीके मंत्रिमण्डलमें भी यह उलझन उपस्थित हुई थी कि जापानियोंको भारतमें प्रवेश करने दिया जाना या नहीं।

यह एक कठिन निर्णय था। इंडियन नेशनल आर्मीने जापानियोंके साथ भारतकी स्वतंत्रता प्राप्तिके सपनेमें सहयोग प्राप्त करनेकी आशामें मेल किया था, लेकिन जापानियोंके भी अपने कुछ इशारे थे। लेन देनकी प्रक्रियाके अनुसार कुछ व्यवस्था की गई थी। इसका मूल्य तो इतिहास ही निर्धारित करेगा, पर जिन बातपर हमका ध्यान करना है, वह यह है कि इंडियन नेशनल आर्मीके सिपाहियोंमें फासिस्टविरोधी भावनाये बराबर मौजूद थी—ऐसी भावनाएँ जिसकी प्रतीकनि ब्रिटिश शक्ति भारतमें गूँज रही थीं।

साम्राज्यवादी प्रचार चाहे कितना ही क्यों न हो, पर वह किसी अध्ययनहीन विचारोंको यह मोचनेपर मजबूर नहीं कर सकता कि भारतवासी और उनके नेता आपानियोंका पक्ष लेना चाहते थे। भारत तो पूर्ण रूपसे फासिस्ट विरोधी था। क्या गांधीजीने जो ऊपरसे नीचे तक शक्तिकारी थे, किसी अनेकिन पत्रकारसे भेंट करते समय नहीं कहा था कि “भारतकी अहिंसा अधिकसे अधिक शान्तिपूर्ण रूप प्रदर्शित कर सकती है - अंग्रेजों परियोंके मार्गमें किसी प्रकारकी रोकट न डालना और आपानियोंकी सहायता तो किसी प्रकार भी नहीं;” इन बयनका सटीकरण करते हुए उन्होंने बतलाया था कि “याद रखो, अंग्रेजोंने अधिक से आपानियोंको देशके बाहर रखनेका इच्छुक हैं। क्योंकि भारतमें अंग्रेजोंके हानिकार कार्य केवल यही होगा कि भारत उनके हाथसे निकल जायगा, पर यदि आपान जीत गया, तो भारत सब कुछ खो देगा।” गांधीजी द्वारा सुनाया गया हुआ ‘रोकट न डालनेकी नीति’ पर यह आधारित था।

इन विचारोंके उपरान्त भी यह बात बलवती नहीं हो जा सकती कि फासिस्ट विरोधी युद्ध अभियानोंने अंग्रेजोंने समर्थन दिया और अवसरोंपर रोकट डालनेका प्रयत्न भी किया। ऐसे देश द्वारा इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी नीति अपनाना अनुचित होगा, जो अपने आपको एक विभिन्न परिस्थितिमें जमा हुआ पा रहा था, क्यों कि वह स्वयं फासिस्ट विरोधी था, किन्तु फिर भी गुलामीके कारण युद्धके प्रयत्नोंमें भाग लेनेकी तैयार न था।

विस्तृत चर्चित तथा उनके समान अन्य लोगोंको जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनकी तत्कालीन नीतिकें विषयमें हीन इरादे जोधनेके इतने शीघ्र हैं, यह स्मरण रखना चाहिए कि उन्होंने स्पष्ट रूपसे फासिस्ट विरोधी नीति अपने आपनाई उसके पहलेमे ही भारतीय नेता इन व्यवस्थाके विरोधी सर्वप्रथम सक्रिय महाद्वारा दे रहे थे। आज भी स्पेनके प्रजातन्त्र राज्य और आरानी साम्राज्यवादके सत्रम्न चीनके पक्षमें उनके प्रयत्नोंकी स्मृतियों बहुत स्पष्ट हैं।

भारतके फासिस्ट विरोधी स्वयं के बारेमें दो मत नहीं हो सकते। शायद इससे यह बात मनमनमें आ जाय कि इन संघटनानमें अगहयोगका विरोध करनेवाली एक मात्र राजनैतिक शक्ति, भारतीय साम्यवादी पार्टी, सदैव और दृष्टाने व्याप्त इस

स ता ह स्ता न्त र ए

पालावरणमें मजदूरों, किसानों और विशार्थियोंका इतनी शीघ्रतासे एक दल कैसे बना सनी, सासफर उस समय जब ॥ पाटीके नेता जनताकी युद्धविषयक नीतिको समझाने और उसे व्यवहारिक रूप देनेमें इतनी मयेकर भूल कर रहे थे, कि उनका हर दशमें बदनाम होना निश्चित था ।

साम्यवादी पार्टीको ' जनयुद्ध ' विषयक नीतिके कारण उस समय अपना प्रसार करनेमें भले ही सहायता मिली हो, पर यह बात भी इतनी ही सही है कि मार्क्सवादी इस नीतिकी सच्चाईके बारेमें चाहे जितनी बातें दें, पर इसके कारण यह पार्टी सामान्य राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें वास्तवमें दूर पड़ गई । देशके अधिकतर लोगों द्वारा उनकी नीति देशविरोधी समझी गई, क्योंकि इसका अर्थ इतना तो अवश्य था कि सोवियट सचरी प्रतिकारकी तुलनामें देशकी स्वतंत्रता कम महत्वपूर्ण थी ।

आज तक भी इस ' जनयुद्ध ' सचन्धी नीतिका प्रभाव दिखाई पड़ता है । लेकिन भारत आम्नानीसे समझ करने और भूलनेके लिए तैयार रहता है । उस समय सबसे अधिक कठिन था, जिसका सामना किसी भी राजनीतिक दलके नेताओंको करना पड़ा था । द्वितीय विश्वयुद्ध कालमें कमिनिस्मों, समाजवादियों, साम्यवादियों और महासभाइसे जो जो नीति अपनायी, उसके बारेमें किसी प्रकारका अंतिम निर्णय कर पाना बहुत संदेहास्पद है । उस समय विकारपूर्ण विचारोंकी इतनी विचट्टी हो गई थी कि उसके बारेमें इस प्रकारका कोई निर्णय करना कठिन है ।

किर भी भारतवासियोंका ब्रिटिश साम्राज्यवादके विरुद्ध क्रोध शांत नहीं हुआ था । जैसे जैसे फासिज्म हर स्वीकार करती गई, वह क्रोध भड़कता गया । जब आई. एन. ए के अफमर्तोर अमेरिका द्वारा अहिंसावरण मुकदमा खलासा गया, तब एकाएक ही वे वीर बन गये । अभूतपूर्व सगठनके साथ विरोध प्रदर्शन होने लगे । ऊपर और पीछे जर्मन वृद्ध बकीठ और राजनीतिज्ञ भी भूलाभई देशाईने लोगों ने जब अग्रविनि लोगोंने पैरवी करते देखा, तो प्रत्यक्ष विचारधाराके भारतीयोंमें जोरा आ गया । इस सामूहिक विरोधको कुचलनेकी शक्ति दमन चक्रमें भी न थी ।

इसके परचार मारणीय नौनेनाका विद्रोह हुआ । ' चावल मदी ' बहे जाने वाले सिपाहियोंपर अब विश्वास नहीं किया जा सकता था । क्योंकि निर्मित साम्राज्य-

राजनैतिक दाव-पेच

वादी दमनक फौजादी टांचा सत्र चटख उठ्य था। मुद्दर इंग्लंडमें बैठे साम्राज्य निर्माणांधोंने इस खतरेकी चेरासीको देख लिया था।

१८ फरवरी १९४६ को नौ सैनिकोंके विद्रोहका श्रो गणेश हुआ और १९ फरवरीको एटलीने ब्रिटिश लोकसभामें भारतमें सत्ता हस्तान्तरण विषयक परामर्श देनेके लिए एक कैबिनेट मिशन भेजनेका निर्णय लुनाया। यह निर्णय तथा इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उसे स्वेच्छा से हस्तान्तरणकी आश्चर्यजनक ऐतिहासिक घटना कहा जाता है। पर सचार्थपर इस तरह पदां नहीं खाना जा सकता।

नैमित्तिक विद्रोहके समय कहा जा सकता है कि भारतीय सैन्यशक्ति, विभाजन और फूटपर विजयी हो गई थी, ऐसी विजय जिसका प्रभाव किसी हद तक इस विद्रोहके दर्शकोंपर पड़ा था। मसुदी बेम्बेके जहाजोंपर युनियन जेम्बेके स्थान पर जो गड्डे लहरा उठे थे, वह थे कैंपेसी, मुस्लिमलोगी और साम्यवादी। सबके जिय नारेमें गूंज उठी थी, वह केवल एक ही था कि 'एक हो।' इस विद्रोहको सभी जगह बगने हुए असतोय (खरमीर-बंगाल तथा दक्षिणके) से बल मिला।

यह सत्य है कि नैमित्तिक विद्रोहके चरम चरणोंमें भी बड़े-बड़े दलोंके राजनैतिक नेताओंमें विद्रोही भावनायें थी, पर लोगोंके कल्पिपूर्ण उम्माहके सहारे विभाजन और फूटकी भावनाओंपर विजय प्राप्त करनेकी संभावना मौजूद थी। नेहरूजीने उसे दखा था। उनकी बम्बईकी दीइसे यह अंशान लफ्ता था कि वे इस प्रकारके विद्रोहका नेतृत्व ग्रहण कर लेंगे। पर गांधीजी और बालुभभाई पटेलकी सावधानीका प्रभाव पड़ा। हिंतात्मक उथल-पुथल रुपी गिरावटके सामने मिशिन स्वार्थ पीछे हटने लगे थे। विद्रोहका चरममिन्दु बीत गया। अब भागवत्वासी गैराग महाप्रभुओंने सत्ता प्राप्त करनेके प्रसिद्ध राजनैतिक दाव-पेच और अवसरवादितामें पुनः उलटफ पड़े। यह ऐसा वातावरण था, जहाँ भी जिता और उनकी मुस्लिमलोग एक लाभदायक सौदा पटनेकी आशा कर सकते थे।

मनषायें होत लगीं। इसी समय कैबिनेट मिशन आ पहुँचा। भारतके राजनैतिक दल जो विद्रोही जनताके दबावके कारण सगठित होनेपर बाध्य किए जा सकते थे, अब पुनः आपसमें लम्बोंके पुराने दाव-पेचोंमें उलटफ पड़े। कैबिनेट मिशनके

स चा ह स्ता न्त र एण

आगमनके फलस्वरूप चरमोत्कर्ष प्राप्त हुन तथाप्रयुक्त वानाश्रयोंके उद्देश्य एक ऐसी अव्यवस्था उत्पन्न करना था, जो भारतके विभाजनके निम्ने अत्यन्त आवश्यक थी।

ही राज्य प्रसट हुए। उनमें से एक की उत्पत्ति का कारण मुसलमानों द्वारा हिन्दू शासनका हरण था। यह साम्राज्यवादकी एक अव्यवस्था प्रवचना थी, जिसका उद्देश्य नई चालोंके द्वारा अपनी शक्ति और प्रभावको यहाँ कायम रखना था। विभाजित देशकी सीमाओंके उभरे बाद होनेवाले साम्प्रदायिक टकरावों हुए एकपक्ष से पवित्र किया गया। नवनिर्मित सीमाओंके दोनों ओर लाखों व्यक्ति अपने पूर्वजोंकी भूमिमें उल्टाफ पेंके गये।

इन विषयमें उनकी कोई भी सहानुभूति न कर सकता था, क्योंकि सत्ताहस्तान्तरण कालमें कानून और शांति कायम रखनेके लिए लार्ड माउटबेटन द्वारा जो सीमात्मक बनाई गई थी, उसमें केवल पञ्जाबी सैनिक रूढ़े गये थे—भारतीय फौजोंके वही दस्तों जिनके इस साम्प्रदायिक एकपक्षीय प्रभावित होनेकी सज्जे अधिक संभावना थी।

सीमात्मकताके इस परिणामका दोष लार्ड माउटबेटनके मित्र मदन मोहन मालवीय ही है, किंतु इस कटुसत्यमें तो इनका नहीं किया जा सकता कि फौजमें, मुस्लिमलीग या साम्प्रदायी पार्टीमें से किसीने भी फौजोंके इस पञ्जाबी रूपका कोई विरोध नहीं किया था। यह बनाना कठिन है कि यह कैसे हो गया। किसी हद तक इसका कारण मुख्य राजनैतिक दलोंका अग्रजोंपर विश्वास था।

दाल्टनमें इस प्रकारकी साम्राज्यवादी चालपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि किसीको विभाजनके परिणामस्वरूप अपनी अधिक अनसुझाये स्थानान्तरणों या सामूहिक निष्क्रमणों कल्पना नहीं थी। यदि इस संभावना पर विचार किया गया होता, तो इसमें संदेह नहीं कि इन रक्षणानों रोकनेके लिए पर्वत कदम उठाने जाते।

इस भोषण दृश्यके बारेमें अब कहा जाना है—“शान्तिपूर्ण हस्तान्तरण” “ऐच्छिक पलायन” “राजनैतिक नेतृत्वका एक महान कार्य।” आज भारतवासी

मविष्यकी ओर प्रथम चरण

उनके दूसरे ही रूपमें परिचित हैं। पर इस प्रकारके कोष और अधिचयी लक्ष्यों, हिमा और धृष्टाके बीचमें होकर स्वतंत्र भारतमें मविष्यकी ओर आने प्रथम चरण बसाये।

स्वतन्त्रताके समर्पितका परिणाम बनलाथा जना है कि सत्ताहस्तांतरणके द्वारा एडली, माउंटबेटन, चर्चिल और ईडनकी विचारधाराओंवाले व्यक्तियोंमें इस सामूहिक जागरणकी शान करनेके साथ ही साथ ब्रिटिश स्वार्थोंके हितों अथवा नष्टपूर्णा स्थिति कायम रखनेकी आशा की थी, परन्तु कांग्रेस पार्टीके नेताओंने राजनीतिक शरणाग्र सेल स्पेष्ट बुद्धिमानोंमें खेलना शुरू कर दिया।

सोमान्तके उदयोंके उपरान भी सनसल भारतमें विश्वासपूर्ण स्वतन्त्रताभावना बीज पड़ती थी। लोग विभावनासे असन्तुष्ट थे, पर उन्हें यह विश्वास था कि अब वे अपनी इच्छानुसार कार्य करनेके लिए स्वतंत्र हैं। उनमें अब उस निर्णयकी मूललाओंकी तोड़नेकी शक्ति थी, जिसके द्वारा देशका शासन भारतवासियोंकी सौंपा गया था—वे अन्तर्य मूललायें जो ब्रिटिश पूँजीके रूपमें देशके आर्थिक व्यवस्था पर नियंत्रण किए हुए थी।

दशमशतक भारत और सत्ताकी परिस्थितियोंमें एक प्रशासनिक परिवर्तन हो चुका था। बालीन करोड़ व्यक्तियोंमें साम्राज्यवादके उन अवशेषों तथा विश्वके पूँजीवादी बाजारोंमें पीछा छुड़ानेके लिए पड़ती बार कदम बसाने थे, जो अब तक एशिया तथा आदिवासीयोंके धन और प्रयत्नोंका लाभ उठानेके लिए भगवन्त रहे।

भागीनी वन्दुनिष्ठपात्री जो इस साम्राज्यवादिक हत्याकांडके निरुद्ध नगण्ये लोगोंमें मुक्त करनेके लिए धमिकोंका समूह बन रही थी, इन परिवर्तनोंमें नहीं मूल्यांकन करनेमें असमर्थ नहीं। तत्कालीन जनसल सेकेटरी थी पी सी जोशी जिन्होंने इस परिवर्तनकी देखा था और जो अपनी पार्टीके कार्यकर्ताओंमें इस विचारधारामें अवगत करानेके लिए बिस्तर समर्थ कर रहे थे, इन बातोंमें उनका विश्वास ठपठप न कर सके।

श्री बी टी रणदिवेके नेतृत्वमें एक नये आन्दोलन निकलेने सत्ताहस्तांतरणमें साम्राज्यवादकी प्राप्त होनेवाले लाभोंमें नय-नयस्तर तथा सत्ताकी परिवर्तनशील परिस्थितिमें आधुनिकताके पूँजीपति वर्गद्वारा लाभ उठानेकी शक्ति को घटाकर समझा, कांग्रेसी नेताओंके एक बड़े भाग और जनताकी साम्राज्यविरोधी भावनाओंका

स सा ह स्ता न्तर ए

नैराशपूर्ण गलन अर्थ लगाया। उन्होंने स्वयं साम्राज्यवादी शक्तियोंमें विद्यमान सन्दर्भोंके परिणामोंकी ओरसे अँधों केर लों और अन्तमें यह अस्थायी सिद्धान्त बनानेकी भूल की कि किमी प्रकारका कोई परिचर्जन नहीं हुआ है। इस फिरेकेने इस प्रकारकी दलीलोंके सहारे उपरोक्त विचारधारासे विरोध करना शुरू कर दिया, जिसे 'जोरोस रिफार्मिज्म' कहने हैं। मार्क्सवादी विचारधारा इस प्रकारकी योजनाओंके विरुद्धगएने बाँवला उठी, जो आगे चलकर विश्वभरमें कमिनिस्टोंके आंदोलनका एक तत्व बन गया।

इस समय बहुत कम लोगोंने इस बातको समझा कि इस प्रकारके विचार और व्यवहारका अर्थ प्रजातान्त्रिक विचारोंको अनेकों बरों तक जमीरोंने जकड़ना है—और यह प्रभाव इस गणल हुआ कि युद्धोत्तर कालमें इस प्रकारकी समीची और सर्वहीन विचारधाराका राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक सुधारकों द्वारा कभी बटकर मुक़ाबला नहीं किया गया।

दूसरे राज्योंमें महान आशानुपूर्ण परिस्थिति भागी सफ़टोंने गिरी हुई थी। साम्यवादी-पाटी जो इस अवस्थाको हर बरके लोगोंके सामने साम्यवादी परिस्थिति रखनेमें समर्थ थी, लकड़का रही थी और इस स्वाधीनता आन्दोलनके लक्ष्योंको समुक्त करनेमें असमर्थ थी और यह बात उस समय थी, जब कि साम्राज्यवाद अपने मीशूत हर प्रकारके राजनैतिक तथा आर्थिक साधनों द्वारा भारत एवं पाकिस्तानके नये राज्योंकी सहानुभूति पानेके लिए सलत सुसाम्मद कर रहा था।

भारतीय साम्यवादीपाटी जिम्मे गन्तियोंके बावजूद भी लोगोंकी विचारधारा बदलाने, साम्यवादी संस्थाएँ बनाने, सपर्यका नेतृत्व करने तथा जनता द्वारा शक्ति प्राप्त करनेके लिए कार्यक्रम बनानेमें इतना अधिक कार्य किया था, इस परिस्थितिपर कबू पानेके समीप भी नहीं आ सकी थी। उनकी पुगार मुनी—अनमुनी कर दी गई और कभी-कभी स्वयं पाटीके कार्यकर्ता भी उगे न समझ सके।

ऐसी शून्य अवस्थामें वैश्विय पाटीने प्रसाम्मनता भार सभाला। मात्राधिक देशोंने समस्त देशोंकी हिला डाला था। सीमाना पार करनेके लिए लाखों व्यक्ति चल रहे थे। कानून और शांतिके समूर्ण मात्राधिक पूर्णरूपमें नष्ट होनेका भय उपस्थित हो गया था। यह ऐसी विप्लव परिस्थिति थी, जिसके कारण बहादुरोंने बहादुर व्यक्ति भी हर

चि क ट प रि स्थि ति

मान जाता ! यह वास्तवमें वही परिस्थिति थी, जिसे सत्ताहस्तान्तरणके नामपर साम्राज्यवादियोंने बनानेका निचार किया था और एक ऐसा पर्दा था, जिसके पीछे बैठकर ब्रिटेन अपने अपनी व्यापारिक समस्याओं तथा अपने भारतीय विद्रोही राजनीतिज्ञोंकी नष्टाकलासे आर्थिक एवं राजनैतिक निर्णयत्मक प्रभाव जारी रख सकता था।

इसमें वही और कोई गलती नहीं हो सकती थी। ब्रिटेनने राष्ट्रीय शक्तियोंका नेतृत्व करनेवाले भारतीय पूँजीपतियोंके नये रुझानोंका कोई अनुमान नहीं लगाया था, जिसका प्रतिनिधित्व कमिंसपाडी कर रही थी।

एकीकरण का आरंभ

क्या योद्धाओंका रक्त और माताओंके आंसू पृथ्वीपर गिरकर
भूतिमें मिल जायेंगे ? क्या उनसे स्वर्ग विजित नहीं हो सकेगा ?

—रवीन्द्रनाथ ठाकूर

लगभग दो सौ वर्षोंतक एक विदेशी सत्ताने भारतके करोड़ों व्यक्तियोंपर एक
दलके विरुद्ध दूसरेको खड़ा करके शासन किया था । इस नीतिको मोटे
शब्दोंमें इस तरह कह सकते हैं कि “लक्ष्मियों और राज्य करो ।” अखिल भारतीय
स्तरपर हिन्दू-मुस्लिम बैमनस्पर्श लाभ उठाया गया । जब इस विचारमें किसी
प्रकारकी बौल पकनी दीखी तो गुजरातियोंके विरुद्ध मराठों, तमिलोंके विरुद्ध तेलगुओं
और बंगालियोंके विरुद्ध बिहारियों आदिको खड़ा करके यह बाल हमेशाके लिए संभव
बनाई गई । देशके भाषिक-सांस्कृतिक क्षेत्र इस प्रकार परस्पर जोड़ दिये गये थे,
जिससे इस प्रकारकी राजनैतिक बातें चलना हमेशा संभव बना रहे ।

यह सच है कि देशकी प्रशासनिक व्यवस्थामें इस प्रकारकी एकता निर्मित की
गई थी, जिसने जनतापर रोक रह सके तथा देशकी संपत्तिकी सतत लूटमें
सुविधा बनी रहे । पर इस एकताकी रक्षा केवल ब्रिटिश हुनोके प्रभारके लिए
होती थी । इस कारण जिन समय इस एकतामें खतरा दीखता, उसी समय ‘अल्प
संख्यकोंके हित’ ‘हिन्दू राज’ ‘विभाजन’ और ‘चौरपाइ’ से सुवन्धित बाल
होने लगती । देशका विभाजन हो चुका था, लेकिन अब उससे बच एक अन्य
मार्गकर सफ़ट सामने आया

स्वातन्त्रताके पूर्व भारतमें ५६० रियासतें थीं, जिनमें अधिकतर (लगभग
५५४) विभाजनके उपरान्त नवनिर्मित भारतमें अवस्थित थीं । क्षेत्र और साधनोंमें
उनमें भारी अन्तर था ।

हैदराबाद और काश्मीर जैसी कुछ रियासतें इटली और फ्रांसके बराबर (क्षेत्र-
फलवाली) थी और कुछ बिलासपुर जैसी—छोटी छोटी भी थीं, जिसका क्षेत्रफल

जीने-मरने का सवाल

५०० वर्गमीलसे कम तथा जनसंख्या एक लाखसे कुछ अधिक थी। यह सामन्तों द्वारा शासित भारत था, जिसके बारेमें अंग्रेजोंने एक बार स्वतंत्र भारतीय सीमाओं-के बाहर एक पृथक् फेडरेशन बनानेका विचार किया था।

पर अब वह भारतके अंग थे। उन्हें ऐसा करने पर मजबूर किया गया था। लेकिन ब्रिटिश राज्यके पलायनके परचात् सार्वभौमिकताकी स्माप्तिके साथ-साथ इस क्षेत्रमें एक सफ्टपूर्ण देश बन गई थी। ये रियासतें देशके लगभग ६ भागोंमें फैली हुई थीं, जिसका क्षेत्रफल करीबन १,००,००० वर्ग मील और जनसंख्या साठ करोड़ मनुष्य लाख थी। (इस संख्यामें जम्मू और कश्मीर शामिल नहीं है।)

यहाँके राजा भारतके अंग थे, पर व्यावहारिक रूपमें वे निरक्षर थे। उनके लिए तथा विशेष रूपसे बहा रियासतोंके लिए अंग्रेजोंने इंग्लैण्डके पास सत्ता पहुँचानेके कारण भारी सफ्ट उपस्थित हो गया। उनके अस्तित्वका विरोध भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनों द्वारा हमेशा किया गया था। उन्हें 'राज-व्यतिक्रम' बनाया गया था। यह एक कठिन परिस्थिति थी।

भारतके मूल राज्यक विम प्रकार बनिशोंके सामने इस प्रकार आत्मानीने झुक सकते थे, जिन्होंने चात्तानीने भारतीयोंका नेतृत्व ग्रहणकर लिया था? क्या उन्होंने १८५७ के महान् विद्रोहमें नेतृत्व नहीं किया था? जब कि अंग्रेज भारत छोड़ रहे थे, तब क्या जन्म और पूर्व पद्धतिके अनुसार भारतपर शासन करनेके लिए वे आदर्श राज्यक नहीं थे? उनके लिए यही एक अतिन अवसर था, जब कि ■■■ इस अवस्थामें अपनी पुरानी सामन्ती सत्ता हथिया सकते थे।

यह उनके जीने और मरनेका सवाल था। और उन्हें यदि किसी प्रकारकी प्रेरणाकी जरूरत होती तो पाकिस्तानका उदाहरण उनके सामने था। वहाँ सामन्तों द्वारा शासित मुस्लिमराज्योंने एक राज्यको पूँजीपति हिन्दुओंके नियंत्रणमें छीन लिया था। यह सही है कि पाकिस्ताना मुगलराज्योंके सामन्तों लन्दोंने पूँजीपतियोंके एक छोटे वर्गके साथ इस अधिकारको बँट रखा था, फिर भी नये राज्यकी प्रमुख शक्ति तो वही थे। भारतीय सामन्त इसी प्रकारका आचरण क्यों न करें?

एकीकरण का आरंभ

१९४७ में भारतीय एकता के स्वभावसे योग्य शक्ति सपन राजाओं के नेतृत्व में निराशा सामंती सत्त्व टूट पड़े। हमेशा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के यही सगसे विश्वासपात्र सहायक थे। असलमें वह इसी प्रकार के सरक्षणपर आश्रित थे। अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उनके भविष्य के लिए सकल उपरिगत करनेवाली इस उपलब्ध-भुयल में वे पारस्परिक एकता प्राप्त करना चाहते थे। उनके पास धन था, व्यक्तिगत सेनायें थीं और उन्हें आशा थी कि जनता की दृष्टि में अब भी उनके लिए स्थान है।

राजाओं तथा बड़े-बड़े जमीन्दारों ने निःसर्कोच हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जनसंघ जमीं संस्थाओं के साम्प्रदायिक धान्दोलनों में सहानुभूति प्रदर्शित करना शुरू कर दिया। इन दलों को सगसे अधिक आशय विशेषरूप से पंजाब में छोटे व्यापारियों और करीगरों में मिला, जिन्होंने नई सीमाओं में सक्रमण करने की प्रक्रिया में अपना सब कुछ खो दिया था।

राजाओं और जमीन्दारों को शीघ्र ही यह विश्वास हो गया, कि वे इन कटुता का लाभ उठ सकते हैं और इन कारण विभाजित भागों के इन मध्यम वर्गीय भागपर आश्रित साम्प्रदायिक संस्थाओं को सक्रिय सहायता देना शुरू कर दिया, इन कार्य-वाहियों के लिये कारण सामान्य थे।

क्या मभी मुसलमान पंचम दलीय (फिफथ कालमिस्ट) नहीं थे? क्या उन सबने पाकिस्तान निर्माण के पक्ष में मत नहीं दिया था? इस बात को आमनी ने भुना दिया गया था कि मुस्लिमलीग ने पाकिस्तान निर्माण के पक्ष में मत उन बोदे-से मुसलमान मजदूरों में प्राप्त किये थे, जिनको १९३० के लगभग अंग्रेजों ने मनाधिकार दिया था।

राजनैतिक कारणों ने भी राजाओं और जमीन्दारों ने हिन्दू साम्प्रदायिक संस्थाओं को सहायता देने के लिए अनेक कारण खोज निकाली। वे लोग अधिकतर सपत्तिके वर्तमान अधिकारों को बनाये रखने के पक्ष में थे। वे "ईश्वर रहित भौतिकवाद" के कट्टर विरोधी थे। उनकी कार्यवाहियों ने शक्तिशाली कांग्रेस पार्टी कमजोर पड़ जायगी और ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जायगी, जिसमें सामंती वर्ग अपनी जड़ जमा सकेगा। सभी कारणों से इस प्रकार का समझौता तब सम्मान और व्यवसायिक दोष रहा था।

सांप्रदायिकता के विरुद्ध अभियान

अगस्त १९४७ के पश्चात आनेवाले महीनों की बात सोचिये। पाकिस्तान के शासनो ने (नवाब, जमीन्दार और इसी प्रकार के अन्य लोगों ने) हिन्दू जनता के बत्तेघाम में सहायता और मदद देने दिया। यह बात विशेष रूप से पंजाब में हुई, जहाँ इस प्रकार के तत्व बहुत शक्तिशाली थे। एक भी परिवार न बच सका। बंगाल में भी जहाँ इनका रूप कुछ भिन्न था, यह सकलक रोग शीघ्र फैल गया, यद्यपि यहाँ वह इतना सदिग्ध और बर्बर नहीं साबित पड़ा था। देश की गौमा के दोनों ओर इन प्रकार के आक्रमण सृजित किये गये, जिनमें एक हत्या के पश्चात दूसरी हत्याएँ होती रहीं, जब तक कि इन हरकतों के बत्तेघाम का रूप न धारण कर लिया।

भारतीय क्षेत्र बहुत विस्तृत था। तीन या चार करोड़ मुसलमान रह गये थे। वे पाकिस्तान न जा सके, यद्यपि उनका यह विचार हो सकता था। पाकिस्तान कभी इतना विस्तृत नहीं हो सका था कि उनमें से समा सके। वे अनेकाले कबूतरों की तरह थे।

इसी परिस्थिति के विरुद्ध विभाजित भारत के अधिष्ठाता पूर्वीपति एकरा और धर्म निरपेक्षता की रक्षा में लगने लगे। यह केवल एक सहानुभूति ही नहीं बल्कि एक जहर भी थी, क्योंकि नवविजित शक्तियों सृजित करने के लिए इसके अनिश्चित अन्य कोई मार्ग न था।

मुसलमान आत्मसम्यक्त्व की सुरक्षा, बदले की भावना की प्रक्रिया को रोकना, भारत में बसनेवाले अनेक संप्रदायों में विश्वास और आशा का संचार -- यही प्रमुख आवश्यकताएँ थीं। गांधीजी ने अपना संपूर्ण साहस बटोरकर साम्यवादिता के उन भयंकर दैत्यों के विरुद्ध अभियान शुरू कर दिया, जो भारतीय स्वतंत्रता के उन्मूलन ही उमे समाप्त कर देने के लिए तैयार थे। उन्होंने प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया, जहाँ उन्होंने प्रेम और आनन्द भावना का पाठ पढ़ाया। उन्होंने आत्मशुद्धि के लिए अनशन के द्वारा अपने निर्दल शरीर को कट दिया। वे स्थिर बुद्धि के केन्द्र बन गये। यही उनका सर्वोत्तम कार्य था। साम्यवादी भी जो उनके राजनैतिक सिद्धान्तों का इतना विरोध करते थे, यह मान गये कि धर्म निरपेक्षता की रक्षा के लिए उनके इस प्रकार के साहसिक सघर्ष के अभाव में स्वतंत्रता की रक्षा की आशा कम थी।

ए की क र र का आरंभ

परिस्थिति बदली, देशके अधिकारा भागोंमें शांति बनी रही। प्रभावित क्षेत्रोंमें साम्यवादियोंके साहसी दलोंने नागरिक समितियों बनाईं। जो क्षेत्र अधिक प्रभावित थे, वहाँ हिन्दुओंने मुसलमानोंकी रक्षा करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने इस तरह अलग पड़ते गये और उनके सामग्री तथा सामान्य ऐंजीपति सुरक्षक, अपना साहस खोने लगे। घृणा और संदेहकी भावनाएँ बनी हुई थीं, पर अब वे कायूम थीं।

इस प्रकार निराशा होकर साम्प्रदायिक लोग उस अकेले व्यक्तिना विरोध करनेके लिए उठ खड़े हुए, जिसने ऐसे समयमें भारतवासियोंकी माननीय आत्माका प्रतिनिधित्व किया था और जिसके बारेमें उनका विश्वास था कि वह उनके तथा उनकी सकलताके बीचमें बाधा है। इसलिए प्रार्थनाके लिए जाते समय उनकी हत्या गोली मारकर की गई। उनका बलिदान अग्नि प्रायश्चित्त था। शत्रु और मित्र सभी रो उठे। शांति जिसका उदय हो चुका था, अब निधित्त हो गई। पर भारतकी आत्माको साम्प्रदायिकताके इस दैत्यने मुक्ति दिलाता अभी बाकी था।

इसके उपरान्त भी छिटपुट साम्प्रदायिक विरोध विशेष रूपसे पूर्वी बंगालके अनेक भागोंमें जारी रहे। पर यह अधिकतर पाकिस्तानी शासकों द्वारा दिये जाने-वाले जोशके फलस्वरूप होते थे, जिसका आसानीसे स्थानीयकरण हो जाता था। भारतमें रक्षपिपासा शांत हो चुकी थी। मुसलमानोंके बारेमें अनेक व्यक्तियोंकी अब भी संदेह था, पर वे अब उनकी मौजूदगी सह सकते थे। गांधीजी चले गये, पर उनकी आत्मा बनी रही, जिसने विद्यमान घृणा और कटुताको समाप्त करना जारी रखा।

प्रथम सत्तारक्षक सामना कर लिया गया, पर उसका भयानक रूप काश्मीर और जूनागढ़की रियासतोंके अधिष्ठाने संवन्धित संरक्षक समर्थ मुसलमानी महत्त्वकी थीं साम्प्रदायिक दलोंके रूपमें, साथ ही साथ फाट हुआ। इन दोनों रियासतोंकी सीमाएँ और उनकी अपनी पृथक विशेषता थी।

जूनागढ़ जो प्रमुखरूपसे हिन्दू क्षेत्र था, एक मुसलमान नवाब शासकके अधीन था। काश्मीर जो प्रमुखरूपसे मुसलमान क्षेत्र था, एक हिन्दू महाराजाके अधीन था। धार्मिकरूपके अतिरिक्त सामग्री साम्राज्यवादी बंधनेने वहाँके शासकोंको पाकिस्तानका मुखापेक्षी बना दिया। जूनागढ़की सम्मत्याका खींच ही फैसला हो गया।

कबाइलियों के हमले

नवाबने पाकिस्तानके पक्षमें मत दिया। पर वहाँकी जनमाने दूसरा ही निर्णय किया। उन्होंने देशपर अधिकार कर लिया और नवाब मानकर बरोंचों जा पहुँचा। पर कश्मीरकी समस्या अधिक जलमयी हुई थी। वहाँ साम्राज्यवादी दलध स्वार्थ निहित था।

महाराजाने टाउमटोल की और यह मालूम पड़ा कि यह विलम्ब जानबूझकर हो रहा है। यह कहा जाता था कि इन समय रियामनके प्रधानमन्त्री भी आए मी. ब्रक देशद्रोहीकी पार्टी छोड़ कर रहे हैं। मुनेने कहा कि इस व्यक्तिने भोपालके नवाब और तत्कालीन राजनैतिक सचिव कनराव कोरफीन्डसे मिलकर कश्मीरमें भारतमें सम्मिलित न करनेके लिए एक पड़यत्न बना लिया था। उस समय यह भी समाचार फैल रहे थे कि कुछ प्रभावशाली राजा सामन्ती भारतकी 'स्वातन्त्रता' घोषित करनेके लिए प्रयत्नशील हैं। मत्व बात तो एक दिन सा ही जायगी, पर घटनाओंके सामान्य सर्वेक्षणमें यह स्पष्ट हो ही जाता है कि इस प्रकारके कुछ प्रयत्न जागी थे, जिनमें अंग्रेजों द्वारा सहायता की जा रही थी। कश्मीर-सूकटने इस पड़यत्नका भेद खोलनेमें सहायता की।

कश्मीरके महाराजाके लिए इस प्रकारके अनिश्चयका कोई राजन कारण न था। सामान्यतया उनमें भारतमें सम्मिलित होनेकी आशा ही जाती थी - विशेष रूपसे इस कारण कि रियामनकी जनताके आन्दोलन, जिनमें सभी दल शामिल थे और जिसका नेतृत्व एक मुसलमान कर रहा था, इस बातके लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे कि राज्यकी सीमाएँ भारतकी ही भाग बनें। फिर भी यह मालूम पड़ा कि कश्मीर पाकिस्तानकी दिया जा रहा है।

महाराजाका अनिश्चय स्वयंसेवक बड़े जनिकाले पाकिस्तानी सेनाके हमलों तथा सीमाप्रान्तके कबाइलियोंके आक्रमणके हमनेमें समाप्त हो गया। पाकिस्तानी सेनाके अंग्रेज सैन्यप्रतिरोध इस आक्रमणके समयके बारेमें सूचना थी। बादमें पता चला कि उसने भारतीय सेनाके अंग्रेज सैन्यप्रतिरोधों भी इस बातकी पहलीमें खबर दे दी थी। तथापि भारत अक्षमधान था, क्योंकि इस समय उनकी समस्त शक्ति साम्प्रदायिक दंगोंके शांत करनेमें लगी हुई थी।

ए की क र ण का आ रं भ

काश्मीर की सहायता के लिए भारतीय फौज पहुँची। आक्रमणकारी पीछे हटा दिये गये। एक दीर्घमानीन युद्ध होना रहा, जिसका अंत युद्धक्षेत्र में हुआ और जिसका स्वर्ण बहुत भारी पड़ा। लेकिन अब यह पता चला है कि यदि भारतीय फौजों की प्रथम दुर्गति २४ घंटे भी देर में पहुँचनी तो भारत के उत्तर में पाकिस्तान को एक मूचवान पारितोषिक तथा साम्राज्यवाद को एक आदर्भ क्षेत्र मिल जाता।

महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समय से अब तक काश्मीर प्रश्न ब्रिटेन तथा अमेरिका की दुर्गो चाल और दोनकी चाल चीन की बहानी है। प्रागे चलकर हम देखेंगे कि मनमोहनजी को इस प्रकार व्यवस्थित करने से सन्त प्रयत्न हुए हैं, जिससे यह युद्धक्षेत्र को पाकिस्तान के हाथ में चला जाय, जिसका सीधे-भाधे राष्ट्रों में अर्थ उन्हीं के हाथ में जाता है।

दंगों और साम्राज्यवादी चालों की इस वृद्धि में भारतीय पूँजीपतियों के शासक वर्ग को मालूम पड़ गया कि उनको शक्ति को मुख्य तौर पर सामर्थ्य की धोमे है, जो साम्राज्यवाद के पक्ष में साम्प्रदायिक प्रतिक्रियावादियों की सहायता में काम कर रहे हैं। अनुभवने यह प्रमाणित कर दिया कि यह आधारण स्वतः न था।

वामनविक्ता यह है कि जब काश्मीर-संघर्ष उपस्थित हुआ तब केंद्र में एक अनुदार भाग इस दुर्गो में था कि क्या भारतीय फौजों को दंगे दंगने में लगी हुई है, धीनगर की रक्षा के लिए भेजी जायें। नई विचारधारा वाले दलने जिसका नेतृत्व नेहरूजी कर रहे थे, यह फैसला करवा डाला। उन्होंने यह अच्छी तरह देख लिया कि मुस्लिम बहुमत वाले इस क्षेत्र के भारत में शामिल हो जाने पर धर्म-निरपेक्षता की भावनाई फैलाने में भारी सहायता मिलेगी और साथ ही साथ भारतीय सीमा पर स्थित एक अन्य सुविधापूर्ण स्थान में भी साम्राज्यवाद विदा मोंग लेगा।

यह एक ऐतिहासिक निर्णय था, जिसका भविष्य की घटनाओं पर बड़ा भारी अंतर पड़ा। वास्तव में इसके द्वारा भारत में साम्राज्यवाद के शक्तिशाली सामंती मोर्चे पर आक्रमण करने का रास्ता साफ हो गया।

एक युग का अंत

जिनके शरीरमें ओरा नहीं वे कछड़ा मुल-मुल क्या जान सकेंगे ?
'आज' जिस राष्ट्र मान नहीं, उस राष्ट्री दृष्टिसे 'कल' के
आनद और कष्टकी क्या बीमल ?

—मुहम्मद इस्बाल

यह 'समा' जिनका कैमरे प्रमुखोंने हस्तान्तरण किया था, मौजूद थी, पर उसे
मजबूतीमें पकड़कर हद करना शेष था, अन्यथा यह राजनैतिक दस्तावेजोंके हाथमें
पहुँच जाती, जो साम्राज्यवादी क्षेत्रमें अधिकतम मूल्य देनेवाले व्यक्तिके पास उसे
बँधक रख देते । १९४८ और ४९ में भारतीय परिस्थितिकी वास्तविकता यही थी ।

भारतीय पूँजीजीवियोंने कुछ जाने और कुछ अनजाने इस परिस्थितिको समझ
लिया था । उन्हें इस शक्तिको स्वाधिन्य प्रदान करने तथा राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त
करनेके लिए दो रुझान उठाने पड़े । पहली बात, स्वतंत्र भारतके संविधान निर्माणका
कार्य आगे बढ़ा । दूसरी बात, हमेशाके लिए यह स्पष्ट करनेको बंदम उठाने गये
कि भारतके सामग्री शक्तियोंके लिए नई व्यवस्थामें कोई स्थान नहीं है ।

पारिस्थितिक इस समय कैमरेमें थोड़ी एकता थी । हृदयके अंतस्तरमें यह
भावना मौजूद थी कि जहाँ तक हो सके एक से अधिक अनुसूचित मानना न करनेका
प्रयत्न करना चाहिए । यह भावना सभी युगोंमें स्वतंत्रता संधियोंके समय हुआ
करती है । किसी हद तक यही भावना उसी वैदेशिक नीतिक कारण तथा इस
विचित्र शायीकरणकी वजह है कि तत्स्थानका यह अर्थ है कि भारत एक देशके विरुद्ध
दूसरेको सहायता नहीं देगा । दबपि परिचयनी और मुक्त्यन अधिक स्पष्ट था ।

इसी कारण आर्थिक नीतिमें किसी प्रकारके महत्वपूर्ण परिवर्तनके लिए किम्वदं
दिलवाई पड़ती है, क्योंकि उन्हें हर था कि नज़रक मौजेपर इस कारण पूँजी-
जीवियोंकी एकता ज़ही नष्ट न हो जाय । उस समय भी दृष्टिकोणोंके अन्तर थे,
पर उसका देशकी नीतिपर कोई खास प्रभाव नहीं दिसलाई पड़ा ।

एक युग का अंत

भारतीय समाजवादियों ने कदापि इस सत्ताहस्तांतरण पर पूर्ण महत्व समझ लिया था, पर उन्हें यह पता नहीं था कि क्या नीति अपनाई जाय। उन्होंने कांग्रेस पर मौलिक आर्थिक नीति अपनाने के लिए दबाव डाला पर हमेशा की तरह उसकी व्यावहारिक रूप देने में वे उलझ गये, क्योंकि कांग्रेस पार्टी पर व्याप्त निहित स्वार्थों का सारा झोड़ने की अपेक्षा साम्यवादियों के शक्ति-मंच के विखंडन में अधिक ध्यान था।

सत्ता हस्तांतरण के समय ही नहीं, वरन् आज तक भी उनकी नीतिका निर्धारण हमी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के आभास पर होना रहा है। अन्य वामपक्षियों के साथ मिलकर उन्होंने सुयुक्तमोर्चा बनाने का विरोध किया, पर अपनी एक नई संस्था बनाकर इस विशाल संस्था को विभक्त करने का प्रयत्न किया।

उनके अनेक नेताओं ने विरोध रूप में थोड़े उद्वेग से नागपण और सन्तुष्ट पटवर्धन ने मार्क्सवादी और गांधीवादी मान्यताओं को मिश्रित कर प्रयत्न किया। फलस्वरूप वे स्वयं भी उसमें उलझ गये और पीछे चलने वालों को भी उलझा दिया। समाजवादियों के कार्यक्रमों का सही रूप आया गया, जिस पर परिणाम यह हुआ कि विविध अविकारियों के निष्क्रमणकारी उनकी असहिष्णु शक्ति और प्रभाव नष्ट हो गई।

साम्यवादी पार्टी तथा अन्य वामपक्षी दोनों ने ऊपर से ही इस परिस्थिति का अध्ययन करके किना अधिक सोचे बह विचार्ये बिना कि वे पूँजीजीवी हमेशा की तरह स्वतंत्रता के साथ विरासतपाल करने की तैयारी कर रहे हैं तथा वे शक्तिके सत्त्व के स्थान पर उसकी परछाई में अपना 'अयोध्या' 'दुर्ग' से ही मनोप कर लेंगे।

साम्यवादियों की पुगली नीति जिसके द्वारा हैदराबाद के निजाम के विरुद्ध विद्रोह विरोध उपस्थित किया गया था, वो टी एन द्रविड़ के नये नेतृत्व में चुपके से छोड़ दी गई। तैलंगाना के किसानों का संघर्ष अपना मार्ग स्वयं बनाने के लिए अकेला छोड़ दिया गया। भूमिके दूसरे आन्दोलन भी बन्द कर दिए गये। नई नीतिके अनुसार अगस्त १९४७ में शम हुई नकली स्वतंत्रता के विरुद्ध राष्ट्रों में हिंसालु कार्यवाही सुझाई गई और इसका अर्थ था, साम्राज्यवादियों, मार्क्सवादियों और पूँजीजीवियों को एक दूसरे के सहायक समझकर उनके विरुद्ध संघर्ष।

संविधान की रचना

यह गन्त नौति थी, जिसके कारण वामपंथियोंके नेता जनमानसे दूर पड़ गये। अपने दलके सुधारवादियोंको खण्ड करनेके नायपर गण्यवार्दापाट्रीने अपने आसक्तों ही नष्ट करना शुरू कर दिया। किसानजी धोखित हो जाने पर दलके कई कर्ताओंने सचको तथा जेलोंमें गाय-गाय बाग्यातूरुंक मुक्तकथा किया। पर यह बीगना अर्थहीन था जिसका उन्ह भाग मूल्य चुकाना पना। इस प्रसन्नपर आगे विचार किया जाना, यहाँ कमेन्सस कायवाहिदोंकर विचार करना अनुपुक्त होग।

मल्लारी वगैरे भारतको प्रजातान्त्रिक राज्यका रूप प्रदान किया, पर जिन्हें इस पैंजीजीभी प्रजातन्त्रके दुस्वदायी मशौका पना था, उन्हें इसके बारेमें कोई उम्माद नहीं था। भारत पर पहलेसे ही मुरझावन्दी बनूना द्राग शामन हो रहा था, जिसके अनुसार अभिमुक्तोंकर किसी प्रकारके मुक्तन चलानेकी जरूरत न थी। वगीयतके हरमें पुर्वासकी पात्राँग और दमन का इस प्रणमन दूरा जानी लगे गये, जिसपर अब उन व्यक्तियोंका अधिपार था, जो अभी थोटे दिन पहले देशकी जेलोंकी शोभा बना रहे थे।

यही पीछ रहा था कि आकर्षक राज्योंमें लगे हुए संविधानके अरु शायद अब भूले, नगे और निग्नर रहनेकी स्वतन्त्रता तथा ऐसी ही अन्य अनेक प्रकाशकी स्वतन्त्रताय शामिल करनी पड़ेगी। इस परिस्थितिके अधिक विगाहनेके लिए इस संविधानकी रचना उन्हीं लोगोंके द्वारा हो रही थी, जिन्हें भारतकी विज्ञान जनमतकी उपेक्षा करके सीमित न्यायधिकाके आदरपर अयेजोंके निर्वाचन किया था।

लेकिन ज्यों-ज्यों उनका स्वरूप तैयार होता गया, यह स्पष्ट होने लगा कि जो संविधान बनकर तैयार होगा, उसमें सामान्य निर्णयक वागजानके स्थानपर राष्ट्रीय आदोनतकी मँतिफ धारणये अयेजोंमें व्यक्त होगी।

जैसा मनमात्र जाना है, बीमवी राजाजीके मध्यमनने संविधानकी रचना कोई कठिन कावे नहीं है। इस अनेक विज्ञानने नियमों कापी साहित्य उपलब्ध है तथा भिन्न-भिन्न सामाजिक, राजनितिक और आर्थिक स्वरूपवानने उन्होंके अनेक व्यावहारिक उदाहरण भी मौजूद है। भारतको भी स्थापतिक रूपमें इन्हीं उदाहरणोंका सहारा लेना पड़ा। संविधानके नामपर अयेजोंने अपनी इच्छानुसार जो अनेक कानून बनाये थे, उनके आगेरु देशको किसी संविधानका अनुभव न था।

एक युग का अंत

प्राचीन कालके महान नीतिदोषों का देश उदाहरण प्रस्तुत कर रहता था, पर उनके निदान और साधन नहीं होने थे ।

भारतके पूँजीजीवियोंने इन सभी साधनोंका सहारा लेनेका निरवयव किया । पूँजीवादी देशोंने मालिक स्वतंत्रतामें तथा समाजवादी देशोंने मालिक अधिकार ग्रहण किये थे । यह सच है कि 'स्वतंत्रता' और 'अधिकार' राज्यका भारी दुस्प्रयोग हुआ है, पर प्राप्ति संविधानमें उन्हें संविधान अनुमोचित करना एक अग्रिम कदम था । यही बात कुछ निर्देशक निदानोंके बारेमें कही जा सकती है, जिनके द्वारा अनेक जालियोंमें विभक्त हिन्दू समाजके बहुत दिनोंमें रके हुए सुधारोंका सामना खुल गया । यह सब आरम्भिक विचारोंका परिणाम नहीं, बल्कि यथार्थ रूपमें मजबूत थी, लेकिन उनकी जड़े राष्ट्रीय आन्दोलनकी आत्मा एवं परम्परामें गहरी जमी हुई थीं ।

इन प्रारम्भमें कुछ ऐसी भी बातें थीं, जिनमें प्रगति करनेका दर था । जिन लोगोंकी भूमि, उद्योग और व्यक्तिगत संपत्ति राज्य द्वारा हस्तगत बर्नी पर आय, उनका मुद्रावजा देनेके लिए विस्वाम दियाया गया था । ऐसे वायदे राजपर अच्छे लगते हैं, पर भारत जैसे पिछड़े हुए महीन देशमें इसके कारण ऐसी व्यवस्था जारी रखनेके लिए पोल्ट रह जाती है, जिसमें देशकी सर्वतोमुखी नीति प्रगति रुक जाय । जिसके पास पैसा न हो, ऐसी सरकारके लिए मुद्रावजा दे पाना केवल स्वप्न-सा है ।

लेकिन पूँजीजीवियोंने यह आशा करना कि वे अपनी शक्तकी आधारभूत आर्थिक व्यवस्थाको पूर्णरूपेण नष्ट कर देंगे, बहुत असंभव था । इसके अनिश्चित इन समय कॉंग्रेस पार्टीके विभिन्न दलोंके मनभेदोंने दाम्भिकमें अपना निरिक्त रूप धारण करना शुरू नहीं किया था, बल्कि इन मनभेदोंके बीटारु संविधानके प्रारम्भमें उसके प्रगतिवादी और प्रतिनिधित्वादी तत्वोंमें क्षित्ताई पड़ते थे । जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेसके इतिहासका अच्छी तरह अध्ययन किया है और मित्रि शास्त्राज्यवादके विरुद्ध स्वर्ण के दरम्यान उसके वायदोंका ध्यान रखा है, उनके लिए संविधानके स्वरूपमें ऐसी अनेक भारी खामियों भी थीं । वयस्क मताधिकार स्वीकृत हो गया था, पर उस पवित्र वायदेका कहीं उल्लेख नहीं था, जिनके अनुसार वृद्ध योग्य भूमि

जोतने वालोंको बाधना देने लगी थी। इस कारेके पूर्ण होनेपर देशकी दशा बदल जाती तथा अर्थव्यवस्थापर उमोन्दारोंकी पकड़ दृढ़ हो जाती।

उनतिके नये क्षेत्र देख लिए गये थे, पर भारतमें लगी हुई विदेशी पूँजीके भविष्यके बारेमें कोई चिन्ता नहीं थी, (अर्थव्यवस्थामें प्रमुखताके कारण यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न था।)

स्वतन्त्र गणतन्त्र घोषित होनेके उपरान्त भी ब्रिटिश सामन्यवैयक्तिक गठबन्धन बनाये रखनेका निर्णय भी कुछ कम प्रयासों न था।

१९४८ और १९४९ में साम्यवादी पार्टी द्वारा इन कारियोंके विरुद्ध जनमतका निर्माण एक महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए था। दुर्भाग्यवश हम हेतु वानपद्धियोंमें समुक्त दृष्टिकोण बनानेके लिए दोहरे सही प्रश्न नहीं किया गया। यदि यह होता तो प्रजातन्त्रमें वयेष्ट हलका आ जाती। इसके विरुद्ध पूरे सविधानका विरोध किया गया, जो प्रश्न तो एक गलत भाँ था और सत्यता गैरकानूनी और असंगति आशेलनोंके लिए बहुत बड़ा कार्य था।

यदि प्रत्येक मद्द्दी सफेद या स्वाह मानकर बननेका दृष्टिकोण न होता, तो उन विचारोंसे दिनोंमें भी वंशित पार्टीके नेताओंपर उनकी स्थानी हुई कुछ प्रतिज्ञाओंकी पूर्ण करनेके लिए जनमतका पर्याप्त दबाव बालना सम्भव हो जाता, यह तो होना ही नहीं था। हुआ यह कि जसा वंशित पार्टीके हाई कमांडने चाहा उसीके अनुसार प्रारूपपर विवाद आगे बढ़ा।

विधान निर्माण परामर्शके बाहर भी वंशित पार्टी मो नहीं रही थी। यदि राजाओं तथा सामंती साम्राज्यिक सहयोगियोंको अपनी शक्ति बचाने दी जाती, तो वह सविधान जिसे वे बना रहे थे, लागू न हो पाता। इसके क्षेत्र बनानेके लिए यह फैसला हुआ कि नई परिस्थितिमें उन्हें अशक्त बना दिया जाय।

आक्रमण करनेके लिए नरेश इसमें अधिक अशक्ति बच हो सकते थे। उनके सहयोगी (हिन्दू महासभा, जनसभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) गांधीजीके बलिदानके उपरान्त अपना स्तर उठानेकी स्थितिमें न थे। साम्राज्यिक दलोंके पीछी खंड गैरकानूनी घोषित कर दिये गये थे। राजाओंमें भी अशक्त बदन उठानेके

एक युग का अंत

यारमें मतभेद था। कुछ नरेश स्वतंत्र भारतमें सम्मिलित मित्रे जानेके विरुद्ध अतः तक हथनेरो तैयार थे। दूसरोंने समझौता करना दीक समझा और नवा नगरके सामनाहवरी सलाह सुनना पसंद किया। अन्तमें उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादके प्रति धद्वा प्रसट करनेस निर्णय लिया और आसफके विपरीत यह सोचा कि दिल्लीके बाबौर लदन रोक लगा लेग। पर भगनीय पूंजीजीवी भी पिनबके खतरोंने परिचित थे। व्यापारके समान राजनीतिमें भी लंदनके समान धनी और चालाक सहायक रखनेवाने प्रतिद्वन्द्वीको थे नहीं चाहते थे।

कॉम्रेस पार्टीके सर्वाधिर योग्य और सोच-भजनभरर कदम उठानेवाले नेता सरदार वल्लभभाई पटेल पर स्वतंत्र रियासतोंको विलीन करके प्रमुख भारतके सीमावर्ती क्षेत्रोंने मिला टालनेकी जिम्मेदारी जनी गई। कुछ छोटी कुछ बड़ी कुछ नक्शेपर एक बिन्दुके समान भैकड़ों रियासतें उनकी जोंबके लिए मामने आई।

उन्होंने इस कामके लिए कोई सन्या-बीडा कमीरान नियुक्त नहीं किया, जो आगे पोछे सोवसर एकीकरणके लिए एक मोटी स्परिंगा मुझता। उन्होंने यह काम उसी तरह शुरु कर दिया जैसा कि अमेरन करते और उमे बड़ी गुन्दरताने धोड़े समयमें एव वास्तवमें बड़े प्राकणाविक टमगे मुपन्न कर दिया।

प्रथम तो राजाओंमें घूट डलना और उनके एक प्रभावशाली दलका इस बातपर विश्वास पैदा करना जरूरी था कि यह काम मामलोंके हितकी होगी कि ये परिवर्तित परिस्थितियोंमें अपने लिए एक सुरक्षित स्थान प्राप्त कर ले। इसके साथ ही साथ उन्हें यह भी बतलाया गया कि ऐसा न करनेकी दरामे उनकी निरकुश स्थिति, जनताका क्रोध और तीन आलोचनाका लक्ष्य होनेसे जायगो। यह सीधो-न्सीधो बात थी और यो कहना चाहिए कि अनेक मुख्य राजाअनि इसीके अनुसार आचरण करना स्वीकार कर लिया। समस्त भारतके लिए कोई आला प्रगारित नहीं की गई। यह बतलाया गया कि प्रत्येक समास्यापर उसके महत्वकी दृष्टिसे पृथक विचार किया जायगा।

नरेशोंके प्रति किता व्यक्त करते हुए भारत सरकारने यह भी घोषणा कर दी थी कि सामन्ती दुनियाके कुछ प्रमुख राजाओंको देशके प्रशासनमें महत्वपूर्ण स्थान दिये

सामंती दुर्ग टूटने लगे

जायेंगे। अन्तमें नूतनताके इन अवशेषोंको भारी पैशन और हरजनेका लोभ दिया गया। पैसा तो उनकी हमेशाकी चाह थी। वे आत्मनिर्भरों की तरह शान-शौकतकी अिर्दगी मित्रानेके अतिरिक्त और किसी बातके योग्य न थे।

एकीकृत योजना कर्मरूपमें परिणित हुई। सामंती दुर्ग टूटने लगे। उनका सामममररण धारो-दागीमें होने लगा और जिनपर आबादीने विजय पाई या मर्दगी थी, उन्हें पहले खान विन्न बना। यह निशानोकरण का प्रसरण हुआ। प्रथम तो २१६ रियासतों जितना कुल क्षेत्रफल ८४७७४ वर्ग मील तथा जनसंख्या १ करोड़ २० लाखमें कम थी, सीमायुक्त प्रान्तोंमें अर्थात् उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बरार, बिहार, मद्रास, पूर्वी पंजाब तथा बम्बईमें विनियोज कर दी गई। दूसरे कुल १६०६१ वर्ग मील क्षेत्रफलकी २० रियासतों मिलाकर हिमाचल प्रदेश नामकी एक नई इकाई बनाई गई। तीसरे २६४ रियासतोंकी सीमायें मिलाकर सौराष्ट्र, मध्यभारत और पेम्बू नामक बड़ी इकाईयां बनाई गईं, जिनका क्षेत्रफल १६०,४०० वर्ग मील और जनसंख्या लगभग २ करोड़ ४० लाख थी। अन्तमें हैदराबाद, मैसूर, दूबन-कोर-कोबान और दूसरी पृथक् इकाईयां बनाई जो इन रियासती दुनियामें प्रमुख थीं।

जिन समय विलीनीकरणकी यह प्रक्रिया जारी थी, तब शाक्तिराजी ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस घटनाकी साम्यविद्युतके प्रति सचेत हुआ। पहले उन्होंने मोचा कि सामंती शाक्तिके विरुद्ध साम्यवादियोंके बहते हुए सन्देशोंके दवानेके लिए रियासतोंका रूप बदल रहा है। एक अर्थमें इसके कारणोंमें यह भी एक कारण था, क्योंकि कि सामंती शाक्तिके प्रमुख दुर्ग हैदराबादमें साम्यवादी पार्टीने निजाल तथा उनके आगीर-दागोंके विरुद्ध सघनता सफल नेतृत्व किया था, जिसके कारण उन्हें दक्षिणके पञ्चपर एक और स्थित सेतुगता प्रदर्श होइनेपर विश्वास होना पड़ा था। यहाँके मुकुण्डल और अमविश्रामी विमर्शोंने न केवल हानी हुई भूमिका अन्तमें वैदवाग कर लिया था, बल्कि हाँवपागोंके द्वारा अपने लाभकी रक्षा भी की थी। निजामके रजागर खुड़े तथा अन्य सचिव निपारी इस भारी भूमकमें प्रवेश भी नहीं कर पाते थे। ४० लाखके अधिक आबादीवाने २ हजार गाँवोंमें निजामका शासन समान हो गया था। १३००० वर्ग मीलके इस क्षेत्रमें जहाँ पहले १०० से १२०,००० एकड़

एक युग का अंत

भूमिवाले जागीरदार कानूनी और गैरकानूनी लगानोंसे किसानोंको छुड़ा करते थे, वहाँ धन जनताका राज्य था ।

यदि सेलंगानामे परिस्थितिकरा जो अवस्था हुई, वह न हुई होती, तो संभव है कांग्रेस पार्टी राजाओंके विरुद्ध कुरंगताने कार्यवाही करती, क्योंकि कारमीरपुद्धकी जवाबदारियोंने किसी हद तक उनके हाथ बँध दिए थे । साम्यवादियोंके हवाके कारण कांग्रेसकी रफ्तार तेज हुई और कांग्रेसोंने सोचा कि अब 'हान्ड' करनेका समय आ गया है ।

हैदराबाद, कानूनी और सदनके बीच आरागमन जारी था । कानूनी सलाहकारके रूपमें बान्तर मौकटन इधर-उधर दौर रहे थे । पाकिस्तान और बाईलेटसे ब्रिटिश और अमेरिकन युद्धमासपी वायुमार्गोंमें हैदराबाद पहुँचाई जा रही थी । भारतके नगरेष्वर बम-बर्षाकी बात-चीत हो रही थी । निग्राम अधिक टेढ़े हो रहे थे और दिल्लीकी आजादियोंका उत्थान करते हुए अतः तब सुबाबला करनेकी धमकी दे रहे थे । परिस्थिति गंभीर थी ।

जुलाई १९४८ में विस्मय चर्चित द्वारा भारत सरकारकी नीतिकी आलोचनाके कारण सगंधार पटेल भी इस गोपनीयताके पर्देको हटाने पर तत्पर रहस्योद्घाटनके लिए विवरा हुए । विधान निर्मात्री परिषदमें बोलते हुए उन्होंने बलाया कि " हम अपनी हैनियतके अंग्रेजों द्वारा अपने प्रचारन, नेताओं और निवासियोंकी अप्रत्याशित, हेतुपूर्ण और सुरक्षाहीन आलोचनाओंको बहुत दिनों तक शांतिके साथ सुनते रहे " आगे उन्होंने पहली बार यह स्वीकार किया कि " हमें भारत और युनाइटेड किंगडम दोनोंमें स्थित निहित स्वाधों द्वारा भारतको अधिक कठिन परिस्थितिकी उत्तराधिकारके रूपमें सौंपनेमें सन्नियत चालोंछ अच्छी तरह पता था । भारतको चलाने राश्योंकी तरह विभाजित करनेका सम्य प्रयत्न किया गया था । बड़े पैमानेपर शांति भंगकी स्थिति पैदा की गई । "

और अन्तमें कांग्रेस पार्टीने लीड पुरुषने मंचेन किया कि " वर्तमान भारतीय राजसत्ता कोई भी गंभीर विचार्यी यह धारणा बनानेमें नहीं चूक सकता कि देशके विभाजन तथा उसके साथ आनेवाली मुसीबतें उस दलकी फूट टालनेवाली

सांभंतचादका अंत

कारगुजारियोंका परिणाम थी, जिसके श्रेक और उद्घोषक मि चर्चित हैं। इन कारण मि चर्चित और उनके पिदुओंमे इतिहासके न्यायालयमें इन दुमात घटनाओंके सम्बन्धमें जवाब देना पड़ेगा। ”

यह काङ्गोअन्ना वमी सहल और एक अन्टीमेडमरी तरह थी। पीछे लौटना नहीं हो सका था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उसका सर्वाधिक विश्वासपात्र मित्र निजाम बहुत पीछे रह गये। अब तक लगभग मला रियासती भारत छुटने देक चुका था। साथ ही द्विती सरकार काश्मीरके मुद्दमे एक धार्मिक उन्मत्त करनेके लिए ययेश सतर्क थी। राष्ट्रसपनी छत्र-छायामें बानी चालू हो चुकी थी तथा साम्राज्यवादियों द्वारा प्यान बँटानेके लिए कोई नई परिस्थिति पैदा करनेकी आशा बहुत कम थी।

थोड़े दिनों बाद १२ सितम्बर १९४८ को पर्याप्त राजनैतिक और सैनिक तैयारीके उपरान्त भारतके मराठा सैनिकोंने पुर्लित कार्यवाही की। हैदराबादका प्रतिरोध बालूकी दीवारकी तरह ममाप्त हो गया। भारतमें मार्मनवादके अन्तरी दट्टियों वज उठी। अब दुँबीजीवी परिस्थितिके स्वाामी ये।

इलाहाबाद विश्वविद्यालयके दीवान समारोहके अवसर पर नवम्बरमें सरदार पटेल यह कहनेकी स्थितिमें आ गये कि “हमें कठिनाईमें प्राप्त इस एकताको दृढ़ करना चाहिए। हमें उन बापोंपर प्यान देना चाहिए, जिनमें एकता स्थापित होती है, न कि उन बानोंपर जिनमें भेद बढता है। ”

एकता प्राप्त करनेके इस नाजुक समयके दरम्यान भारत सरकारको ब्रिटेन तथा अमेरिकाकी अनेकों बार यह विश्वास दिलाया गया कि उनके लिए कोई कठिनाई उन्मत्त नहीं की जायगी। यह विश्वास उन्मत्त कराना आवश्यक था। लार्ड वजनके शब्द अब भी सत्य थे। अपनी पुस्तक ‘मुदुर पूर्वकी समस्या’ में उन्होंने लिखा था कि “दुनियोंके गोलेके तीसरे अत्यन्त महत्वपूर्ण भागके मुद्घोपयोगी केन्द्रमें भारतीय साम्राज्य स्थित है। ...लेकिन उसकी केन्द्रीय और नियंत्रक स्थितिके प्रभाव उसके पान तथा दूरके पक्षोर्मियोंके भाग्यपर पड़ने वाले प्रभाव एवं भारतीय धुरी पर घूमनेके कारण उनके भाग्य-परिवर्तनसे अच्छी तरह और कहीं दिखलाई नहीं पड़ता। ” इस दुनियोंके गोलेके इस तीसरे अत्यन्त महत्वपूर्ण भागमें भारी

एक युग का अंत

जिम्मेदारोंके उपरांत भी भारतीय धुरीपर नियंत्रण न रहनेके कारण साम्राज्यवादकी भारी चिन्ता होनी ही चाहिए थी ।

अप्रैल १९४७ में डिग्रेमें होनेवाली ' एशियन रिनैरान इग्रिम ' में श्री नेहरूने इन राष्ट्रोंकी भावनाओंको बतलाते हुए कहा था कि " हम एशियाकामी बहुत दिनों तक पश्चिमी न्यायानयों और मन्त्रानयोंमें दण्डास्ते देते रहे, अगर यह कहानी पुगनी पड़ जायगी । इन अपने परेतर खप्त होने तथा उन लोगोंने सदयोग करनेको तैयार रहेंगे, जो हमने सदयोग करना चाहते हैं । हम दूसरोंके हाथोंके खिलाने नहीं रहना चाहते । "

फिर भी राष्ट्रमन्त्रोंने भारतीय प्रवृत्ता को—बहुत पीछे चलाते रहे । जिन मामलोंमें उनके विचार साम्राज्यवादियोंसे मेल नहीं खाते थे, उनमें होशियारीने बै अगला हाथ बीच मेंते थे । फिर भी हमने अग्राह बंधनी थी ।

राष्ट्रीय अर्थन्यवस्थामें विदेशी पूँजीको परेलू क्षेत्रमें अगनी स्थिति बायम रखनेका विरवाम दिताया गया । भारत और उसके पड़ोसी देशोंमें अग्रजोंकी भारी पूँजी लनी होनेके कारण यह एक महत्वपूर्ण तत्व था । साम्यवादी पाटीपर रोक लगा दी गई । हफ्ताले फसद नहीं की जाती थी । पुम्ने प्रशासनका पीत्तादी ढाँच बना रहा । यहाँ तक कि देशकी सेनाओंमें भी कमसे कम दो सौ से तीन सौ तक अग्रज अकसर महत्वपूर्ण पदोंपर बने रहे ।

यह सब बातें यह बनलानेके लिए नहीं लिखी गई हैं कि हम प्रसारकी आतारक और बाध नीति भारतके नये शासकोंको नगरसुद थी । भारतीय पूँजीजीवियोंने पश्चिममें मर्दे—करा बनाये रखनेके लिए हम प्रसारकी नीति अगनाकर यह आशा बोंगी कि मधुमान बना रहेगा । यह बाल लाभप्रद और बुद्धिमानी की थी ।

लेकिन १९४९ के आरम्भमें साम्राज्यवाद विभित हो उठा । अकसर एक प्रमुख कारण भारतीय पूँजीजीवियोंका शीघ्रतापूर्वक समलन था । यह महत्वपूर्ण बाल थी और नये संविधान द्वारा भारत अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय मामलोंमें स्वावलम्बनी और अग्रमर होता रिखाई पड़ रहा था । यह साफ दीखने लगा कि इन स्थितिके कारण वह

साम्राज्यवादी हिंसे अधिकाधिक स्वरूपमें आयेण। मधुमानसो शान्ति के मय व्यतीत करनेकी आशा कम थी।

राजनैतिक गठनबन्धनमें नया भारत बरामतीका दर्जो चाहता था। वह ऐसी 'महायन्त्रा' लेनेमें म्मिक्तक रहा था, जिनके कारण उसे अपनी स्वतन्त्रताने समझौता करना पड़े। इनके आतिरेक एशियाके दूसरे देशोंको भी आतानिदेशक बंधनोंमें मुक्त करना चाहता था। इस मामलेपर १६ राष्ट्रोंके हिन्देशियाके बारेमें दिन्तीमें होनेवाले अधिदेयानमें ममालम बढम हुई। नेहरूजीने धीरे राजोमें हुवाया यह दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा कि "दूसरे देशोंपर आश्रित, आक्रावरी उनके हाथका बहुत पुराना खिलाता एशिया अब अपनी स्वतन्त्रताके बारेमें उनका कोई हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता।" लार्ड बर्जेनकी 'भारतीय धुरी' अब स्थान-भ्रष्ट होती मामम घनी।

भारत सरकारके साम्यवाद विरोधी लेखारा प्रदर्शन या और कोई अन्य आचरण साम्राज्यवादियोंको भयमुक्त न कर सके। इस सन्धिमें 'न्यू स्टेट्समैन' और 'नेशन' के सपादक विंगले मार्टिनने एक महत्वपूर्ण तत्व बनलाया। उन्होंने लिखा था कि "मुझे एक महत्वपूर्ण सूत्र द्वारा यह बनलाया गया है कि भारतमें कममें कम एक लाख कम्युनिस्ट तथा अन्य लोग कैद हैं। इनका अपर्य यह हुआ कि राष्ट्रीय सरकार द्वारा इनके आदमों बिना मुफ्तमा कथने कैद किये गये हैं, जिनने अंग्रेजोंने शायद ही किसी समय किये हों।"

साम्राज्यवादने सोचा कि यह हो सकता है, पर भारतमें विश्वासानि और भाव-भावनी बात-चीत जोरोंपर है। क्या राजगोपालाचारीने मुद्रको निशान्दनी घोषित करनेके लिए नहीं कहा था? ऐसी भावनाओंमें साम्यवादको समुद्र करनेकी गय आती थी। भारत अले ही ब्रिटिश कामनवेल्थमें रहना स्वीकार कर ले, पर उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे एक-दो पाठ पढ़ाने ही चाहिए। दिन्तीको कूट-नीतिक सूत्रों द्वारा इस बात-चीतकी चेतावनी मिल गई कि क्या होनेवाला है।

लेकिन ज्योतिषीके सन्धोंमें 'प्रह अच्छे थे।' वह चीनकी शक्तिशाली मूमिपर होनेवाली उषल-पुषलसे शोधित हो उठे। एशियाके राष्ट्र समुदायमें

एक युग का अंत

राष्ट्रीय परिवर्तन हो गया। भारी सुभावनाओंमें पूर्ण कम्युनिस्ट चीनके उदयमें घटाने साम्राज्यवादी शक्तियोंको खीणकर दिया और बुरी तरह दबाये हुए औद्योगिक देशोंमें—विशेष रूपमें भारत, बंगला और हिन्दोशिया बागियोंमें जिन्होंने स्वतंत्रता की शक्ति पहली बार अनुभव किया था, नई शक्ति का संचार हुआ।

राजनीतिमें असाधारण कुछ लोग जिन प्रकार हमें विस्वास दिखाना चाहेंगे, उस प्रकार दिल्ली द्वारा कम्युनिस्ट चीनकी बकातन तथा राज्यधर्म उसके प्रवेशके लिए मार्ग बनाना किसी खाल व्यक्ति की कल्पना की आकस्मिक उपज न थी। यह नीति भारत तथा उन अनेक गैरकम्युनिस्ट देशोंके राष्ट्रीय हितोंमें मग्न थी, जिनपर साम्राज्यवादी दबाव अब भी मौजूद था और जो अपने सामने अपने आरक्षित असाधारण पाते थे। वे हम पत्रोंकरके शब्दोंमें 'माओ-तुंगके नेतृत्वसे शिष्टा-बागियोंका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व बढ़ गया है।' वे यह भी कह सकते थे कि साम्यवादी चीनने अस्तित्वको एक नया बल मिला है।

कम्युनिस्ट चीनके प्रति एशियाके इस दृष्टिकोणसे निर्माणमें भारतने नेतृत्व किया, क्योंकि यहाँ का सत्ताधारी वर्ग एशियाको हममें होनेवाले लाभों से शीघ्रतासे समझ गया। मेरूजी ऐसे अवसर छोड़नेसे अभ्यस्त न थे। इसके बहुत पहले ४ दिसंबर १९४७ को ही उन्होंने स्पष्ट रूपमें कहा था कि "आप कोई भी नीति निर्धारित करें, पर देशके विदेशी मानकोंको सहायित करनेकी कला इसी बलमें मजबूत है कि आप यह जान सकें कि सबसे अधिक पावदे की बात क्या होगी। हम अन्तर्राष्ट्रीय मौहताबी बात कर सकते हैं और जो कहते हैं, उसके अनुसार काम कर सकते हैं, पर ध्यानमें रखने पर मालूम पड़ेगा कि किसी भी देशकी सरकार अपने देशके लाभके लिए कार्य करती है और कोई सरकार ऐसा काम करनेकी हिम्मत नहीं कर सकती, जिसमें देशकी हानि हो। इस कारण चाहे देश साम्राज्यवादी, समाजवादी या साम्यवादी हो, उसका विदेशीयोंमें अपने देशकी भलाई की ही एक प्रमुख रूपसे सोचना है।"

इसी मापदंडके अनुसार भारतने आचरण करना शुरू कर दिया तथा इसी मापदंड आगे बढ़ी हुई एक अन्य स्वीकारोक्तिको हमेशा याद रखा, जिसमें उन्होंने कहा था

कि "अनमें विदेशी नीति आर्थिक नीति पर प्रभाव होनी है और जब तक भारत अपनी आर्थिक नीति को प्रभावसे निर्धारित नहीं करता, उसको विदेश-नीति भी अस्पष्ट अपरिपक्व और लक्ष्यहीन बनी रहेगी।"

१९४६ के उत्तरार्धमें स्पष्ट होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिपर यहाँ छोटे बालन अनुपयुक्त न होगा। शक्तियों परम्परागत सम्बन्धोंमें एक बहुत बड़ा निर्णायक परिवर्तन हो गया था। कम्युनिस्टोंके प्रथम राज्य, रूसकी स्थापनाके समय तक साम्राज्यवादी शक्तियोंको युक्तलोकके लिए मारा विरस मौजूद था। अश्वीक और एशियाके साधनों तथा पारिधर्मोंका लाभ कृतापूर्वक जिनका वे वसूल कर पाते थे वसूल करके वे मोटे हुया करते थे। उन्होंने अपनी 'प्रजातान्त्रिक' तथा 'उदार' संस्थाओंकी स्थापना दूर-दूर तक फैली इन उपनिवेशोंमें मेहनत और आर्थिक पैदा करनेवाले कमजोर आधारपर की थी।

इसलिए इनमें कोई आश्चर्य नहीं, यदि उन्होंने बोलशेविक क्रांतिसे 'एक दैत्य' के रूपमें देखा हो और अपनी नेमायें मुसगठित करके इन नवजात कम्युनिस्टोंके राज्य पर इन विरसोंके साथ आक्रमण किया हो कि वे इनके सामने अधिक टिक न सकेंगे, पर वे टिक गये और आक्रांके विपरीत दृष्टांके साथ सामना किया। दखल देनेवाली सेनायें हार कर पीछे हट गईं।

पर साम्राज्यवाद शांत होनेवाला न था। ब्रिटेन और अमेरिकाकी मददसे जर्मन सैनिकवादको पुनर्जीवित किया गया। बोलशेविक खतरेका उत्तर फासिस्टवाद था। यह हथियार भी द्वितीय विश्वयुद्धके सकटपूर्ण वर्षोंमें विकसित होकर नष्ट हो गया।

सांविदन कमजोर विद्वत्ताकी वीर्योद्य मुख्य आक्रमण रहना पड़ा। लाखों आदमी मारे गये। एक दशककी लाम नलवार और आक्रांकी भेड़ बढ गये। पर साम्राज्यवादकी समाजवादकी सीमाओंका विस्तार होते हुए देखकर भय हुआ। युद्धकी रातने पूर्व यूरोपमें अनेक जनप्रजातान्त्रिक राज्योंने जन्म लिया।

और जब चीन्ने भी साम्राज्यवादका जुझा उठार फेंक, तो सभी देशोंके दर्शकोंको यह स्पष्ट होसने लगा कि समाजवाद अब टिक जायेगा और सपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ विश्वके सभी लोगोंको इसी रास्तेपर ले जायेंगी। इन विचार

एक युग का अंत

भाराओका तत्कालीन प्रधान एशियाकी भूमिपर दीखने लगा, जहाँ उपनिवेशवादके ताड़वका प्रदर्शन भुलमरी और नम्रताके रूपमें हो रहा था।

अब तक स्वतंत्र विचारधारावाले एशियावास्तियोंको राजनैतिक और आर्थिक रूपमें बदनाम किया जाता था। एक एक करके उन्हें धार्मिकमार्गण करना पड़ा था। अणुबम धारी; विनोदी शक्तिका कृशम प्रदर्शन होरोसिमा और नागासाकीमें उस समय हुआ था, जापान-संघि प्रभाव कर चुम्नेके बाद अब यह सोचने लगा कि निरवकी अपने अधिभागमें लेनेके उनके सामनेमें अब कोई रुकावट नहीं आ सकती।

पर नवजात चीनके उदाहरणका प्रभाव पड़ा। संयुक्तराज्य अमेरिकाके विद्रु चांग काई शेकके कृमिनटानको सद्गुणी देशवासियोंका नेतृत्व करनेवाली साम्यवादी पार्टीने हरा दिया। अपने उत्पीड़नोंके हथियारोंपर कब्जा करके चीनवासियोंने पैकिंगपर अपनी सार्वभौमिकता और शक्ति स्थापित कर ली। साम्राज्यवादको विरवास हो गया कि एशियाके दूसरे देशोंने अब परास्त करना आमान न होगा। ऐसे व्यवहारका यह प्रभाव पड़ेगा कि यह देश भी अपनी समस्याओंका हल वही रूपमें ढूँढनेका प्रयत्न करेंगे, जिनमें चीनको बड़ी अच्छी सफलता मिली है।

१९४६ में उपस्थित इस बैठकका सामना साम्राज्यवादने ऐसे दुधारी आक्रमणमें किया, जिसके बारेमें वे सोचते थे कि उसका सामना करना संभव नहीं होगा।

प्रथम आक्रमण सैदाशिक था। साम्यवादकी बड़े बीभत्तरूपमें चित्रित किया गया। एशियाके शान्त्वर्गोंको यह बतलाया गया कि यदि वह 'सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान' कैमलिनके प्रभावमें आ जायेंगे, तो उनका क्या होगा। समाचार-पत्रोंमें इस प्रकारके झूठे प्रचारकी बाढ़-नी थी गई। इस प्रचारका मुख्य उद्देश्य, यह प्रमाणित करना था कि चीन अब सोवियट सपका अंग बन गया है।

इस आक्रमणका बहुत बोलबाला हुआ। एशियाकी साम्राज्यवादी स्मृति इतनी स्पष्ट थी कि उसे इस प्रकारके मिथ्या प्रचारसे नहीं भ्रमसाया जा सकता था। अमेरिकाकी उद्योगनाओंके निरुद्ध कम्युनिस्ट चीनके दृढ़ कदमके कारण उन लाखों व्यक्तियोंकी प्रशंसा प्राप्त हुई, जिनकी सदियों पुरानी निराशा यह थी कि वे अपने

आक्रमण का दूसरा दौर

रबेन डेलोडिकोंके मुँहमे निकलनेवाली गलियों और दुन्यवहारों पर रोड नहीं लग पाते थे। ऐसी बरबर भूमिपर इस प्रकारका निरर्थक बालोचित मिथ्या प्रचार जब नहीं जमा सकता था।

आक्रमण का दूसरा दौर 'सहायता' के नाम पर हुआ। विचार यह था कि यदि बारविवादने आप किसी समलेको हल नहीं कर सकते, तो वैसेमे वह खान हो जायेगा। यह मफल हो आया, पर यहाँ भी साम्राज्यवादी भूग्न उस 'सहायता' के नामपर कुछ शर्मे लगानेके पीछे पड़े थे। बघनेमे मुक्त होनेवाले एशिया-वासियोंने केवल अभी हालमे जीने हुई सार्वभौमिकताका कुछ भाग छोड़नेके लिए ही नहीं बल्कि समाजवादी दुनियाके विरुद्ध शान्तियुद्धमें भी सम्मिलित होनेके लिए करा गया। और इसका अर्थ 'प्रतिरक्षा संधियाँ' नामधाने समझौतोंमें सम्मिलित होना ही न था, बल्कि उमका अर्थ अर्थिक और सांस्कृतिक बाधका भी था, जिसका सीधा-आदा मतलब अविनिमित्त देशोंको साम्राज्यवादी बाजारमी दबा पर अरक्षित करना था।

पहले आक्रमणमे यह आक्रमण अधिक मफल रहा, क्योंकि कुछ एशियायी देशके शासकोंने 'सहायता' स्वीकार करनेक बाद विद्यमान सृष्टिको अच्छी तरह देख नहीं पाया तथा मनोवैज्ञानिक रूपमे वे 'प्रचारक, शोषक, नाम्यवादियों' के बारेमें बान करनेके लिए तैयार थे।

ऐसी सहायताने द्वारा अनेक सरकारोंको नष्ट करना था, पर भारतने उनके विरोधक नेतृत्व निगा। उसे 'सहायता' की भारी जरूरत थी, पर ऐसी सहायताकी नहीं, जिसके साथ कुछ बघन हो। भारतके पूँजीजीवी शासन जानते थे कि जनता सार्वभौमिकताके विपरीत प्रकारके आक्रमणरूपके बारेमे कोई दलील नहीं सुनेगी। यहाँ तक कि राष्ट्रमंडलके नाममात्रके बंधनभी भी भारी आलोचना हुई थी और कांग्रेसपाटीके सन्धियोंकी इसकी सार्वभौमिकता सिद्ध करनेके लिए भारी कठिनाई उठानी पड़ी थी।

इसके अतिरिक्त एक अन्य टक्का भी था, जिसे भारतीय पूँजीजीवियोंने शीघ्रता पूर्वक देखकर उसका लाभ उठाया। यह राज्योंके नये सन्तुलनमे भारतकी मुद्रोपयोगी स्थिति थी। चीनके समाजवादी दुनियाके एक अन बननेके उपरान्त साम्राज्यवाद

एक युग का अंत

केवल अपने रानेरेके साथ ही भारतका विरोध कर सकना था, जो एशियाकी दूसरी एकमात्र महाशक्ति था। भारतके शासकोंने इन मयका पायेदा उठानेकी सोचकर तदस्थताका पूरा लाभ उठया।

यह तलवारकी धार पर चलना था। यदि यह नीति बहुत आगे तक कार्यान्वित की जाती, तो इस बालका दर-या कि साम्राज्यवाद भारतमें भी उम्मी प्रसारके प्रयत्न करेगा, जो श्रमवादके तेलछेनके महत्त्वपूर्ण प्ररनकी लेजर वह ईरानमें कर रहा था। यदि यह नीति समाजवादी दुनियाके प्रति अधिक बेगरी हो जाती, तो साम्राज्यवादके तीन विरोधी भागनवासी इसे राष्ट्रीय और एशियाके हिनोंके प्रति विभागघत सममाते। तलवारकी धारकी यह यात्रा बरी कुरातनापूर्वक सम्पन्न हुई।

१९४६ में समाजवादी देशोंते व्यापार बालू करनेकी बालचीन शुरु हुई। १९५० के आरभमें साम्यवादका हमन भी धीरे धीरे बन हो चला, यद्यपि उसके ऊपरने रोक और उमरी रैरान्निधन बहुत दिनों तक नहीं हटाई गई। कम्युनिस्ट चीनके प्रति भारतकी मित्रता और क्रैमर्ष सन्ध्योंका भारी प्रदर्शन रिया गया। यह मोकनेयाने लोगोंके लिए कि इस दिशामें भारत बहुत आगे बड रहा है, निष्पतके स्वशामनका प्ररन जीवन रजा गया, जिसने मालूम पड़े कि निष्पतना अपना काम कर रही है।

प्रमुख मुकाब तो भावनाहीन पश्चिमकी ओर बना हुआ था। मार्च १९४६ में गण्डर्पनि टूमनने भारतके प्रधानमन्त्रीकी अमेरिका भ्रमणके लिए आमन्त्रित रिया, यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया गया। इस महीनेके अन्त तक थीमनी विजया लक्ष्मी पंडित वाशिगटनमें राजदूत नियुक्त की जा चुकी थी। इस बालर भूमिमें नेहरूके आगमनकी पूरी तैयारी हो गई थी।

अकहूरमें टूमनने इनका अभिवादन रिया। इस अभिवादनके शब्द बरी कुमलता-पूर्वक चुने गये थे। उन्होंने कहा था कि 'मायकी यही इच्छा थी कि आपके देशकी पहुचनेके एक नये मार्गकी हूँनेके प्रयत्नमें यह देश खोज लिया गया। मैं आशा करता हूँ कि आपकी यह यात्रा भी एक रूपमें अमेरिकाकी खोज होगी।' नेहरूजीने पूर्वी और पश्चिमी दुनियाके दो बड़े गणतंत्रों द्वारा एक दूसरेके दृष्टिकोणकी परस्पर सममनेकी बाल कही।

इस यात्रा में बहुत आशा की गई थी। अमेरिकी ने केवल नेहरू ही आने पर जाने करने की नहीं सोची थी, बरन धीरे-धीरे इस महत्वपूर्ण प्रदेश में ब्रिटिश प्रभाव से हटाने की भी आशा की थी। पर नेहरू ने भारत की शान्ति की खोज तथा किन्हीं ऐसे मानसों में न पैमाने का इरादा बताने व्यक्त किया, जिससे अर्थ किन्हीं प्रकार के शान्त युद्ध में सम्मिलित होना था। उन्होंने कहा था कि "भारत स्वतंत्र राष्ट्रों के परिवार में किन्हीं के प्रति द्वेष या शत्रुता के बिना सम्मिलित हुआ है और वह प्रत्येक अभिवादन करने और अभिवादन कराने के लिए तैयार रहेगा। वास्तव में उसे अपनी विदेश नीति स्व-हित तथा विशाल दृष्टिकोण पर आधारित करने पड़ेगी; पर इसके साथ ही साथ वह अपनी आदर्शवादिता को अपने सुट देगा।"

इस प्रकार दृष्टिकोण अमेरिकन प्रमुखों को प्रमत्त नहीं कर सका था, जो कुछ के लिए पूर्ण रूप से तैयार थे। यह वही दृष्टिकोण था, जिसके कारण अनेक प्रतिष्ठित उदार अमेरिकियों ने मेरिथियन दमनक शिखर बनना पड़ा था। यह वही दृष्टिकोण था, जिसके कारण अनाहिन लिङ्ग के देश में अनेक कौ-सुहों की जीविक के साधनों में हाथ धोना पड़ा था।

जैसे जैसे यह निम्नापूर्ण प्रमाण आने लगा, अमेरिका के शासकों के व्यवहार में शीतलता बढ़ने लगी। लेकिन अमेरिकावासीयों में यह मान नहीं था। उनके उदार विचार भी उस क्षण कुचल दिए गये थे, भारत के इस व्यक्ति के प्रभाव में प्रतिबलित हो उठे। यदि अमेरिकी यात्रा में कुछ परिणाम निकला तो यह कि हमने नेहरू से शीत युद्ध में तन्त्रन्तन सत्त्वों के प्रति अधिक जगरूक कर दिया। भारत भारत लीडनेर उनकी यह धारणा स्पष्ट हो गई कि तत्त्वन्तन की श्रमिक प्रभावशाली होना चाहिए।

१८ नवम्बर १९४८ को इस यात्रा के बारे में बोचते हुए नेहरू ने कहा कि अमेरिकी के कुछ जिम्मेदार व्यक्तियों ने भारत की किन्हीं दल में सम्मिलित न होने की वर्तमान नीति की तारीफ की तथा कुछ ने उसको पसंद किया। उन्होंने जोर देते हुए कहा कि उनकी नीति उम्मी प्रकार की है, जैसी नीति जार्ज वाशिंगटन तथा उस वदे राष्ट्र के अन्य सत्त्वों ने शुरू में अपनाई थी। उन्होंने जानबूझकर और निश्चित

एक युग का अंत

रूपने उन दिनों संसारकी समस्याओंमें अपनेको अलग रखा था ।” यह शब्द-योजना बड़ी होशियारीपूर्ण पर निरिच्छा थी । इनका अर्थ समझनेमें कोई भूल नहीं कर सकता था ।

फिर भी अमेरिकीने रियासती विमलके भुलस्वरूप राजनीतिज्ञोंने यही करना शुरू किया । अमेरिकन कांग्रेसके सामने नेहरूजीकी इस वक्तुताका जिनमें उन्होंने कहा था कि “ जहाँ स्वतन्त्रता अथवा न्यायके ऊपर विपत्ति आई हुई है अथवा जहाँ दमन हो रहा है, वहाँ न हम तटस्थ रह सकते हैं और न रहेंगे । ” का जानबूझकर यह गलत अर्थ लगाया गया कि भारत कालक्रममें आगल अमेरिकन दलके साथ है । किसी हद तक यह धारणा आत्मनीसे इस बातसे समझा देती है, कि भारतके प्रधानमन्त्रीकी अधिक सुरामन्द क्यों नहीं की गई और उनकी तटस्थता पर गंभीरतापूर्वक विचार क्यों नहीं दिया गया, विशेषरूपमें उस समय जब कि अक्टूबर १९४६ में अमेरिकानी यह यात्रा चीनके कम्युनिस्ट गणतंत्रकी स्थापनाके साथ ही साथ सम्पन्न हुई थी ।

तत्कालकी धारणी यात्राका अब प्रथम परिणाम मिलना शुरू हो गया । इस शीतयुद्धकी उलझनोंमें दूर सोवियत जीवन्मते अधिक सुगम्य और निर्भय बननेकी पुरानी समस्याका तटस्थतामें एक मनापान मिल गया था और भारतको बाहर भी इसका समर्थन प्राप्त होने लगा

अमेरिकन सरकार गलत कालमें पकड़ ली गई थी और उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि इस विकट परिस्थितिमें आगे कैसे चला जाय । उसने आगमन रक्ता पध्दा । उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि वह कम्युनिस्ट चीर जानक दीमकसे नष्ट करना चाहते हैं — एक ऐसी नीति जिनसे पक्षमें मिटेन नहीं था, क्योंकि वह कोई ऐसा साहसिक प्रयत्न नहीं करना चाहता था, जिसका परिणाम सदिग्ध हो । मरना भी इसी दृष्टिकोणका समर्थक था ।

अमेरिकीके राष्ट्रियोंका सोझ-साझा तर्क था । उपनिवेश्योंमें ब्रिटिश और फ्रान्सको उनके कारण बहुत कठिनाई उठानी पड़ी थी, जिसका समझना उन्हें आबुलकारी कालकी सहायतामें बननेकी आशा थी । इस नये साहसिक कार्यमें सम्मिलित होनेका

अर्थ होना अर्थिक महादल और परिणामस्वरूप अर्थिक आकुलता ! क्योंकि सहा-यनाका अर्थ था अमेरिकन विस्तारकी मददके लिए अधिक डिवीजन खड़े करना ।

एक वाक्यमें हम यह सकते हैं कि साम्राज्यवादी शक्तियोंकी मित्रतामें छिपे हुए अन्तर बरतते देखने लगें थे । इसका परिणाम था एशिया और अरब अरबीयको भी अपने स्वतंत्र आचरणके लिए अधिकारिक अवसर प्रदान करना ।

इन घट्टभूमिमें भारतके शासनोंने देशों रियासतोंका विनाश पूरा कर डाला तथा नये गणतंत्रके सुविधानको अपना लिया । ये दोनों परिवर्तन आपसमें अच्छी तरह जुड़े हुए थे और केवल अनुकूल विरव-परिस्थितिमें ही समझ हो सके ।

यह टीका है कि इस्लामित मत्त मुन्द हो चुकी थी, पर अंग्रेजोंके उत्तराधिकारमें प्राप्त आर्थिक परिस्थिति अब सफटाग्र हो रही थी । अन्ततः आन्तरिक पीडाबला बुरी तरह खर्च हो रहा था । देशका राजाना युद्धराजीन मुद्राम्प्रीतने दुष्परिणामको तब भी अनुभव कर रहा था । अन्तमें विदेशी व्यापारिक घारा बह रही थी । २६ जनवरी १८५० को स्वतंत्र सार्वभौमिक गणतंत्रकी स्थापनाके उपरान्त इन परिस्थितियों की दृष्टता नई समस्याओं उपस्थित करनेवाली थी ।

भारतमें होनेवाले परिवर्तनोंको न दल पानेके कारण देशकी कम्युनिस्ट तथा कुछ अन्य विरोधी पार्टियोंकी नीतिमें उत्तमज पैदा हो गई थी । वे अब भी नेहरूने भारतीय बाग काई शेकके रूपमें देखने थे । उनके लिए कांमिस पार्टी आंग्ल-अमेरिकाके इशारों पर चलनेवाले हथियारके रूपमें थी । क्या उनके नेताओंने विदेशी पूँजीगे सम्बद्ध विशेष रक्षण प्रदान नहीं किये थे ? क्या उन्होंने एकके उपरान्त दूसरी समस्याओं को भग नहीं दिया था ? क्या उन्होंने समाजवादी दुनिधामे मित्रता स्थापित करनेको सभावनाको खम नहीं कर दिया था ? क्या भारत-कामियोंकी अवस्था कुल मिलाकर विगनी नहीं थी ? इन प्रश्नारके ऊपरी विवेचन तथा पटनाओंको एक दूसरेमें सुवन्धित न करनेकी विद्वने कम्युनिस्ट पार्टीको अंधा कर दिया और राष्ट्रीय परिस्थितिमें प्रकट होनेवाली नई शक्तियोंको समझनेसे उन्हें रोका ।

एक युग का अंत

पर पूँजीजीवी परिवर्तित परिस्थितियोंके अनुसार पहचाने ही आवरण करने लगे थे ; देशकी राजनैतिक और आर्थिक समस्याओंपर पूरा नियंत्रण रखनेवाली बोमैस पार्टीके अंदर विद्यमान इन तन्त्रोंका स्वयं फूटके द्वारा प्रतिबिम्बित हो उठा । मोटे रूपमें प्रगतिशील दलने अलग होकर भरना नया दल बना लिया था । असंतुष्ट लोगोंने प्रतिक्रियावादी समस्याओंमें माग लेना शुरू कर दिया । विचार और नीतिक स्वयं, उन्मूलक नेहरू और परिवर्तन विरोधी पटेलके दृष्टिकोणोंका अंतर अधिक स्पष्ट था ।

पूँजीजीवियोंके अन्दर शक्ति प्राप्त करनेके सपनाका यह आरम्भ ही था, ऐसे सपनेका जो स्वतंत्रताके दूरान वाले वर्षोंमें देशकी बाई और मुक्त देश, समाजवादी देशोंमें मित्रता और सहयोग स्थापित करेंगे तथा भारतके लाखों व्यक्तियोंके लिए नये क्षेत्र खोल देंगे ।

दो प्रवृत्तियाँ

जब कभी आपसे दुविधा हो. उस समय गरीब और सबके कमजोर अदमीय चेहरा याद करो, जिने आपने देखा हो और अपने मनमें पूछो कि जो कदम आप उठाना चाहते हैं, वह किसी प्रकार उसके लिए उपयोगी होगा और क्या वह उससे कुछ लाभ उठ सकेगा ।

—डॉ. व. गांधी

२६ जनवरी १९५०। १९३० से अनेकों बार बर्रके प्रथम मासकी हम गान्धीजी भारतके देशभक्त विदेशी शासनसे स्वतंत्रता प्राप्त करनेके कार्यमें अपने आपको नये निरमे लानेकी राह देखने लिए इकट्ठे होते रहे हैं । वर्षों पूर्व यही दिन था, जब अंग्रेजोंके प्रति आशा तमाम्प केन्द्रित थी। स्वतंत्रताके स्वतन्त्र पूर्ण स्वराज्य अर्थात् उद्देश्य घोषित किया था । इसी कारण जब भारत गणराज्य घोषित हुआ, तो उस घोषणाने जिसे २६ जनवरीका दिन चुना गया ।

पर इन घटनाके मद्द्तकी बहुत कम लोगोंने समझा । अनेकों व्यक्तियोंके निवे हम गणतन्त्र दिनका ठमका बेचल १५ अगस्त १९४७ को घटनेवाली घटनाकी औपचारिक स्वीकृति थी । तबसे परे इतने बड़ा और कोई बात नहीं हो सकती थी । २६ जनवरी १९५० से भारतने अपनी यात्रा स्वतंत्र सार्वभौम राज्यके रूपमें आरम्भ कर दी । सत्ताहान्तारके उपरान्तले अन्तिमचरण के समान हो चुके थे । एक नये युगका प्रारम्भ हुआ था ।

पर सत्य सगारने ही हम मी गणराज्यका जन्म देता । २७ जनवरीको सन्तुष्ट राज्यने प्रमुख पश्चिमी शक्तियों साथ उत्तरी अटलांटिक क्षेत्रकी हानिदारोंने सम करनेके समझौतेपर हस्ताक्षर किये और १ फरवरीको एक वर्षके भीतर उद्भूत बन बनानेके अने विचारको व्यक्त किया । जिनके एक वममें अनेक अणु बमोंके बराबर विध्वंसक शक्ति होगी । १९५० के प्रथम चतुर्थांशने शीतयुद्धके तनाव और दुनियाके दलोंने अधिक विभक्त होनेकी प्रवृत्तियोंके विस्तारको देखा । ५-

दो प्रवृत्तियों

शीतयुद्ध की नीति गई नहीं थी। यूनान और तुर्की को पौड़ी सहायता देनेवाला दूनैक सिद्धान्त तथा आगे चलकर इसी सिद्धान्त के मार्शल-नीतिके रूप में विभाजने (बढ़ भी द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्तिके कुछ ही वर्षोंके अंदर) अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए रखा था। अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप दोनों स्थानों पर जनमत इस नीतिके आचरण को न रोक सके और इसीसे अव्यवस्था तथा आन्तरिक शांतिहानि का अव्यक्त परिचय मिल जाता है।

यह सच है कि साम्राज्य और शान्तिवादी, असंगठित स्वतंत्र तत्त्वों के साथ मिलकर दूसरे युद्ध की दिशा में विश्व के घड़ियों को रोक्ने का प्रयत्न कर रहे थे। पर उनके प्रयत्न इन दमनकारी तैयारियों को निष्फल करने के लिए बहुत सीमित तथा कम थे। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि शीतयुद्ध की रणनीति में ही यह अन्तर था कि वह स्वस्थ दृष्टिकोण को क्षुब्ध कर सके।

वडाहरण के लिये मध्य उत्तेजना के परिणामस्वरूप समाजवादी दुनिया के देशों ने भी अपनी सीमाएँ सुरक्षित करने के लिये सशस्त्र बल का इस्तेमाल शुरू कर दिया। निर्धारित साम्यवादी मार्ग छोड़ना एक कमजोरी तथा दगावानी का चिह्न माना गया। सोवियत संघ द्वारा टीटो प्रथम पर विचार तथा पूर्वी यूरोप में प्रस्तुत होनेवाले अनेक राजनैतिक मुद्दों में यह इंगित कर रहे थे, कि शीतयुद्ध ने मुक्त समझे जानेवाले देशों में भी क्या हो रहा है। यह सही है कि इन साम्यवादी अंतर्द्वंद्वों में और भी अनेक समस्याएँ उत्पन्न रही थीं, ऐसी समस्याएँ जिन्हें अच्छी तरह समझना अभी बाकी था। पर इनका मुख्य कारण बढ़ता हुआ भय था।

और जिस प्रकार शीतयुद्ध के कारण राष्ट्रीय समूह एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हो गये थे। उन्ही प्रकार राष्ट्रीय अंदर भी तीन मतभेद बढ़ गये थे। फासिस्ट शत्रु में संयुक्त मोर्चा खेनेवाली एजेंडा की भावना मर चुकी थी। और उसका स्थान अनेक समस्याओं को लेकर होनेवाले अनेक दोषारोपणों ने ले लिया था, जिसके कारण इस प्रमुख महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर से ध्यान हट गया कि बीसवीं शताब्दी में बिना शांति के प्रगति संभव नहीं है और उसे पाने के लिए सह-अस्तित्व के सम्य उपाय ढूँढने चाहिये।

आज हम परस्पर इतने अधिक सन्निहित और एक दूसरेपर आश्रित हैं कि हम यह नहीं कह सकते कि एक जगह घटनेवाली घटनाएँ दूसरी जगह असर पड़ना हमरी नहीं है। शीतयुद्धको अंतमें एशियामें प्रविष्ट होना ही था। चीनकी घटनाएँ और एक विस्तृत क्षेत्रमें साम्यवादका प्रसार एशियामें शीतयुद्ध — नीतिके प्रारंभ-विंदु नहीं थे, जैसा कि कुछ लोगोंका विचार है। क्या कम्युनिस्ट गणराज्यकी स्थापनामें पहले जापानके शस्त्रीकरणका निर्णय नहीं हो चुका था। क्या संयुक्त राज्य अमेरिका प्रशान्त महासागरमें स्थित सैकड़ों द्वीपोंको 'नये टांगके विमान-बाइकोमें' परिवर्तित करनेके लिये अपने अधिकारमें नहीं ले चुका था? क्या अंग्रेज और फ्रान्सीसी पूर्वी और पश्चिमी एशियामें स्थित अपने उपनिवेशों और आश्रित राज्योंमें अपना अधिकार कमजोर करनेके लिए बुरी तरह नहीं लड़ रहे थे? और क्या विदेशी शासनभार उठाने से बचनेवाली भांगत, पाकिस्तान, मल्ला और ईरानिया जैसी एशियायी सरकारोंको सहायता नानकारी साधनेके द्वारा नष्ट करनेका यत्न नहीं किया गया था? गफल होनेके लिये शीतयुद्धकी एथनोलॉजिक मंडल विश्वकी रीतिमें निर्धारण आवश्यक था। और संयुक्त राज्य अमेरिकामें इस चीजको अच्छी तरह देख लिया था।

हस्तक्षेप करनेवाली विदेशी पीढ़ीने नवीन स्थापित सोवियत राज्यपर आक्रमण किया था। उसी प्रकार २७ वर्षोंके अन्तर्द्वारे पश्चात् स्थापित कम्युनिस्ट चीन भी दगाव और बदनामीका शिकार बनाया गया। उनके समुद्री तटकी उन राश्ट्रोंकी नौसेनाओं द्वारा घेराबंदी कर दी गई, जिनके साथ उसकी कोई लड़ाई न थी। बाग बाई शेंक पीछे हटकर अपने द्वीपमें बैठे हुए संयुक्तराज्य अमेरिकाद्वारा निर्धारित विस्फोटक रेल खेलने लगे। अब होनेवाली सन्धि हस्तक्षेप करनेकी प्रारंभिक तैयारी थी। इसी बीच साम्राज्यवादने चीनके दक्षिण चीनसागरमें एक आक्रमण स्थान बनानेके लिये प्रयत्न रखा। जापान भी शांतिपरका कदम सम्पन्न करनेके लिये उत्साहित किया गया।

अमेरिकन युद्धनीतिज्ञोंने अभी यह तय नहीं किया था कि इस शीतयुद्धको यूरोपमें गरम युद्धके रूपमें परिवर्तित किया जाय या एशियामें। निर्णय तो एक सीधी पूर गणना-पर आश्रित था। अर्थात् युद्ध वहीं जारी करना चाहिये, वहाँ वह धन, जन और आयुधों,

दो प्रवृत्तियाँ

विशेष रूपसे जनमें सजने कम कीमतमें सम्पन्न किया जा सके । और हम कारण १४ फरवरी १९५० को जब कि एक और सोवियत संघ कम्युनिस्ट चीनके साथ ३० वर्षीय मित्रता और सहयोगकी सभिर हस्ताक्षर कर रहा था, वहाँ वैश्वक्रमें १७ अमेरिकन कूटनीतिज्ञ तथा एशियायी दलोंके प्रगत दक्षिणपूर्वी एशियाकी आर्थिक सहायताके प्रभार बानचीन करनेके लिये एगत्रिन हुए । इस निर्दोष सन्द-जालमें उनको एक परिचित जाल दिवाई पड़ रहा था, उन्होंने ऐसी सहायताका प्रभाव योरोपमें देखा था ।

१५ मई तक ब्रिटिश राष्ट्रमंडलके ७ देशोंके प्रतिनिधि मिडनीमें दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशियायी देशोंसे साम्यवादके विरुद्ध उभाड़नेकी सफल योजनाकी प्रारम्भिक कार्यवाही निरिचन करनेके लिए एगत्रिन होने लगे थे । सोनपुद पक्षेकी भावनाके साथ अपने परिचित रूपमें एशियामें प्रवेश पा गया था ।

भारतीय गणराज्यकी सरकार सोनपुदकी इन बालोंके प्रति पूर्णरूपेण जागरूक थी, पर इन समय वह अधिक हैतान नहीं थी । प्रमुखरूपमें वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडलकी सहायताके कारण विरुद्ध थी । उसे आगा थी कि इस व्यवस्थाके द्वारा वह इस भयंकर परिस्थितिमें साफ निकल सकेगी । आखिरकार ब्रिटेनने बला कोई शोके साधियोंमें संवन्ध बिच्छेद करके क्या चीनके गणराज्यमें नियमित स्वीकृति प्रदान नहीं की थी, एक ऐसा कदम जिसके बारेमें दिल्ली बालोंने सोचा कि यह उनके हठका परिणाम था । इसके अनिश्चित ब्रिटेन भारतपर समर्थन इस आशामें कर रहा था कि वह साम्यवादी दुनियामें मुद्दमें फैसलेकी अमेरिकानी जलदवाजीकी नीतियोंमें एक अवरोध उपस्थित कर सके । ब्रिटेनकी मजदूर पार्टी भी थोड़े बहुमतमें चुनाव जीत चुकी थी ।

भारत सरकार सोच रही थी कि एशियामें उनकी स्वतंत्र स्थितिका उपयोग साम्राज्यवादसे लाभदायक शन स्वीकार करवा लेनेमें हो सकेगा । अप्रैल १९५० में नेहरूजीकी घोषणाका यही अर्थ था, जब उन्होंने कहा कि “ क्या मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता हूँ कि जिस प्रकारकी नीति हम अपना रहे हैं, वह तटस्थ प्रतिस्पर्धात्मक या नक्सरात्मक नीति नहीं है । ” यह साम्राज्यवादियोंके

लिए इशारा था कि उन्होंने यदि अपनी नीतिमें परिवर्तन नहीं किया, तो प्रतिक्रियाके लिए अन्य मार्ग मौजूद हैं।

इस प्रकारका दृष्टिकोण धीरे-धीरे बनने लगा था। कांग्रेसके नेता अपने-आपने कहने लगे थे कि भयप्रस्त होनेकी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि तत्कालके लक्षिते स्पष्टीकरण द्वारा सामाज्यवादकी भी घरेलू आर्थिक दृष्टिमें सहायता देनेके लिए बाधित किया जा सकता था। यह एक प्रकारकी मीठी-मिठी बात थी और भाग्यही इसके सन्तानमें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट क्यों होनी चाहिए।

मस्तिष्कमें हम प्रकारके विचारोंके साथ १६ जनवरीकी कांग्रेस कार्यकारिणी समितिके भागनेके लिए एक विराल आर्थिक योजना प्रस्तुत करनेकी एक 'योजना आयोग' नियुक्त करनेकी सिफारिश की।

वास्तवमें मना-हुलाकारण चलने अर्थात् समस्यापर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। इनके अतिरिक्त देशके विभाजनके परिणामस्वरूप पाकिस्तानमें जानेवाले लाखों निष्क्रमणार्थियोंके कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हो गई थी। अरमीर युद्ध, विशेषरूपमें उसके व्यय (लगभग चार लाख रुपये प्रतिदिन) ने मनस्या और भी बिगाड़ गई थी।

सरकारी अनुमानपर आधारित विभाजनके नुकसानोंके कुछ आकड़े शरणार्थियोंकी आर्थिक समस्या हमें दिखा सकते हैं। केवल पश्चिम पाकिस्तानमें शरणार्थियों द्वारा भूमिके अतिरिक्त छोड़ी गई अन्य अचल संपत्ति लगभग ५०० करोड़ रुपयेकी थी अर्थात् मुसलमान शरणार्थियों द्वारा भारतमें इस प्रकार छोड़ी गई संपत्तिके बेंचगुनी। मुसलमान किसानों और जमींदारों द्वारा भारतमें ४० लाख एकड़ पटिया जमीनके बदले ६० लाख या एक करोड़ एकड़ मिर्बाईवाली जमीन पाकिस्तानके हाथमें पहुँच गई थी। अन्य दावोंकी बराबर जीव नहीं हुई है, पर पूरा हिमाचल लगानेके अंतर्गत चल और अचल संपत्ति का अंतर भारत द्वारा प्राप्त करनेके लिए बहुत अधिक निरुत्प्रेक्ष्य। इन आकड़ोंमें यह बात मनमन्यमें ध्या जाती है कि उस समय पड़ोसी बार सामने आनेवाली शरणार्थियोंकी समस्या छिदानी अधिक उलझी हुई थी। उसको मुसलमानोंकी सहायता भी सीमित थी।

दो प्रवृत्तियों

पाकिस्तानके अधिकांशमें वज्रावस्था बढिया गेहूँ और कपास पैदा करनेवाला भाग तथा बंगालका जूट-क्षेत्र था। इन दो कटु मन्त्रोंने भारतमें जहाँ एक ओर अन्नसंकट उत्पन्न कर दिया, वहाँ दूसरी ओर रई और जूट उद्योगोंके लिए भी दूसरा संकट उत्पन्न कर दिया। क्योंकि कच्चे मालके मुख्य स्रोतोंमें उनका सम्बन्ध बिच्छेद हो गया था। अचानक अधिक खेती पर जूटकी खेती करनेका अर्थ अन्नकी कमीकी बढाना था। “एक समयका भोजन छोड़ो” के नारे और जनसङ्घर्षपर नियन्त्रण, के अन्तर्गत इस समस्याका कुछ विश्वमनीय हल न था।

यागयाग भी गंभीर रूपमें अस्तव्यस्त हो गया था। पहले कर्नाटी और बम्बई दोनों बन्दरगाह उत्तरी भारतका यागयाग संभालते थे। अब केवल बम्बई रह गया था और बन्दरगाहका अवरोध आगानीमें दूर नहीं किया जा सकता था, उन दिनोंमें भी नहीं, अब किसी प्रकारका आर्थिक और व्यापारिक विस्तार नहीं हुआ था। आशा यही थी कि ज्यो-ज्यो विभागकी गति बढेगी, यागयागके अधिक अवरोध उत्पन्न होंगे। इनमेंमें कुछ तो विभाजनके आर्थिक परिणाम थे और सरकारने यह समझ लिया कि इनका शीघ्रतापूर्वक कोई हल संभव नहीं है। इसमें समय लगेगा और भारतकी प्रगतिके मार्गमें इन स्वावरोधोंकी हटानेके लिए योजना बनानी पड़ेगी।

परन्तु शरणार्थी समस्या और काश्मीरके मामलेपर शीघ्र ध्यान देना आवश्यक था। यह समस्याएँ विस्फोटक थीं और साम्प्रदायिक सत्थायों तथा राजतन्त्रवादी अवरोधों द्वारा आगानीमें इनका लाभ उठया जा सकता था। यह प्रथम एक दुगरेरी जुड़े हुए थे। क्योंकि उनकी उत्पत्ति भारत और पाकिस्तानके तनावके कारण हुई थी।

इन बातोंकी चिन्ताओंके बावजूद भी कि साम्प्रदायवादी शक्तियों इस मध्यस्थताका लाभ लय उठाना पसन्द करेंगी, काश्मीर राष्ट्रसंघके हाथों सौंपा जा चुका था। जनरल ए. जी. एम्. बेन्टन द्वारा मध्यस्थताके प्रथम प्रयत्न विफल होनेकी सूचना ७ फरवरी १९४० को दी जा चुकी थी। अब यह दिखाई पडता था कि शायद यह प्रक्रिया जारी रहेगी, क्योंकि ऐसी विदेशी शक्तियाँ जिनका इसमें स्वार्थ था, इस उलझनको बनाये रखना चाहेंगी, जिससे भारत और पाकिस्तान परस्पर विभाजित बने रहें।

सामान्य स्थिति

कॉंग्रेस पार्टीको भी यही डर था और इसी कारण वह पाकिस्तानके साथ अपने सम्बन्धोंको परस्पर मिलकर सुधारनेकी इच्छुक थी। उमने यह भी अनुभव कर लिया था कि परिचयी पाकिस्तानने सभी हिन्दू निराश्रित होने गये हैं और ऐसी ही कुछ परिस्थिति पूर्वी पाकिस्तानमें तैयार की जा रही है। पाकिस्तानके प्रधानमंत्री लियाकतुल्लाह खानको दोनों देशोंमें सम्मानजन्य मामलोंपर बातचीत करनेके लिये २ फरवरीको दिल्लीमें आमन्त्रित किया गया। बहुत कम लोगोंमें किसी प्रकारकी आशा थी, क्योंकि काश्मीरके प्रश्नका उपयोग पाकिस्तानमें राजनैतिक रूपसे डाबाडोल सरकारका पक्ष रख करनेके लिये किया जा रहा था, जिस सरकारका जनताकी स्थिति सुधारनेका कोई इरादा नहीं था।

फिर भी भारत और पाकिस्तानके बीच एक समझौतेपर हस्ताक्षर हो गये। इससे पूर्वी पाकिस्तानसे आनेवाले निष्प्रमणार्थियोंका दबाव कम हो गया और आपसके संबंधोंमें एक हद तक सामान्य स्थिति आई। अर्थात् अपने अन्तर्गत नेहरूजी एक नयागी यात्रा करानेके लिये हुई। बातचीतके इन दो स्थितिनिर्माणों के बीचके समयमें राष्ट्रमण्डल काश्मीरके लिये ओवन डिक्शन नानक एक अन्य मध्यस्थ नियुक्त किया था।

अब कॉंग्रेसके नेताओंने अपना ध्यान भारत रानियोंकी अन्तःव्यष्ट और मकानकी समन्यायोंकी ओर आकृष्ट किया और हमेशाकी तरह प्राधिक मामलोंमें करना ध्यान लगाने ही उसकी हता करनेके मार्गमें मतभेद दिखलाई देने लगा। उन्मुक्त तथा परिवर्तन विरोधी वही सैद्धान्तिक मतभेद, जिसमें कॉंग्रेस पार्टी इस शासकीयके प्रारम्भमें तथा उसकी दूसरी, तीसरी और चौथी दशाब्दियोंमें जकड़ी रही थी।

यह अन्तर पहले महात्मा गांधी द्वारा दूर कर दिये जाते थे, जिनकी भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेसमें अनेक दलोंका नाजुब शक्ति सन्तुलन रखनेके लिये बड़ी विचित्र, पर आवश्यक स्थिति थी। लेकिन वे भी इन विचारधाराओंके व्यक्तीकरणको नहीं रोक पाते थे।


सभी राजनैतिक विचारधाराओंका प्रतिनिधित्व करनेवाली भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेसके विफलता अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष पड़ेगा कि दो स्पष्ट दृष्टिकोण

दो प्रवृत्तियाँ

पनप रहे थे। एक ओर परिवर्तन विरोधी, दक्षिण पंथियोंका कहना था कि साम्यवादने सघर्ष लेते समय एकता व्यवस्था रखनेके लिये आर्थिक समस्याओंकी दृष्टभूमिमें छोड़ना चाहिये। दूसरी ओर उन्मूलक कामगारी आर्थिक जोरदार बचा थे, जिनका कहना था कि इस सन्दर्भका आगार आर्थिक होना चाहिये। ज्यों ज्यों आंदोलन तीव्रतर होता गया, उन्ही अनुगममें यह दृष्टिकोण शक्तिशाली होता गया। और यद्यपि इन दोनोंमें एक प्रकारकी एकता रखी गई थी, पर १९४२ में दूसरी धाराके साथ युद्ध-विषयक दृष्टिकोणके कारण साम्यवादी विचारधाराका भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें अलग होना दरअसल विभिन्न पक्षोंके इस सन्दर्भकी ही बतलाना था। इस सघर्षको मार्क्स-विचारक अच्छी तरह न समझ सके और न हमारा विवेचन ही कर सके।

जो लोग हमेशा यही चिन्तानेके आदी हैं कि वर्तमान कांग्रेस पार्टीने अपनी समाजवादी धीरेधीरे बतलाते हैं, उन्हें चाहिये कि पने पलटकर कांग्रेसके उन दिनोंके पुराने घोषणापत्र पढ़ें, उन शक्तिशाली करनेके लिये आंदोलन जारी था। यह मध्य है कि यह केवल उन आदमियोंकी घोषणा थी, जिन्होंने अतः शासनकी पागडोर नहीं सभाली थी, पर वह एक संपूर्ण आंदोलनकी जगह-जगह स्तर बनलाते हैं। गांधीजी और पटेल जैसे परिवर्तन-विरोधी नेताओंको भी बान्धवियोंके अनेक निद्रात आंदोलनकी जड़में आनयात भारी दगावके कारण मानने पड़े।

स्वतंत्रता संग्रामके अंदर उन समाजवादी विचारधाराके प्रतिपादक जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस थे। और जो कुछ वे कह रहे थे, उन्ही उन समाजवादी और साम्यवादी विचारधाराका एक अंश समझना चाहिये, जो समान देशमें फैल रही थी।

१९०७ में कांग्रेसके मूल अधिवेशनमें  कांग्रेसके नरम और गरम दलोंमें भगडा हो गया था। उन दिनों गरम दलका नेतृत्व तिलक, साजपन राय और आरविंद घोष जैसे दिग्गज कर रहे थे। नरम दल द्वारा, जिसका जोर था, अपने अधिक बोलनेवाले साधियोंके उपर छूटि उछलनेके लिये हर प्रकारका दम

उन्मूलनवादी विचारधारा

काममें लाया गया। पञ्जाबमें पूरे अधिवेशनके दौरानमें अन्धवस्था बनी रही। नादविवादके स्थानपर मराठी कम्पलों तककी कानमें लाया गया।

यह खोजबानी चलनी रही। कभी कभी तो यह दबाव मान्म भी नहीं पड़ना था। उसके उपरान्त गांधी-दरबिन समझौतेमें स्वीकृत शर्तोंके थोड़े ही दिन बाद मार्च १९३१ में कांग्रेसके कर्गचो अधिवेशनमें रजिस्ट्रारों और एगट्स इनमें दोखने लगा। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोसके नेतृत्वे उन्मूलनवादी कामपथी इन विचारधाराको माननेके लिये तैयार नहीं थे कि इन समझौतेकी जरूरत सन्यासद्वारा आन्दोलनकी निष्फलताके कारण पड़ी थी। इनके अनिश्चित गम्भीरता सेनिकों तथा भगतसिंहकी बाल भुजा की गई थी। नेहरूजी शारीरिक कष्ट तथा मानसिक चर्च सहन कर रहे थे। बोस बागपथी घोरणाग्र पड़ने लगे। क० मा० सुरी तक ने लिख डाला कि, “करोंचीवाला गांधीजीका भ्रमण यदि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया जाता तो उसे जना उपलब्ध कर देता।”

यह उत्तेजना इतनी अधिक थी कि गांधीजीने उन्मूलनवादी विचारधारेमें समझौता करना ही अधिक उचित समझा। प्रमुख रूपसे नेहरूकी प्रेरणाने मौलिक अधिकारों तथा राष्ट्रीय आर्थिक व्ययक्तके बारेमें एक प्रस्ताव पास किया गया। समस्त कांग्रेसको अधिक उन्मूलनवादी बनानेकी ओर यह एक महत्वपूर्ण कदम था, क्योंकि जो निश्चय स्वीकार गिये गये, उसके अन्दर प्रमुख उपयोगों और दानादानता राष्ट्रीयकरण, धर्म-अधिकार तथा कृषिविषयक मौलिक सुधार सम्मिलित थे। उसके बारेमें क० मा० सुरीने कहा है कि “इसमें पूँजीजीवी घरण उठे, पर कष्ट मार्कनवादियोंको सन्तुष्ट नहीं किया जा सका।” लेकिन वे भी यह स्वीकार करते हैं कि यह प्रस्ताव इस कारण स्वीकृत हुआ, क्योंकि “यह उदंड पंडित जवाहरलाल नेहरूका सपना बेग था।”

पाँच साल बाद लखनऊ अधिवेशनमें यह रजिस्ट्रारों अधिक और देकर प्रति-पादित किया गया। १९३८ से १९४० तक राष्ट्रीय योजना समितिके कार्यका, यह निश्चय आधार बना, त्रिगद्य सभापतित्व नेहरूने किया था और उनके वर्तमान निर्णयोंमें निश्चित रूपसे इस पूर्वानुमानके कीटणु हैं। अच्छी तरह कांग्रेसी

दो प्रवृत्तियाँ

विचारधाराके इन कामपयी उन्मूलक तत्वोंकी समझना इस कारण जरूरी है क्योंकि चालीसवें वर्षोंमें साम्यवादी और मार्क्सवादी दलोंके अलग होनेके उपरान्त भी इनका बना रहना अधिक महत्वपूर्ण है, विशेष रूपसे उस समय जब कि हम कांग्रेस पार्टीके वर्तमान रूपको समझना चाहते हैं।

१- १९४० तक जवाहरलाल नेहरू तथा बालगंगाधर तिलक जैसी दो प्रभावशाली व्यक्ति कांग्रेस पर छाये हुए थे। एक पार्टीके दो अत्यन्त अभिवक्तियों द्वारा प्रतिगठित परस्पर विरोधी विचारधाराओंका अन्तर दूर करनेके लिये गांधीजी अथ मौरसूद नहीं थे, जिनके प्रति समस्त पूँजीजीवियोंका एकजिह्व विरोध था और जो उसकी अत्यन्त शक्तिशाली इंदियके समान काम करती थी।

यह दोनों व्यक्ति विचार, विरोध तथा माधनोंकी दृष्टिमें पूर्णरूपेण अममन थे। ये दोनों व्यक्ति राष्ट्रीय आंदोलनके सपनोंके दरम्यान ही राजनैतिक जीवनमें ऊँचे उठे थे, जो गांधीवाद तथा वर्तमान राजनैतिक विचार तथा व्यवहारमें मिलकर बनी एक आश्चर्यजनक उपज थे। और निरुद्ध पूर्वमें स्वतंत्र होनेवाले भारतमें एक दूसरेका अनादर नहीं कर सकते थे, कि यह पूँजीजीवियोंमें वर्तमान शक्तिका सन्तुलन प्रतिबिम्बित कर रहे थे, जिस वर्गके पाम आदरका राजशक्ति थी।

मुँह मकिय नेहरू जनताकी प्रतिष्ठा बढ़नीय मूर्ति बने हुए थे। गम्भीर सोच समझकर कदम रखनेवाले पटेलका प्रेममें अधिक भव माना जाता था। नेहरू विदेशमें शिक्षित, उदार और उन्मूलनवादी थे। पटेल पक्के कृषक, निरपरा और शान्ति कुशल थे। एक मानव और घटनाओंके इतिहासका विद्यार्थी हमेशा अपने अभिनयके प्रति और उस अभिनयकी मधेयमें ऊँच लेनेवाले ऐतिहासिकों द्वारा मूल्य निर्धारणके प्रति हमेशा जागरूक था। दूसरोंके मन और सिद्धान्तसे घृणा थी और प्रमुख रूपमें शक्ति और उमके व्यवहारिक सगठनमें फलदायक था। नेहरू अपना प्रभाव लोगोंमें समझनसे प्राप्त करते थे। पटेल अपनी पकड़ राजनैतिक रूपमें बनाये रखना चाहते थे। राजनीति व्यक्तिता मार्क्सवादमें दखल था और लेनिन उमका आदर्श था। कृषक ऐसे विचारोंका कहर शत्रु था। दोनों भारतको शक्तिशाली तथा सुख बनानेमें कृत मरुत थे। यह उन दो व्यक्तियोंका मत् वैषम्य

था, जो एक दूसरेके प्रतिकूल आर्थिक सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे थे, जिसने परेल् मोर्चर कांग्रेसकी कार्यवाहियोंको हस्त्यास्पद बना दिया ।

वत्सलभभाई पटेल हमेशा साधन संपन्न वर्गके प्रमुख भागके हितोंके समर्थक थे । उनकी यह धारणा थी कि केवल यही वर्ग भारतपर शासन कर सकता है । उनके लिये प्रगति और आर्थिक समानताके नारे केवल निर्वाचनके हेतु ही काममें लाई जानेवाली चालें थीं । कृषक और कामगार केवल धन पैदा करनेके लिये बनाये गये थे और यह कार्य कुशलतासे वह तभी संपादित कर सकते थे, जब उनकी देख-भाल राज्यके उदार धनी ट्रस्टियों द्वारा की जाय । उनका गमराज्य यही था ।

पटेलकी यह धारणा थी कि यदि कोई वर्ग इन बड़े पूँजीजीवियोंके अस्तित्व पर हमला करनेकी हिम्मत करता है, तो शीघ्रता तथा कठोरतासे उसका दमन करना चाहिये और यही सिद्धान्त उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें स्थानांतरित किया, क्योंकि उन्हें अच्छी तरह विश्वास था कि कोई साम्राज्यवादी या बड़ी शक्ति भारतकी उपनिवेश सहायता देनेमें मना नहीं करेगी । वह शक्तिका आदर करते थे और उनके लिये समुक्त राज्य अमेरिका शक्तिशाली था ।

ऐसे देशमें जो गण और भूरा दोनों या तथा जो केवल किसीके नवीन और प्रेरणानक संदेशकी राह देख रहा था (ऐसे संदेशकी जिसमें असीमित शक्ति हो, जिससे भारतीय पूँजीवादी एकाधिकारक लोग रखनेवालोंकी योजनायें विफल हो सकें), नेहरू किनारा प्रभाव डाल सकते हैं, इस धोरणे पटेल अंधे नहीं थे । चूंकि वह नेहरूपर नियंत्रण नहीं रख सकते थे, इस कारण उन्होंने अपना ध्यान अपने पासवाले एक मात्र अस्त्र-कांग्रेस पाटाकी मशीन-की ओर दिया ।

उन्होंने कांग्रेसमें ऐसे नेताओंको भरना शुरू कर दिया, जो उन्हींकी तरह सोचते थे तथा सफ्टकालीन परिस्थितिमें जो उन्मूलनवादी नेहरूमें एक जाग्रो बूझ सकें । इस बालमें उनकी सहायता स्वयं नेहरूने ही की । नेहरूने कांग्रेस सत्तापर अपना नियंत्रण दृढ़ करनेके लिये कोई कदम केवल इस कारण नहीं उठाया कि उन्हें दर था कि कहीं वह सत्ता स्वयं उनका ही किसी दिन नियंत्रण न करने लगे । वे अपने एकात्मिक संघर्ष और एकात्मिक सफलताको पसंद करते थे । यह अपने

दो प्रवृत्तियाँ

आदर्शोंके प्रति दृढ़ विश्वास रखनेवाला व्यक्तिभी रोमांटिक पहुँच थी, लेकिन ऐसी पहुँच जिसके अंदर राष्ट्रके लिये भारी सश्ट विद्यमान था।

आराममें कॉंग्रेसमें नियमान इन दोनों प्रवृत्तियोंके प्रतिवादकोंका सामंजस्य नष्ट करनेके लिये बहुत कम कारण थे। दोनों इन बातमें सहमत थे कि हस्तान्तरित सत्ताको दृढ़ किया जाय। उनकी योजनाओंमें सामंतवादको कोई स्थान नहीं था। ब्रिटेनसे सम्बंध सौहार्द्रपूर्ण होनेके अनिवार्य और अन्य किसी प्रकारके नहीं हो सकते थे। भारतको सोचने और सोच सैनेके लिये अवकाश चाहिए था और एक हीली तटस्थता उसका सही इलाज था, पर भारतकी आर्थिक प्रगतिके बारेमें इस प्रकारका अस्पष्ट दृष्टिकोण नहीं चल सकता था।

पूँजीजीवियोंके प्रधान इतने ज़िम्मा प्रतिनिधित्व पटेल कर रहे थे, यह स्वीकार कर लिया कि प्राकृतिक साधनोंका तन्वालोय विकास जरूरी है, जहाँ स्थानीय व्यापारियोंको दिक्कत मालूम पड़ती हो, उन क्षेत्रोंमें विदेशी पूँजीका प्रभाव खत्म करना चाहिये, जमींदारी निरुद्ध पुरानी पड़ गई है तथा किसानों और मजदूरोंके जीवनकी अवस्थामें कुछ सुधार करना ही चाहिये। पर भारतके बड़े व्यापारियोंके हितोंमें ऊपर राज्यकी समझनेके हर प्रकारके प्रयत्नका इत्नामे विरोध करना चाहिये।

नेहरूको यह दृष्टिकोण मानना पड़ा। ऐसा करना उनके लिये कुछ कठिन भी नहीं था, क्योंकि १९१० के मध्य तक जो परिस्थिति बनी हुई थी, वह चाहती थी कि इस मामलेको धीरे-धीरे सुलझाया जाय। इस कारण नेहरूने जो योजनाये और निदान्त तैयारी वर्षोंमें प्रचारित किये थे, उनका शोध ही मजाक इस आधारपर उड़ाया जाने लगा कि प्रश्नको निदान्तोंके दायरेमें ही सुलझानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अधिकतर नेहरू ही ऐसी आलोचनाका नेतृत्व करते थे।

वित्तवित्त आर्थिक माँगोंके समर्पणमें किसी प्रकारके आक्षेप या असह्य शक्तोंको कूटपूर्वक कुचलनेके साथ-साथ कॉंग्रेस नीतिके इस पहलूका कम्युनिस्ट तथा अन्य वामपंथियोंने यह श्रय निकाला कि यह स्वतंत्रता आंदोलनके सिद्धान्तोंके साथ स्पष्ट विरवागपात है। जिस समय यह बातें सामने आईं, इनका कुछ अन्य अर्थ निकलना सम्भव था। कमोनके भूसे किसानोंकी भूमिगत दूरता प्राप्त करनेकी

भविष्य का निर्माण

मोंगको हथरा दिया जाता था। इसके अनिश्चित जमींदार पेंजीपति तथा कृषक अपनी भूमि परमे जोतनेवालोंको बेदखल कर सकते थे। मजदूरोंके सर्पोंको अधिकतर पुलिसके अध्यायोंमें कुचल दिया जाता था। सफेद पोश कर्मचारियोंमें भी अवस्था कुछ अच्छी नहीं थी। विदेशीय समझौतों, लाभ बंटनेकी योजनाओं तथा औद्योगिक मजदूरोंको शान्तिपूर्ण समाधानोंके द्वारा कामगारोंको उनके नैगरापूर्ण भाग्यकी ओरने विमुख नहीं किया जा सकता था।

यह भी ध्यान रखना चाहिये, यह सम्मन विस्फोट उस समय हो रहे थे, जब अन्नकी स्थिति बिगड़ गई थी, जब वस्तुओंके भाव बढ़ रहे थे तथा जब कांग्रेस इस बिगड़ती हुई परिस्थितिमें सुभालनेके लिये बहुत कम प्रयत्न कर रही थी। जनताके इस दिशाके सर्पना नैतृत्व करना कामभारियोंका प्रमुख कर्तव्य था, पर गुट तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रकी गतिमान परिस्थितियोंको अच्छी तरह समझे बिना, ऐसा करना बहुत नातुक था। ऐसे गतिशील तन्त्र ही भविष्यका निर्माण करनेवाले थे।

कॉंग्रेस की आर्थिक नीति

सम्मानना है जैसी ब्रिटेन और अमेरिका के पूँजीजीवियों की थी। इस विषय पर साम्राज्यवादी चेतनों में मनैक्य नहीं था। मत्तारा हम्तानरण देशके विभाजनके बाद ही सम्पन्न हुआ, यही तत्व उन भारी सुपपोंकी ओर इतरा कर रहे थे, जिनके कारण भारतीय पूँजीपतियोंके दिवा स्वप्न नष्ट हो आयेगे।

एक ही भारतीय व्यापारियों और औद्योगिकोंको प्रथम कदम यह लेना चाहिये था कि विदेशी पूँजीको अत्र पुगनी सुविधाएँ प्राप्त न हो सकें। यह मोंग इन कारण जरूरी थी कि कॉंग्रेस पार्टी द्वारा यह विरवाम दिलाया जा रहा था कि विदेशी पूँजी न तो ली जायगी और न उसे देशके बाहर ही खड़ेर जायेगा।

फरवरी १९४८ को अपनी वसुतामें श्री मेहर ताने यह कहा था कि “आर्थिक हाँचेमें कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं होगा। जहाँ तक सम्भन होगा उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायेगा।” आगे १६ अप्रैल १९४८ को औद्योगिक नीति-विषयक सरकारी प्रस्तावने इस विषयको अधिक एष्टर दिया। इन प्रस्तावने बनलाया गया था कि राष्ट्रीयकरण पीकी सामान, अलुमिनिम तथा रेलवे (जिनका राष्ट्रीयकरण हो चुका था) तक ही सीमित रहेगा और कोयला, लोहा, इस्पात तथा अन्य महत्वपूर्ण उद्योगोंके विषयमें “सरकारने यह निर्णय लिया है कि अगले १० वर्ष तक मीजुदा उद्योगोंको बनपने दिया जाय”। और “रोष औद्योगिक क्षेत्रको सामान्य रूपसे व्यक्तिगत प्रशके लिये उन्मुक्त रखा जाय”।—कमने कम उस समय तक अत्र तक कि इन परिधितिका पुनरावलोकन न हो।

इन सबका अर्थ यह था कि भारतमें चलनेवाले बड़े-बड़े साम्राज्यवादी एकाधिकारोंको डेङी सम्भाव्य और व्यापारिक प्रतिष्ठानोंके समक्ष अवसर प्रदान करनेका विधान दिलाया गया था। फिर भी अनेक वर्षेवेलक इस प्रस्तावके राष्ट्रीय कृत औद्योगिक विद्यालवाले औरके उपवधोकी निंदा करते रहे। कोयला, लोहा और इस्पात, जहाज निर्माण, वायुयान-निर्माण, तार, टेलीफोन और बेतार के तारके उपकरणोंके विषयमें हलाना-इतरा करनेका एक अर्थ यह बतलाना था कि तत्कालीन सरकार दिन दिनामें मोच रही है। यह सब है कि सरकारी प्रवक्त्योंने इस ओर ध्यान आकर्षित नहीं किया, पर जैसा हम आगे कत कर देखेंगे, कि यह प्रस्ताव आगे आवश्यक आर्थिक प्रगति की कुंजी बन गया।

विदेशी पूँजीको विद्रोह

प्रधानमंत्री सुभाषचन्द्र बोसजी भयभीत न हो जायें, इन इनके कारण उन्हें पुनः विभाग दिखानेका प्रयत्न किया गया। एक व्यापारिक हिमशाने यह घोषणा की गई, कि “सरकार द्वारा वैयक्तिक क्षेत्रों सम्मती सीमेन और नियंत्रित करनेकी सम्भावना पर याचक बहुत विवर्तित है, लेकिन जिस नीतिनी घोषणा हुई है उसमें हमसे और बड़े इच्छा नहीं है।”

उसके उपरान्त खेन्हे पक्षधर्मको समाप्त करनेके लिए हिमशाने पुनः विभाग दिखाना कहा कि “यह प्रस्ताव विदेशी पूँजीकी और भारतीय उद्योगोंमें उनके प्रत्यक्षोंको पूर्ण समझदारी देना है और साथ ही विभाग दिखाना है कि राष्ट्रीय हितमें उनके नियंत्रित किया जाना चाहिये।” प्रस्तावका यह अर्थ भारत सरकारकी प्रवृत्ति, तात्त्विक शिक्षा और नियोजनके लिए विदेशी पूँजीकी आवश्यकताये स्वीकार करना है तथा भारतीय प्रयत्नोंकी अनुमतिमें विदेशी पूँजी और बुद्धिमान निवेशन करनेकी सुविधानी दिखलाना है। यथार्थमें सीमेन बण्डोंके विचारोंमें यह बात बहुत बड़ी थी।

लोगोंने यह सोचा होगा कि इन विचारोंके उपरान्त क्या यह जानते हुए कि भारत प्रिडिशा बलमकेलथसे सम्बन्धित रहनेवाला है, लार्न और माथिगट्टको धनी राजाशाह बननी परलोक्य मुँह खोलकर भारतके नये खानपानोंकी खजाना खाने मुँह करनेके लिये आवश्यक सम्मती प्रस्तुत कर देंगे। माथिगट्टका हमने अधिक और दिन विचारोंकी प्रतीक्षा कर लकल था। दरअसल यह निश्चिन्त हमने समझौता किया था कि सम्मतीवादी एक अन्य माननीय विचारधारेने इन नीतिनी बड़े बड़े राज्योंमें भरसक करार कर दिया।

फिर भी सहायता थोड़ी ही प्राप्त हुई। इसके विपरीत प्रिडिशा और अमेरिकन पूँजी क्षेत्रोंमें भारतीय प्रयत्नोंके बारेमें आलोचना होने लगी। फाबेनने व्यापारिकोंकी चेष्टाकी दो मई कि वे रोसिगट्टीके कदम बचाने और भारतीय व्यापारिकोंके सौदा करनेमें तब तक उत्सुकता न करें, जब तक कि अधिक ‘सह’ विभाग न प्राप्त हों।

परिवर्तनविरोधी, दक्षिण-पश्चिमी महाद्वीपके नेतृत्व तथा बड़े पूँजीकी ही हितोंकी प्रतीपादक बॉक्सिमा पार्टी इनो विद्रोहको पोषणी रही कि महाद्वीप प्राप्त हो जायें।

कौं ग्रेस की आर्थिक नीति

यह सब है कि शीतयुद्ध की परिस्थितिके एवं विदेशोंमें स्थित धनिक मित्रों की दृष्टि निरंतर मीनके कारण कि भारतको ' साम्यवादी संकट ' से अधिक स्पष्टदृष्टिमें पृथक् कर लेना चाहिये, यह तत्व अज्ञान हो उठे थे । नेहरूजी की तटस्थता एक आवश्यक सुझाई थी, पर फिर आखिर वह हमेशा यह तो कह ही सकते थे कि स्वतंत्रतामें साम्यवादी पार्टी अवैध घोषित कर दी गई है ।

इस प्रकार मिथित अर्थव्यवस्थाके इन मिथित विचारोंके साथ नेहरूने १९४८ में संयुक्त-राज्य अमेरिकानों यात्रा की । जैसा कि हम पहले देखा चुके हैं, वे भारतमें इस स्पष्ट धारणाके साथ वापस आये कि रुजवेल्टके पश्चात्त-बाला अमेरिका अधिक दिशाबद्ध बन गया है और फरेलू समस्याओंको हल करनेके लिये आक्रम-निर्भरकारी आन्दोलन पर अधिक बल देने लगे ।

साथ ही सरदार पटेल और उनके साथी यह अच्छी तरह समझते थे कि साम्राज्यवाद विरोधी विदेश-नीति तथा साम्राज्यवादी सहजता पर आधारित युद्ध-नीतिके अन्तर मिटाने पड़ेंगे । गणराज्य की स्थापनाके वर्ष अर्थात् १९४० में यह और विदेशोंके लिये ऐसी नीति निर्धारित करनेका सपना बना रहा, जिसमें उनका अन्तर्विरोध नष्ट हो जाय ।

यह अनिर्णीत सपना था । नेहरू तटस्थताके सिद्धान्तों को रूनेके लिये तैयार न थे । यद्यपि वे इस बातसे सहमत थे कि साम्राज्यवाद का विरोध इतना करना आवश्यक है, जिससे वह अपनी पैलियोंका मुँह खोलनेके लिये उत्साहित किये जा सकें । लेकिन साथ ही वे बार-बार इन बातों की चेतावनी देते थे कि संयुक्त-राज्य अमेरिकाके दबावके सामने आत्मसमर्पण करनेसे भारतीय भावनाओं के लगेगी और बेधिम जनतासे दूर पड़ जायगी । यह एक महत्वपूर्ण तत्व था, क्योंकि पार्टी की निष्ठा भविष्यमें साधारण चुनाव लड़ने से । स्वयंके पास एशिया और मध्य-पूर्वमें अमेरिकियोंके दुःसाहसिक प्रयत्नोंसे देशके शक्तिशाली व्यापारियोंको भी इस प्रकारके तर्क करनेके लिये विवश कर दिया, क्योंकि वे अब पुनः गुलामों की स्थिति मन्दर करनेके लिये तैयार नहीं थे ।

इन उलझे दिनोंमें यह बतलानेके लिये किसी ज्योतिषी की जरूरत नहीं थी, कि देश की आर्थिक कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये किसी प्रभावशाली औपधिनी

आर्थिक योजना का काय

जरूरत है। आत्म-निर्भरता की नीति का अर्थ तभी है क्योंकि कार्यक्रमों का अर्थ ही परिणत करना था। वृद्धि में कमी होनी आवश्यक थी, भूमि की धुंधली पूर्ति होनी चाहिये। विदेशी लाभों को प्राप्त करना आवश्यक है। लोगों को काम करने से प्रेरणा देनी चाहिये, उनमें यह विश्वास उत्पन्न करना चाहिये कि उनके प्रयत्नों का परिणाम केवल धनी व्यक्तियों को अधिक धनी बनाना न होगा। विदेशी विनिमय की रक्षा के लिये एक योजना बनानी चाहिये, जिससे औद्योगिक उपकरण सस्ता न मिले क्योंकि इसके बिना कोई स्थायी और वास्तविक प्रगति सम्भव नहीं थी।

लेकिन बीमारी का परिवर्तन-विरोधी दल ऐसे किंगी आर्थिक कदमों के लिये तैयार नहीं था, जिससे विदेशी व्यापारी डर जायें। उन्होंने तोगें बंदी प्रविष्टियों का इस्तेमाल किया। यह एक योजना की आवश्यकता मानने के लिये तैयार थे लेकिन ऐसी योजना जिसे ब्रिटेन और अमेरिका का सर्जार्ड प्राप्त हो सके।

नेहरू, जो आर्थिक मसलों को मनमन्य के भी उत्तुंग नहीं रहे, इस अस्थिर स्थिति को स्वीकार करने के लिए उस समय तैयार थे, जब तक कि उनकी विश्वासनीयता मानव्यवादियों के आरोपों पर अक्षिप्त या उसकी पूरक नहीं बनती हो। जब भी ऐसी सम्भावना दृश्य होती थी, वे व्यापार की बनती के लिये तैयार रहते थे। यह ऐसी सम्भावना थी, जिसे समझा पड़ने की संशय उत्पन्न नहीं करती थी लेकिन नेहरू को किसी मत की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार वहाँ आर्थिक योजना का काम अवरुद्ध हो गया, लेकिन विदेश-नीति और गृह-नीति में विरोध बना रहा।

१९५० के अंत में जब कि योजना के स्वतंत्रता उनके शासन को अनिमित्त रूप प्रदान कर रहे थे, बीमारी के परिवर्तन-विरोधी और पूँजीपति तात्त्विक सख्ते प्रभावशाली प्रवृत्ति सरदार पटेल की मृत्यु ने क्षीन किया। आशाचूष, पार्टी-मशीन उनके पिदुओं के हाथ में बनी रही। लेकिन वह अब उन्मूलनवादी नेहरू की विरोध प्रतिद्वंद्विता नहीं कर सकते थे।

सत्त्व ने नेहरू की स्थिति उतनी ही निर्बल बनी रही। उन्हें अपने विरोधों का ध्यान रखना पड़ता था, लेकिन वे अब उन्हें उस स्थिति में पटक सकते थे

कोंग्रेस की आर्थिक नीति

जिनके लिये वे पहले तैयार नहीं थे। शक्तियोंकी इस नई व्यूह-रचनाकी शृङ्गमिम प्रथम पञ्चवर्षीय योजनाकी घोषणा की गई, जो अपने रूपमें उन्मूलनवादी लेकिन तत्त्वमें परिवर्तन विरोधी थी। तत्कालीन कांग्रेस पार्टीकी स्थितिसे यह पूर्ण प्रतिद्वन्धा थी।

पहले उसके रूप पर विचार करना ठीक होगा। योजना आयोगने योजनाके प्रारम्भके आरम्भिक शब्दोंमें ही उसके कार्यक्षेत्रकी चोर निम्नलिखित शब्दों द्वारा ध्यान दिलाया था “— राज्य इस प्रकारका सामाजिक रूप प्राप्त करने और उसकी रक्षाका अधिनाधिक प्रयत्न करेगा जिससे जनताका अधिक कल्याण हो तथा जिसमें सामाजिक, आर्थिक, एक राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवनकी सभी सम्भावनोंमें विद्यमान हो। साथ ही अन्य वस्तुओंके साथ निम्नलिखित वस्तुएँ प्राप्त करनेकी ओर अपनी नीति उन्मुख करेगा। (क) यह कि सभी स्त्री या पुरुष नागरिकोंकी अपनी-अपनी शक्तिमान पर्याप्त साधन प्राप्त करनेका अधिकार हो। (ख) समाजके नीतिक सौर्णोस सामान्य और नियमण इस प्रकार वितरित हो, जिसमें सर्वसाधारणकी भलाईमें अधिक सहायता मिले। (ग) यह कि आर्थिक व्यवस्थाका परिधान उत्पादनके साधन और धनका जनसाधारणके दुःस्वास्थ्यके लिये केन्द्रीकरण न हो सके।

जो व्यक्ति इन शब्दोंको इस वास्तविकताकी दृष्टिमें पढ़नेका प्रयत्न करेगा कि बिजला और टाटाके सम्मान तत्त्व नहीं, बरन् सरकार ही उनकी लिये पञ्चवर्षीय योजना लागू करनेवाली है, उसे इस कार्यक्रमके उन्मूलनवादी होनेकी आशा हो जायेगी। आखिर भारत एक पिछड़ा हुआ देश था, जिसे शान्तिदियोंके विद्युत्केनसे दूर करनेके लिये रद्द और तत्कालीन विनाशकी आवश्यकता थी। यह स्वाभाविक ही है कि ऐसी दशामें यह आर्थिक प्रगतिवान् राष्ट्रीकी तरह स्वतन्त्र व्यक्तिगत प्रयत्नोंकी विलासिता सहन नहीं कर सकता था।

इस कारण यह तर्कमम्मन था कि योजनामें समाजवादी कार्यक्रमके अनुसार प्रगति हो, जिसमें साम्राज्यवादी निर्भरताका अंत हो सके और लोगोंमें भारी कार्य करनेकी प्रेरणा यह विश्वास दिलाकर प्राप्त की जा सके कि स्थानीय शोषकोंकी पकड़ ढीली कर दी जायगी। देश एक एक कदम करके धीरे धीरे नवीन औद्योगिक

योजना आयोग के निर्देश

राष्ट्र की ओर बढ़ सकें और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें तथा जिसमें हम विश्वास अपनी स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता स्थापित करनेका उत्साह हो।

छोटे राज्योंमें हम यो कह सकते हैं कि भारतके लगभग सभी भारी शक्तिशाली उद्योग इस प्रकारसे किता जाय, जिसमें देश की प्रगति की रोकनेवाली आर्थिक व्यवस्थानी बुलाइयों की जड़ों को कुचलपास हो सके। किसानों की समस्याओं प्राथमिकता देनी चाहिये, जिनका देश की जनसंख्यामें बहुमान है। किसानों को उत्पादन बढ़ानेके प्रयत्न करनेके लिये उत्साहित किया जा सज्या है।

भूमिका इस प्रकार वितरणा होनेसे नाम उत्साह प्राप्त होगा और दुर्घटिमें उनी होगी। खेतोंमें नवीन उपकरण और साध प्रस्तुत करनेके लिये ऐसे उद्योगों की प्रतिष्ठित करने की भी आवश्यकता पड़ेगी, जहाँ वह बन सकें, क्योंकि इनके बिना निर्मल भूमि को उत्पादन शक्ति नहीं बढ़ाई जा सकती। हमारे राज्योंमें, एक एक भूमिमें पूर्वजालीन १० एकड़ भूमिके ब्यापार उपज होनी चाहिये, अन्यथा भूमिनुधार निरर्थक है।

हमस्य अर्थ यह है कि भौमिक अर्थव्यवस्था को बढ़तनेके लिये, जिन औद्योगिक प्रतिष्ठानों की आवश्यकता है, वह इस्तेमाल, विद्युतशक्ति और उन अनेक साधनोंके बिना नहीं बढ़ सकते, जिन्हें या तो खोजना पड़ना या जिनका निर्माण करना पड़ता। उत्पादनमें अधिक उत्पादन की प्रेरणा मिलनी है और समानान्तर विकास सफलताका मूलमंत्र है। एक बार इस किताके प्रारम्भ हो जाने पर यह अधिक उपयोगी बननी जाती है और कलास्वरूप जीवन की अनेकानी उन्नति का कारण बन जाती है।

गन्नाजवादी राज्योंका यही रुझान होता है। समाजके अधिक धनवान व्यक्तियों की सहीरी की हितों को योजनामें बाधा उपस्थित करनेमें रोक जाता है और पूँजी इस कारण सम्भव हो जाती है, क्योंकि उसे उत्पन्न करके उस पर कटोर नियंत्रण रखा जाता है। मूल्यों को बढ़ानेमें रोक जाता है और साथ उपजनेवालों को अक्षरार्थी समझा जाता है। प्रत्येक देश की कुछ विशेष समस्याएँ होती हैं, लेकिन मौलिक समस्याएँ बहुत कुछ एक समान ही रहती हैं। योजना आयोगके निर्देशोंमें यही आशय व्यक्त की गई थी।

कॉंग्रेस की आर्थिक नीति

अब हम पंचवर्षीय योजनामें वर्तमान तत्वोंपर विचार करेंगे। यह कुछ और ही थे। दिसम्बर १९५२ में बनकर तैयार होनेवाली इस योजनामें १९५१ से १९५६ तकके पांच वर्षोंमें रु. २-६६ करोड़ लगानेका विचार था। इसमें एक अलगसे योजना अक्टूबर १९५३ में घोषित की गई, जिसमें इसके अतिरिक्त रु. १५० करोड़ लगा दिए गये थे। और इस प्रकार कुल योग रु. २२५६ करोड़ था। अन्तिम राशि रु. २३६५ करोड़ थी।

इसमें सबसे बड़ी मद परिवहन और यातायात की थी, जो युद्धकालमें बहुत घिस चुका था। कुल नियोजनका लगभग एक चौथाई भाग इस काममें आ गया। विद्युत् और मिचाई की बहुत-उदेसी आयोजनाएँ लिये अनुमानित धन परिवहन अर्थात् रेलवेके लिये अनुमानित धनका आधा था। योजनाोंने कृषिपर अधिक ध्यान देनेकी बात कही थी, लेकिन उस पर सीधी नियोजित राशि कुल व्ययकी १७.५ प्रतिशत थी, जब कि परिवहनके लिये २४ प्रतिशत लगाने गये थे। वास्तविकता यह है कि कृषि, मिचाई और विद्युतका सम्मिलित व्यय परिवहनके व्ययसे कुछ ही अधिक था।

आवदनकी स्थिति चाहे जो कुछ रही हो लेकिन यह स्पष्ट था कि योजनाओंको भारतने अपनी कमीके बारेमें बहुत चिंता थी। इसमें देशकी बिदेगी मुद्रा प्रतिवर्ष बहुत व्यय हो जाती थी। वे इस स्थितिमें समाप्त करनेके लिये हदनिश्चय थे और भारतको अपनी कृषिपर आश्रित देखना चाहते थे। यह विषय हमेशा विचार-विमर्श रहेगा कि क्या प्रथम पंचवर्षीय योजना कालमें भारत सरकार कृषिमें औरसे ध्यान देना चाहती थी, यद्यपि उसका अर्थ होना पुगनी और परिधिनी नीतिको को अती रहना। अन्तमें आत्मनिर्भरता एक सामग्री उद्देश्य था और आगे चलकर हम देखेंगे कि बहुत मिलजुल औद्योगिक कार्यक्रमोंको पूरा करनेके लिये उसने भारतकी कैसे सहायता की।

प्रथम योजनाके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्रमें उद्योगोंपर बहुत कम नियोजन हुआ था, अर्थात् कुल ७-३ प्रतिशत। योजनाका घोषित उद्देश्य था, “जनसंख्यामें होने-वाली अलक्षणीय वृद्धिको देखते हुए उपभोक्ता सामानमें लगभग युद्ध पूर्वकी स्थिति प्राप्त कर लेना।” एक वाक्यमें योजनाका उद्देश्य यह था—कि सत्ता हस्ता-

नरणाके १० वर्षे पश्चात् भारत आर्थिक दृष्टिसे उस स्थितिमें प्राप्त करना चाहता था, जिन स्थितिमें १३० वर्षके ब्रिटिश शासनके उपरान्त वह पहुँचा था।

योजना की प्रतिक्रिया बड़ी अनुत्साहपूर्ण थी। किसीमें जोश नहीं था। कौमेत्त क्षेत्र तक इस विषयपर चानचीन करनेके लिये विशेष उत्सुक नहीं थे। पाँचहत्त पर चल जन पुराने दिनोंका स्मरण दिलाता था, जब भारत साम्राज्यवादी उद्योगों की धूमिले लिये कच्चा सामान देनेवाला एक बंधा भंडार था। योपकों की गणनामें औद्योगिक उन्नति तो राखर आई ही नहीं थी। और लोगोंको रोशनी-रोझार देनेकी आवश्यकता पर विचार नहीं किया गया।

वास्तवमें भारतीय राष्ट्रीय कमिसने अपनी पूर्ववालीन महत्वपूर्ण प्रतिशब्धने साथ योजना बनाने समय विश्वासघात किया था। क्या मेरुने ४ जून १९१६ को कौमेत्त पादाकी राष्ट्रीय योजना समिति, जिसके वे स्वयं अध्यक्ष थे, को भेजी जानेवाली अपनी एक टिप्पणीमें यह नहीं लिखा था, कि जिन प्रस्ताव द्वारा योजना समितिकी नियुक्त हुई है, उसमें हमने यह अपेक्षा की गई है कि हम महत्वपूर्ण उद्योगों, मध्यम स्त्रीय उद्योगों और कुटीर-उद्योगोंके विकासका प्रबंध करें। उसमें यह कहा गया है कि जिन औद्योगिकरणके देशकी आर्थिक उन्नति सम्भव नहीं है। हम औद्योगिकरणमें नोकरी लाती है और यह बतलाना है कि महत्वपूर्ण और मौलिक उद्योग नहीं और नैमे आरम्भ किए जावें।” योजनाके इस निश्चय और नये दृष्टिकोणमें विरतना अन्तर है।

यह स्पष्ट है कि भारतीय रीचीपलियोंके दिनोंकी प्रशानता और उनकी मिटेन तथा अमेरिकाके रोप-रामनकी इच्छाकी प्रतिज्ञाया योजनामें थी। इस लक्षे द्वारा सभी बातें समझमें नहीं आ सकतीं, क्यों कि १९४४-४६ में टाटा विपला आदि द्वारा जो योजना बनी थी उसका भी यही उद्देश्य था, लेकिन फिर भी उन्हें इस निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए विवश होना पड़ा कि, “आर्थिक अवस्थानें प्यान प्रमुख रूपमें विजली और पूँजीका निमाण करनेवाले उद्योगोंके गठनकी ओर वेदित करना चाहिए।” उन्होंने आने कहा था, कि “अपनी आर्थिक योजना की संरचनाके लिए हम यह व्यवस्थाक समझते हैं कि जिन आपतभूत उद्योगों

कोंग्रेस की आर्थिक नीति

परदेराफा संपूर्ण आर्थिक विकास आधारित है, उनको विनयी शीघ्रतासे बढ़ाया जा सकता हो, बढ़ाया जाय ।”

टाटा-विद्युता योजनामें भारतीय कृषि उत्पादनको दून्नेगे ध्वस्त करनेकी व्यवस्था थी। औद्योगिक उत्पादनको र्पंचगुना बढ़ाना था। १०,००० करोड़से १५ बर्गके अक्षर उपभोग करनेवाली इस टाटा विद्युता योजनामें लगभग आधी राशि उद्योगोंके लिये तथा ६ कृषि और निचाईके हेतु व्यय करनेका अनुमान था। इसके विपरीत रु २२४६ करोड़ पाँच वर्षोंमें व्यय करनेकी सरकार की योजनामें रु १७६ करोड़ यर्बान् ७६ प्रतिशत राशि उद्योगोंके लिये थी, जब कि रु १४० करोड़ कृषि तथा निचाई और विजलीमें सम्बन्धित बहु उद्देशीय आयोजनाओंके लिए रखे गये थे। इन आयोजनाओंमें परिवर्तन हुआ, लेकिन विभिन्न क्षेत्रोंमें अनुमानित राशिका अनुपात लगभग यही बना रहा।

सरकार द्वारा दिल्लीमें बनी इस निराशापूर्ण योजनाको समझनेके लिये उन अन्य तत्वोंपर भी विचार आवश्यक है, जो देशकी आंतरिक नीतिपर भारी प्रभाव डाल रहे थे। यह तत्व क्या थे ? उन्हें केवल एक सर्वप्रगढ़ी शीर्षक—शीत युद्ध—में रखा जा सकता है।

विश्वका दो परस्पर विरोधी दलोंमें विभाजन और १९११ में उनके बीच एक प्रकारका खिन्ना ही था, जिसने अपनी आंतरिक प्रवृत्तियोंके सर्प द्वारा विभक्त और भुनावेमें पड़ी हुई केंद्रिय पार्टीके लिये अपने दृष्टिकोणके अनुरूप और भारतीय स्वतन्त्रता संग्रामके आदर्शोंकी प्रतिपादक नीतिसा पालन असम्भव बना दिया।

परस्पर विरोधी दलोंकी शक्ति अनुमान लगा कर केंद्रिय पार्टी यह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि किस ओर मुड़ना चाहिए। समस्त समाजकी सामान्य समाजवादी प्रवृत्तिमें परिचित स्वयं नेहरूने भी ‘उद्गरो और देशो’ दृष्टिकोण अपनाया ही अधिक उचित समझा। वे इसमें अधिक और कुछ नहीं कर सकते थे। क्योंकि सरदार पटेल और उनके साथियोंका केंद्रिय पार्टी—यंत्रपर नियंत्रण बहुत मुश्किल था। इसी कारण किसी ऐसी नीतिका अन्वयना उनके लिये असम्भव हो रहा था, जिसका अर्थ भारत और आगल—अमेरिकन दुनियोंके मामलोंका अलगाव हो।

आगे हम देखेंगे कि प्रथम पंचवर्षीय योजना किन प्रकार आगे बढ़ी, उससे क्या प्रत्यक्ष लाभ हुए और किन प्रकार उसकी आलोचनाओं की केंब्रिज पार्टीने द्वितीय योजनामें विरोध रूपमें जवाब देहसके प्रभावके कारण स्वीकार कर लिया । इस समय तो हमें उन श्रुतियोंपर विचार करना है, जो प्रथम योजनाके पाँच वर्षोंमें प्रगट हुईं तथा जो एक या दूसरे रूपमें भारतके अनेक निर्णयात्मक परिवर्तनोंका रूप निर्धारित करनेवाली थीं ।

नई प्रवृत्तियाँ

राज्यसे जनमनकी शक्ति अभी प्रकार अधिक है, जिस प्रकार अनेक संसुप्तोंसे निर्मित रस्मी मित्र लक्ष्मी घसीटनेके लिये शक्तिपूर्ण होती है ।

(नीति सार)

१९४७ से १९४९ तक कांग्रेस पार्टी द्वारा निर्धारित एह-नीतिमें स्वतन्त्रता की नीति ने इस आन्दोलनके अनेक सराफ तत्वोंको निराश कर दिया । ज्यों ही प्रथम योजनाकी स्वररेखाया पता चला यह सच्य खुले रूपमें होने लगा ।

केरल कांग्रेस केबिनेटमें फूट पड़ गई थी । योषे ही दिनों परवान पार्टीके आग्र इलकी दो शक्तिशाली विधुनियों- टी प्रकाशम् और एन० जी० रंगा ने, प्रजापार्टी बनानेके लिये कांग्रेस छोड़ दी । इसके उपरान्त एक अन्य हस्ती, जे० बी० कृपलानीरा त्यागपत्र साजने आया । और योजनाके प्रभावित होनेके साथ ही माथ एडनीतिक रूपमें नेहरूके निकटतम साथी, रफी आहमद खिदरखे सवार मंत्री पदने अपने त्यागपत्रकी स्वीकृतिके लिये और बातनेका निरूपण कर लिया । कांग्रेसके इस सच्यका प्रभाव दूसरे क्षेत्रोंमें भी पडा, यहाँ तक कि उत्तर प्रदेशके ममान कांग्रेसी गठमें भी इसी प्रकारसे सम्बंध विच्छेद हुए ।

यह ठीक है कि कांग्रेसमें होनेवाले इस विभाजनकी सभी शक्तियों एक ही प्रकारकी नहीं थी । उनमें कुछ स्वार्थी और बहुत समुचित हितोंपर आधारित थी । कुछ कांग्रेस नीतिके साधारण गाम पक्षीय मुभावमें प्रेरित थी । लेकिन इस विद्रोहकी मुख्य शक्ति खिदरखे त्यागपत्रके निर्णयने प्राप्त हुई, जो वास्तवमें साधारण उन्मुक्तवादीसे भी दो कदम आगे थे । कांग्रेस टोचमें सुधार करनेके सचमें बड़े समर्थक बही थे ।

व्यक्तित्वोंके इस सच्यको 'परिवारके भीतरों मझदे' के रूपमें कह कर टालना परंपरागत था । और इसमें कोई मझेद नहीं कि त्यागपत्रित कृषक होने-वालोंके तर्कोंके अनुसार यह परिवारके मझदेकी तरह ही दीखते थे, जो साधारण

चुनावों के कारण सामने प्रगट हुए थे। लेकिन इन वास्तविकताओं को मुना दिसा गया था कि कृषक एक उमर पट्टी में नहीं होना है, जो समस्याओं को आनविधान के साथ सुलभता से और अपना पद हट करती हो। व्यक्ति और दलबंदी केवल सभ्य के समय ही अपना काम कर पाते हैं।

लखन दस अत्यंत महत्वपूर्ण तत्वों में इन समय प्यान नहीं दिया गया कि इन विरोधी या अलग होनेवाले व्यक्तियों ने राष्ट्रीय नीति के प्रश्नों को नहीं बरन प्रमुख रूप से स्थानीय विषयों को ही अपने विरोध का आधार बनाया था। यह अनुन-नादियों को बोली में बोलने से और कॉमन-मरतारका सीनेन विरोध करने के लिये बामपथियों तकने मिल पाये। उन्होंने बंकिमी-दंगध निंदनण करनेवालों के साथ अपने भारी मनमेदरो को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया, जिन्होंने प्रतिक्रियावादी पुरपोलमदाम दंगन को सस्था का मभारत बनाने में मदद दी थी।

यह विरोध कमसेकम अनुभवों अनुभवों के देशों की ओर से हुआ था, यद्यपि जिन लोगों ने उनका साथ दिया उनमें अनेक आरम्भवादी थे, जो देश में व्याप्त असंतोष का लाभ उठाते थे। एकाग्रण शब्दों में वे विरोधी, देश के अनेक भाषा-भाषी दलों का आधारित मध्यम-वर्गीय पूँजीजीवियों के सुगमता प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जो इन कारणों से बहुत उत्तेजित थे कि उनके हितों का बलिदान सारे भारत में करनी पड़ेंगे। रहनेवाले बड़े व्यवसायों के एकाधिकार के सामने किया जा रहा है। लेकिन इनके बारे में आगे विचार करेंगे। यहाँ इनका ही कहना पर्याप्त होगा कि बंकिम पाटील राजा आगमने नहीं हो रही थी। देश में असंतोष व्याप्त था। और यह निराला उनमें छुटकारा पाने का मार्ग खोज रहा था।

दक्षिण और बामपथी विचारक निराला हट पूर्वक इन परिवर्तनों को सही और छुट मगने ही समझते रहे। यह बालोचित मिलेपण था, क्योंकि देश का मुख्य समाजवादी पार्थिव सदस्यों को भी प्रभावित कर रहा था। ६ अप्रैल १९३१ को बहुजन के बम्बई-राज्य-समाजवादी पार्थिव सर्वकारिणी समिति ने अपने २६ प्रमुख और सचिव सदस्यों को पार्थिव हितों के विरुद्ध कार्य करने तथा "जानबूझकर उद्वेगपूर्वक उसके कार्य में बाधा डालने के कारण" बम्बई और महाराष्ट्र में निषेधित करने का निर्णय लिया।

नई प्रवृत्तियाँ

यह निष्ठासिन् समन्वयादी थीमनी अरणा आगमश्रुतीके साथ बादमें साम्य-वादी पार्टीने सम्मिलित हो गये। ये लोग जयप्रसाद नारायण, अशोक मेहता तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित अष्टाष्ट और निरर्थक नीतियोंका पालन नहीं कर सके थे। बाधिसरी सन्ध यहाँ भी यह विद्रोह प्रातीय स्वरूपमें महाराष्ट्रमें विकसित हुआ, जहाँ कांग्रेस पार्टीने भी पहले इसी प्रकारकी भारी फूटका सामना किया था और परिणामस्वरूप यूरोपियन कम्युनिस्ट पार्टीसे सम्बंधित "कमिन फार्मने प्रति स्वाभिक्ति" प्रदर्शित करनेवाली किसान मजदूर पार्टीकी रचना हुई थी।

अनेक प्रतिक्रियावादी राजनीतिक विचारनेने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि कांग्रेसियोंमें ही इस प्रकारके एक विरोधी दलका विरगित होना देशके लिये अच्छा था। उनका मुख्य तर्क यह था कि यह दल 'सेफ्टी बाल्क' की तरह कार्य करने और अशान विद्रोही तत्वोंको साम्यवादी दलमें प्रवेश करनेमें रोकने। जनरल दास बिस्मिलके पत्र 'इस्टर्न इकोनोमिस्ट'के स्तंभोंने यह विचारभारा बहुत पनपी। बड़े-बड़े व्यापारियोंके लिये कांग्रेस दलमें इस प्रकारकी सफाईमें अच्छी और क्या बात हो सकती थी अर्थात् उन्मुलकवादियोंका निकामन जिनमें 'सेफ्टी बाल्क' के निर्माणमें महायत्ना मिलनी लेकिन यह स्वयं शीघ्र ही भग होनेवाले थे।

पुन साहमी नेहरूने इस परिस्थितिरी रक्षाके लिये अपना एकांतिक प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। उन्होंने तत्काल ही यह अनुभव कर लिया कि उन्हें अपने देशवासियोंको यह पतनाना आवश्यक है कि पंचवार्षिक योजनाके पावबूझ भी थे ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य अमेरिकाके विदेशी विभागके द्वारापर नाचनेवाली कोई छड़पुनली नहीं हैं।

उन्होंने केवल उम्मी विषयमें पक्ष जिस पर समस्त भारत एकमत था अधीन साम्राज्यवादी देशोंके वीरमनी और भयकर युद्ध अभियानोंसे अपने देशको वृथका रचना। यह ऐसी कार्यप्रणाली थी जिसका टाटा-बिस्मिलके इमारियोंके साथ-साथ पार्टीके परिवर्तन विरोधी तत्वोंको भी समर्थन करना पड़ता है। इसके अनिर्दिष्ट इस कदममें पार्टीके विद्रोहियोंमें भी किसी सीमा तक यह विश्वास उत्पन्न होना निश्चित था कि मामला इतना बुरा नहीं है जितना वे समझते थे।

देशने एक ऐसी आदर्यजनक विपत्ताय दर्शन किया, जिसे जीताग्ने कभी ठीक प्रकार समझा हो न जा सका। जहाँ एक ओर विरोधी दल घरेलू आर्थिक समस्याओंके प्रति जनताका समर्थन प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे थे, नेहरूने देशके दौरा करके बंक्ल युद्धके भयान सङ्घ और शान्ति रक्षाके लिये भारतके प्रयत्नोंका सहयोग प्रसारित किया। जहाँ कहीं वे गये, उन्होंने बहुत भारी भीड़को आकर्षित किया। जनताने बैठकर विदेशी सनस्पा, शान्तिके अर्थ और परनाशु बनके जीव-जगतपर प्रभाव आदि विषयों पर उनके भाषण सुने। विदेशी नीतिमें आधार मसलक हुवे प्रश्न मंत्रीके लिये विरोधधर्मे एक मजकूर ही प्रस्तुत किया, क्यों कि वास्तविकता यह थी कि देशा गवर्के साथ उनके रोत्तरी सराहना कर रहा था।

संयुक्त-राज्यीय युद्धनीतिनी भूतों और समारमें व्याप्त शान्ति भावनाधर्मे अन्तरीष्ट्रिय अगदमे नेहरूके प्रयत्नोंका नारसीय प्रभाव दाता। कोरिया युद्धके विषयमें भारतकी समस्त चेतावनीधर्मे और युद्ध-प्रिय जनरल मरु आर्थर शाह १५ वी अक्टूबरके आगे दर्शन तथा उनके साम्यवादी चीनकी भुक्त केनेके घोषित ठौरके कारण विरोध प्यान आमर्दिन हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिकाके आश्रित सहयोगियोंके लिये यह घोरण बहुत अग्रिय प्रमाणित हुई। शोत्रापूर्वक दूमेनने मेरु आर्थरको मुद्रा पूर्वी समादमे ११ अक्टूबरको परमुक्त कर दिय था। उसके उपरान घटना-चक्र तेजीमे घूमा, जिसका अन् कोरियाकी युद्ध-बदीमें हुआ।

सेरिन एगिथिमें अपनी इज्जत बचानेके लिये विजित अमेरिकाने तथाकथित मौलिक शान्तिवादी प्रारम्भ कर दी। उनका उद्देश्य एक इच्छतहार शान्ति वाग्य करना नहीं था, बल्कि वे आगमनको जन-चीनमे युद्ध करनेके लिये उसी प्रकारका एक राजागार बनाना चाहते थे, जैसा यूरोपमे सोवियट सबसे युद्ध करनेके लिये पश्चिमी जर्मनीको बनाया जा रहा था।

भारतने इन प्रकारकी शान्ति-चरित्र भागीदार बनने अस्वीकार कर दिया, जिसमे अमेरिकाने अपना औद्योगिक निर्माण हत्यनेके उपरान भी आगमने तथा उनके आस-पास जन, स्वयं और बाहुमेन रखनेका अविचार बना रहता था। सामान्यचारी

नई प्रवृत्तियाँ

नीति के विरुद्ध यह एक भारी प्रचारक चोट थी, क्योंकि भारत, मोवियन सय जन चीन और अन्य समाजवादी देशों के साथ मिलकर समारकी जनसमस्या के भारी बहुमत का निर्माण करता था। अनेक स्वतंत्र और ईमानदार व्यक्तियों ने यह मीमांसा प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया था कि "हमें समारकी समस्याओं को निवटारने के निम्ने प्रचारक चाहिये।"

कटकपूर्ण कारमोर समस्या पर भी दिन्नीने अधिक स्वतंत्रता व्यक्त करनी आरम्भ कर दी। मई में राष्ट्रमधीय सुप्रीम परिषद के प्रस्ताव को अम्लीकृत किया जा चुका था, पर सुप्रीम राज्य ने प्रभावित इस सस्था द्वारा इस मनमार्क निराकरण का प्रयत्न जारी रहा। जुलाई में मैक माहम पुन 'मध्यस्थता' के लिये आये। लेकिन अन्दूर के अन तक करनी के विधान निर्मात्री-परिषद् की रचना ने समस्या के समाधान के लिये साम्राज्यवाद का आग्रह करने के नीति में एक निर्णायक विक्षेप उपस्थित हुआ, वही नीति जिसके अनुसार पाकिस्तान का साम्राज्यवादियों द्वारा पक्षग्रहण करने के लिये उनमें समझौता करने के दृष्टिकोण को उन्माह प्राप्त होता था।

उनी समय ६ अक्टूबर १९५१ को वह सूचना प्राप्त हुई, जो वर्तमान तक मतदान को वामपूर्वक बदलनेवाली थी। स्टालिन ने पोरणा की थी कि सोवियत सघने अणुबम का स्फोट किया है और वह अन्य अणु परीक्षण करेगा। सुदूर अमेरिका में स्थित मिममोआरों ने इस विस्फोट का अकन किया था, निमरा अर्थ यह अकन करना था कि अणुबम पर अब साम्राज्यवादियों का एकाधिकार नहीं रहा।

परिचय के अनुकूलित जनमत पर इसका प्रभाव बहुत सुग पडा। अब ब्रिटिश और अमेरिकन नगर भी अणुशक्ति द्वारा नैस्तानाद होने के भयने मुक्त न थे। समुक्त साम्राज्य की समस्त रणनीति और सव्यकालीन योजना की आधारशिला अणु-अश्रों का एकाधिकार ही तो थी।

सुदूर अश्रों के सामने एक भारी दुविधा उपस्थित हो गई। पूँजीवादी दुनिया की प्रत्येक साम्राज्यवादी एकाधिकार और उनके राजनीतिक दल आश्चर्यचकित थे कि अब समाजवादी सत्ता के पास इस प्रकार के बल होने का क्या परिणाम होने वाला है। भारत में कांग्रेस के परिवर्तन विरोधी सदस्य जो सदैव सर्वाधिक शक्तिशाली

और अजेय सुसुतराव्य अमेरिकाके साथ मित्रता करनेकी बात सोचा करते थे, अब ॥३॥ अन्य बातें भी सोचने लगे ।

नेहरूने कांग्रेस यंत्रका निर्माण करनेवाले पुष्पोजनमशम टंडन और उनके अन्य साथियोंके पेश कस ही दिये थे । अन्तर्गतमें उन्होंने और अनुसुचित जाति आवाज देने पार्टीकी कार्यकारणी समितिमें त्यागपत्र दे दिया, जिनमें दक्षिणपंथी परिवर्तन विरोधी दलवाले होने पद गये, क्यों कि वे जानते थे कि अगर लोगोंने यह अनुभव हो गया कि नेहरू सरीरे जनप्रिय नेता पार्टीकी कार्यप्रणालीसे अस्वस्थ हैं, तो चुनावोंमें कांग्रेस नहीं जीत सकती ।

यह भी अफवाह फैली हुई थी कि प्रधानमंत्री अपने पदमें भी त्यागपत्र देनेकी बातपर विचार कर रहे हैं । एक अन्य पार्टीके लो जनेही भारी सम्भवना थी । ऐसे वातावरणमें प्रतिक्रियावादियोंने पाँचों दलनेका निर्णय लिया । टंडनने त्यागपत्र दे दिया । नेहरूने कांग्रेस पार्टीकी बागदोर संभाल ली । अक्टूबरके आरम्भ तक निश्चय भी केन्द्रिय मंत्रिमंडलमें आ गये ।

भारतीय जीवनके महत्वपूर्ण समयमें संस्थाके रूपमें हमेशाकी तरह असंगठित नेहरू दल आणादिक शक्तिसंतुलनके इस परिवर्तनके कारण अधिक शक्तिशाली हो गया । सारे देशमें प्रथम सामान्य निर्वाचनकी तैयारी होने लगी ।

इतिहासमें प्रथम बार सन १९५२ में संपूर्ण जनसंख्याके लगभग आधे व्यक्त १८ करोड़ वयस्क, केन्द्रीय और राष्ट्रीय विधान परिषदोंके ४००० से अधिक प्रतिनिधियोंको निर्वाचित करनेके लिये मत देनेवाले थे । ७५ पार्टियों और दलोंसे सम्बंधित लगभग १०००० सदस्य निर्वाचित होनेके लिये मतदानाश्रीका समर्थन प्राप्त करनेमें श्यनशील थे, जिनकी संख्या उस समय सभारमें सबसे अधिक थी ।

इस विभागकी कम्पना बीजिये । लगभग २२,४००० निर्वाचनस्थलोंके निरीक्षणके लिये १,६०,००० कर्मचारियोंको लगव्या गया था । जहाँ तक मत पेडिअस्रोअ सम्बंध है, उनकी संख्या २२,८४,००० थी । भारतमें इस प्रबंधका अनुमानित व्यय १० करोड़ रुपये था ।

नई प्रवृत्तियाँ

विदेशोंके प्रतिक्रियावादी लेखकोंकी, जो इस भ्रममें ही पनपे थे कि केवल आत्म सौम्यता ही अपने मण्डलिकारका प्रयोग करना जानते हैं, इस अभूतपूर्व घटना-की ओर ध्यान देनेके लिए विवश होना पड़ा। कुछ लोगोंने तो अपना यह कपोल-कल्पित दृष्टिकोण बना लिया था कि भारतके अशिक्षित देशवासी किसी प्रकार बंधिमर्मे पक्षमें ही यह सौचरर अपना मत देने कि वह गांधीजीका समर्थन कर रहे हैं, यद्यपि वह यह बुरे थे। ऐसी दम्पनार्ण, परिवर्तनी मर्शितपक्षकी विरोधता है, क्योंकि अपने पूर्वापीन उपनिवेश-वासियोंके विचारों और कार्यमें होनेवाले परिवर्तनों के अन्त नक अपना समझीन नहीं कर सके थे।

निर्वाचनमें लिपिचनारी प्रतीनके लिये आगे केवागे की गई थी। यह सही है कि गैर बंधिमर्मोंमें अनेक दम्पवडे उद्यमी पक्षी थी। वे अकस्मात् ऐसा समझन नहीं बना मरने थे जो उनके अशिक्षाकी रसा प्रयेठ निर्वाचन केन्द्र पर कर सके। उनके पास न पन था, न सत्तावाग-यत्र थे और न मत्तधारी पार्टीका विरोध महरा ही था। प्रचलकर्मके लिये वे मरकारी सुविधाका भी उपयोग नहीं कर मरने थे।

अपने भूमिगत कार्यरत्नाओंकी दुर्भाग्यपूर्ण अवधि समाप्त करके सम्प्रदायी पार्टी प्रगट ही हो रही थी। वी टी रणदिवेकी दुम्पदम्पिक और सङ्कुचित नीतियोंने भारतीय माम्पवादी पार्टीके समझनका प्रभाव रिमात्र मजदूरोंके मुह पर सेनोंमें भी बम कर दिया था। जब वी सी जोशी अनात्त मेनेटरी थे, तब मन्त्रिय सदस्योंकी सङ्ख्या १,००,००० थी, जो अब पटकर २०,००० ले भी बम रह गई थी। पार्टीने एक नये कार्यक्रमकी घोषणा की थी, जो हलाकि बदलनेवाली परिस्थितियोंके विपरीत था, फिर भी अपने विराट कार्यकर्त्तोंमें किसी सीमा तक सङ्गठन करनेमें सफल हुआ। लेकिन राजनैतिक चित्रमें अंशिकी लिखित विवशता एवम दीगने लगा था।

आन्तररीन वेईगी आहूतितान्त्री बंधिमर्म पार्टीके अन्तर आपसी पुनार्थमें उम्मीद-बारोंके अपने मनोनीन होनेके लिये अभूतपूर्व होइ लगे हुई थी। परिवर्तन विरोधी दक्षिण पक्षियोंका उद्देश्य अपने समर्थनोंके लिए प्रभावशाली सङ्ख्यामें टिकट

प्राप्त करना था। इस विषयमें वे यथेष्ट सकल हुए, क्योंकि पार्टी-चरपर अब भी उनका नियंत्रण था और नौदं चुनाव संगठन शक्तिके अभावमें नहीं लज जा सकता।

उन्मूलकवादियोंने देखा कि चुनाव टिकटके लिये उनके स्वर्णक नेहरूजी समर्थन इस आधारपर नहीं कर रहे हैं कि इस मुक्तिमें केवल फूट ही अर्थिक घरेलू जब कि पार्टीको इस समय एकताकी भारी आवश्यकता थी। कई कारणोंने जिन अनेक व्यक्तियोंको नरस्कार प्राप्त नहीं हुई, उन्होंने अपने आपको स्वतंत्ररूपमें सशक्त किया। उन्हें यह आशा थी कि स्वतंत्र आर्थिक नीतिके अभावके फलस्वरूप देशमें फैले हुए असन्तोषका वह लाभ उठ सकते हैं।

निर्वाचनमें यह 'स्वतंत्र' एक बड़े प्रश्नचिह्नक चिन्ह थे। असतुष्ट कांग्रेसी, छिये हुए संप्रदायवादी और अव्यस्थित उन्मूलकवादी स्वतंत्र सदस्योंके रूपमें लड़े होकर विरोधी दलोंकी व्यवस्थित पार्टियोंके साथ स्थानीय समझौता स्थापित करनेमें सफल थे। यह स्वतंत्र दल रहा था कि वे कांग्रेस पार्टीके सम्पर्कोंको विभाजित कर देंगे। लेकिन हमने भी अधिक भयंकर एक अन्य छापके तथाकथित स्वतंत्रोंकी अर्थात् राजाओंके समूहकी चालें थी, जिन्होंने जमींदारी सनामिकी बढ़ाई हुई सौंपके विरोधमें मामूली हिंसेकी रक्षाके लिये अपनी पार्टियों बना ली थी। इनेशाही तरह संगठित हिन्दू संप्रदायवादकी महत्त्वभा, जनसभ और राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघ नामक निर्मूलकी शक्तिके साथ उन्हें बहुत मान्यता दिलाई गई।

इन तथाकथित कुलीन सम्बन्धोंने कुछ नै चुनावके समय लुटरोस संगठन यह धम उभार करनेके लिये विशा कि नरेशोंके पुराने राज्यमें नष्ट होनेके कारण उनके राज्योंने अमान्यता फैली हुई है और वहाँके लोग पुराने वंशक्रमानुसार शासकोंके स्वागदके लिये आतुर हैं। गाँववालोंके विरुद्ध टाकजनीने उन्होंने सहयोग दिया, सहायता दी और अशक्त उनमें भाग भी लिया। और फिर आन्त-णीय व्यक्तिके रूपमें प्रकट होकर इस अन्धवस्थाकी रोह न कर पानेके लिये कांग्रेसी प्रशासनकी मर्मांत करत थे। गाँवमें भूतनके विरुद्ध अभिमानके जिसके फलस्वरूप अनेक छोटे-मोटे राज्योंको बंदी बनाया गया था, सार्वजनिकियोंके

नई प्रवृत्तियाँ

स्वतन्त्रको भेगकर दिया, लेकिन यह उम समय तक न हो सका, जब तक चुनावोंमें इन चारोंमें अनेक सदस्य निर्वाचित करवानेमें वे सफल न हो गये ।

काँग्रेसकी पृष्ठमें परिवर्तित वामपन्थियोंने श्रुत मोर्चा बनानेका प्रयत्न किया, जिसने उनकी विमर्श हुई शक्ति सगठित हो जाय । यह प्रयत्न विशेषरूपमें हैदराबाद और झारखंड-बोचोनमें सफल हुए, लेकिन अन्य भागोंमें यह क्षेत्र अल्पस्थिति और अल्पस्थिति के बिना कोई वास्तविक निर्णायकमत रोल न खेल सके, इसके अनिश्चित सगठनरी दृष्टिमें वामपन्थी इनने शक्तिशाली नहीं थे, कि वे अखिल भारतीय स्तरपर वामपन्थी मुखावली कर सकते । कम्युनिस्ट पार्टीने अपना कार्यक्रम उन्हीं क्षेत्रोंमें बेहतर रखा जहाँपर सफलपूर्ण सफल हुए थे और जहाँ अधिक नैसर्गिक और हलचलके बिना ही जनताका समर्थ प्राप्त करनेकी आशा थी । केवल काँग्रेस ही इस मैदानमें ऐसी पार्टी थी, जिसने ४००० विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रोंमें प्रत्येक स्थानके लिए चुनाव लड़ा ।

जनताके मत प्राप्त करनेकी इस समूची शक्तिपूर्विकाएँ एक सफलपूर्ण बात यह थी कि 'मुक्त राजनीति' पार्टीमें 'राज्यमें बहुत कुछ सम्मान' थी । यह सब एक कल्याणकारी राज्यकी आवश्यकताको स्वीकार करते थे, जिसका अर्थ पूँजी-परिष्कार पर नियंत्रण था । यह सब है कि वामपन्थियोंने समानताकी बात की थी और हिन्दू महासभा ने यह घोषणा की थी कि वह वर्गहीन समाजकी सम्भावनापर विश्वास नहीं करती है, लेकिन जनताके उन्मूलक दृष्टिकोणको बहुत मान्यता दी जाती थी । भूमिके निर्णायक प्रश्नपर जमींदारोंका विरोध किया जाता था और महासभा केवल यही कह पाती थी कि यदि इन अधिकारोंको प्राप्त करना 'निर्गत आवश्यक' हो जाता है तो पर्वत चूनि-पूर्ति करनी चाहिये । सभी दल प्रमुख और मौलिक दृष्टिकोणोंके राष्ट्रीयकरणके सम्बन्धमें सहमत थे, यद्यपि प्रमुख और मौलिक शक्तोंकी व्याख्यामें यथेष्ट अंतर हो सकता था और भाषिक प्रासंगिक निर्माणका विरोध करनेका कोई भी दल साहस न कर सकता था ।

राजनीतिमें अंतरोंको बदलावकर कल्याण परंपरागत है, लेकिन भारतमें कोई निष्पक्ष दूरक विभिन्न शक्तियोंमें समानताके तत्व न होनेकी भूल नहीं कर सकता

निरक्षर व्यक्तियों की प्रौढ़ता

है। कुछ लोग कहेंगे कि भ्रष्टाचार के सफाईकार्यों के इतिहास की यह विशेषता है। इस धारणा का कारण चाहे जो कुछ हो, लेकिन कोई भी व्यक्ति इस तत्व की उपेक्षा नहीं कर सकता कि विशेषतः आयुनेक कालमें अनेकों हिंनों के प्रतिपादक और विचार गरा वाले राजनैतिक दल आवश्यकताओं अंगित, समुक्त समाज के लिये न्यूनतम कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पर जोर देते हैं। माध्यामिक युवाओं का संपूर्ण विषय भी इस वास्तविकता की नहीं दिशा मकल था।

युवाव आरम्भ हुए। इसके लिये इनने विराट् समाज की आवश्यकता थी कि मतदान के अनेकों मतदानों पर पल्लव पड़ा। मरिचिक व्यक्ति के शाप और अदु-गारित टंगर मतदान के देवकर समार आरम्भ कर दिया। लगभग १० करोड़ ४० लाख अर्थात् ६० प्रतिशत निर्वाचकों ने अपने इस महान अधिकार का प्रयोग किया।

यह आश्चर्य उस समय और भी बढ़ गया, जब यह पता चला कि यद्यपि २२ में से १८ राज्यों में वंशिम भारी बहुमत में लीनी है लेकिन उन्हें लगभग ४२ प्रतिशत से कुछ कम मत ही प्राप्त हो सके हैं। अस्तव्यस्त साम्यवादी पार्टी ने अपनी भूमिका कार्यवाहियों के उपरान्त एक मौलिक क्षेत्र में सुर्ग करने के बावजूद भी विरोधी दल का नेतृत्व प्राप्त कर लिया है। हिन्दू समाजवाद उन स्थानों में भी बुरी तरह हार गया जो हों और लड़ने केन्द्रस्थान रहे थे और गण-जननी समाजवादी, जिन्होंने यद्यपि १ करोड़ १० लाख में अधिक मत प्राप्त किये थे, वास्तव में पराजित हुए, क्योंकि समस्त गण विधान सभाओं में उनका विरोध कम और प्रभावहीन था।

यह परिणाम निरक्षर व्यक्तियों की प्रौढ़ता के शोकक थे, जिन्होंने मतदान में, अधिक विज्ञानित, नईव करने मुनिचित शायोपर हो करने के लिये युवाओं को भी, अधिक समझदार दिखाने थे। इसमें जो अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि बयस्क मतधारियों एक बार स्वाद करने के उपरान्त चाहे शायद उनके कुछ तत्व यह सोच लें कि प्रजापति नहीं मुनिचित नहीं है, पर भारतीयों को इन अधिकारों के बचिन होने के लिये तैयार होने की सभ्यता नहीं थी।

नई प्रवृत्तियाँ

नेहरू तो यह समझते थे न लगे कि कॉम्रेड पार्टीने क्या अपेक्षा की जाती है। अब कॉम्रेड अपनी पुरानी मेकाओं और परंपराओं से भरोसा नहीं कर सकना था। उसे अपनी प्रतिदिन की नीति-पत्रों के द्वारा ही समर्थन प्राप्त करना पड़ेगा। यह बात कैसे पूरी की जाए, यह एक बड़ी समस्या थी। लेकिन उन कॉम्रेडों ने मददों से जिन्होंने चुनाव में भाग लिया था, एक परिपत्र भेजते हुए नेहरू ने संदेश दिया कि मुनिरिचन आर्थिक कार्यक्रम के अंगरेज एक सुन्दर गजनेतिक पार्टी के रूप में काम करने की आवश्यकता है।

चुनाई तक उत्तर प्रदेश में जनोदारी मनाम हो चुकी थी। अतः तब गांधी-दामिक परियोजना प्रमाणित प्रयोग भारत में उनके भविष्यकाल की ओर उन्मुख करने के लिये जारी कर दी गयी थी। औद्योगिक कामकाजों की एक महत्वपूर्ण सामाजिक सुरक्षा परियोजना अर्थात् निर्वाह निधि के लिये उनमें पैसा कटना आरम्भ हो गया। दिसम्बर तक रु० २०.६६ करोड़ की प्रथम वसुधायी योजना नई मण्डल के मामले में स्वीकृति प्राप्त करने के लिये प्रस्तुत हो चुकी थी।

सचमुच एक कठिन समस्या के मुलामने के लिये यह प्रयत्न बहुत कम थे, लेकिन कॉम्रेड के आर्थिक दृष्टिकोण में नई अविवेकता आ गयी थी, जो समय बीतने के साथ-साथ बड़कर परिणामस्वरूप मजदूर पार्टी के अंदर दलों की कूट बड़नेवाली थी।

अन्य उपलब्धि कम थी। रोजगार मुश्किलें मिलने से। फिर भी लोगों ने मन देकर पार्टी की पुनः संतुष्ट कर दिया था, चाहे उनकी सामाजिक शक्ति भले ही कम हो गई हो। यदि महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर अब भी ध्यान न दिया गया तो अगला निर्वाचन कॉम्रेड की हार दख सकना था। प्रथम, सामाजिक स्वतंत्र, अल्पमत भारतीय सरकार की नीति में इन्हीं विचारों की प्रधानता थी।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भारत ने एक अधिक दृढ़ निश्चयी नीति अपनाई। दुविधा के क्षण अब पड़ोसी तरह इनके अधिक उपस्थित नहीं होने थे। सामान्य निर्वाचन होने तक बार-बार हम बात पर बड़ दिया जाता था कि भारत तटस्थ ही नहीं बन सकिय तटस्थ है। कॉम्रेड चुनाव घोषणा-पत्र में हम सक्रिय तटस्थता का स्पष्टीकरण 'स्वतंत्र' किया गया। विदेशनीति यह रूप उस समय मानने आया जब कि

संगार-वासियों के सामने संयुक्त राज्य अमेरिका की युद्ध-नैय्यायियों अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही थीं।

अमीकानों भी विस्फोटक स्थिति बढ रही थी। मित्र, ईरान, मध्यपूर्व और भूमध्य सागर के तटवर्ती देश उत्तेजित हो रहे थे। २७ मई १९५२ के दिन यूरोप में नाटो के ६ विदेश मंत्रियों एक यूरोपीय मैनारी स्थापना करने के निम्ने एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दिये।

संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा जापान को पुनः सशस्त्र करने और उसे युद्धसामग्री, युद्धपोत और वायुयान निर्माण की शक्ति देने के कारण एशियामें भी तनाव था। कोरिया प्रश्न की घृष्मभूमिमें पहुँचाने के उपरान्त अमेरिकन विधायनीतिने युद्ध की आग सुनगाने के लिये हिन्द-चीन को चुन लिया था।

साम्राज्यवाद की इन चालों की स्पष्ट विवेचन नेहरूने १२ जून की की थी जब उन्होंने उत्तरी, अफलातुनिक चानि संगठन और संयुक्त राष्ट्र की एसिदा और अमीकानों में वर्तमान उपनिवेशवाद की रक्षा के लिये पथप्रष्ट मस्थायों के रूपमें परिवर्तित होने की प्रवृत्तिके प्रति भारत सरकार की विना व्यक्त की। उन्होंने कहा कि अपने निरिचय पथ को छोड़कर धीरे धीरे अग्रगण्य रूपमें उपनिवेशवाद के रक्षक बनने की ओर संयुक्त राष्ट्रसभा झुकाव भयकर है। माघ ॥ साध शालिनी एर म्यान साधा सममने के म्यानप, उसके कुछ मदस्य उसे युद्ध आरम्भ करनेवाले संगठन के रूपमें अधिकाधिक देखने लगे हैं।”

समझमें व्यक्त करने के लिए यह रणिकोण बहुत शक्तिपूर्ण था, क्योंकि हममें भारत की तथाकथित साम्यवादविरोधी अभियान के विरुद्ध बरके अमीकानों में होनेवाले मुष्मि-अशेतनोम मित्र बना गया।

मित्र के मुक्तान काएने गरी छोड दी थी और नगीब नगीर के नेतृत्वमें सेनाग देरावर नियंत्रण था। शत्रु अधिकृत टूर्नीशियामें लगभग घेराबंदी की स्थिति हो गई थी और अन्तर्देशामें भी मुठभेड़ों के समानार निने थे। विद्रिप्त अधिकृत कनियामें स्वतंत्रता रिमापूर्ण मयरे बहोके शेत प्रचामियोंमें होने लगा था। दक्षिण अमीकानी रणभेद-नीतिने जो अब बहुत ओरों पर थी उन “अद महराद” के मभी स्थानों पर सम्बन्धोंमें तनाव पैदा कर दिया था।

नई प्रवृत्तियाँ

ऐसी स्थितिमें भारत निरपेक्ष दर्जाके समान बैठकर यह सब नहीं देख सकता था क्योंकि इस अजीब अणुनोपमे केवल अनेक भारतीय जानिबों ही सम्बधित नहीं थीं, बरन् विश्व समस्याओंमें भारतकी शक्ति भी इस बात पर आश्रित थी कि यह इमराल्ड और तेल नीतिमें सुनम अजीब और अरब समाजका कितना समर्थन प्राप्त कर सकते हैं।

अजीब और मध्यपूर्वकी समस्याओंका विरोध करनेवा अर्थ भारतकी साम्राज्यवाद और विशेष रूपसे ब्रिटेनके साथ मीचे मध्यमें स्थान था। दिल्लीका शासकीयचौक इस बातको अच्छी तरह समझता था, लेकिन घटनाक्रमने भारतको इसमें पंमनेके लिये विवरा कर दिया।

तथापि ध्यान देनेकी बात यह है कि इस कार्यकी आलोचना करते समय इस क्षेत्रमें ब्रिटेनके दखल देनेवाला बनकी ओरमें धम्यायी रूपमें आगे केर ली गई थी। विशेष रूपसे मासीमी उपनिवेशवादके विरुद्ध आन्दोलन किया गया था। एशियायी दृष्टिकोणमें यह बात इस कारण प्रभाव डाल मरी क्योंकि हिंदचीनकी घटनाओंमें भी प्रभु सम्बधित था।

विदेशी मामलोंमें भारतीय स्वतंत्र दृष्टिकोण काश्मीर प्रश्न पर विशेष प्रभाव डालता रहा। संयुक्त राष्ट्रके प्रतिनिधि प्रेक प्रहमने मिलकरमें यह घोषणा की थी कि वह भारत और पाकिस्तानके बीच कोई समझौता स्थापित न कर सके। नवम्बर तक काश्मीरकी विधान-निर्मात्री-परिषद् उत्तराधिकारी शासन व्यवस्थाके स्थानपर भारतके साथ राज्यके विलीनीकरणको स्थायी रूप प्रदान करनेके लिये कार्यरत हो गई थी। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी कि सालकी समाप्ति तक काश्मीरमें सप्रदायवादी हिन्दू-प्रजा-परिषद्का आन्दोलन आरम्भ हो गया था जो ऐसा मालूम पड़ता था कि साम्राज्यवादियोंकी मौनालुकृष्ण पर लिया गया है।

यही आन्दोलन था जिमने रोस अन्दुन्तको 'स्वतंत्र काश्मीर' का विचार प्रोत्साहित करनेका मौका दे दिया, जिस बारेमें वह महीनों पहलेके मनसूजे बोध रहे थे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अमेरिकन ममाचार-पत्रोंमें लगभग उन्नी समय उनकी चापलूसी करनेवाले लेख प्रकाशित हुए। 'वाशिंगटन पोस्ट'

ननक पत्रम एक लेखने यहाँ तक लिख दिया की काश्मीर का बचा बचा अन्दुलाके पीछे चलेगा ।

दिल्लीके यथार्थ नादियोंके लिये 'स्वातंत्र्य' के ऐसे मिथ्याबोध केवल दहो अर्थ हो सकता था कि काश्मीर विभागपाल करके अमेरिकामें भिज जाय, क्योंकि केवल यही बहुमूल्य नैतिक मोर्चोंके बदलेमें हम प्रभारकी बनावटी स्वतंत्रता प्रमिमें सहारा द सकता था । आश्चर्यकी बात यह है कि भारतमें कुछ प्रगतिवादी भी हम प्रभारकी विचार-गणना तब तक समर्थन करते रहे, जब तक कि उन्होंने अपने विचारोंके सम्भावित परिणामोंको नहीं समझ लिया ।

अन्दुला-काश्मीर अमेरिकी हाथ होनेसे, त्रिमूर्ति पुष्टि काश्मीर सरकारने अपने काम की है, भारत और अमेरिकी बीच बन्देबान्ते सम्बन्धोंकी ओर ध्यान रेखित हो जाता है, वहाँकी घटनायें, सुने विरोधके केवल एक ही पहलू थीं ।

पहले यह दोषारोपण किया गया था कि अमेरिकन कूटनीतिज्ञ, नेपालके अराण क्षेत्रमें सानतवादी राजाओंको भारतीय सत्ताद और सहायताकी अस्वीकृत करनेकी पग पटा रहे हैं । उसी पूर्वी मीमान्ने नागाक्षेत्रमें वहाँ निवास करनेवाली जातियोंमें भी अमेरिकन धर्मप्रचारक कार्य कर रहे थे । धर्म परिवर्तन करनेवाले नये व्यक्तिओंको यह सिखाया जाता था कि उन्हें भारतके समान विधनी गम्यने जगता होना चाहिये । हिमालयकी उत्तरी सीमाके गहारे चीनी जन गणतंत्र और तिब्बतके विरुद्ध अमेरिकन गुप्तचरोंकी कार्यवाहियोंमें भी मूबना मिली थी ।

जब काश्मीर संकटका विवरण प्राप्त हुआ, जैसा कि होना चाहिये था शास्त्र-विज्ञा सामने आ गई । यह पता चला कि स्वतंत्रता और व्यक्तिगत शक्ति प्राप्त करनेके विचारोंमें दृढ़ हुए शेर अन्दुलाकी अमेरिकन कूटनीतिज्ञोंने उच्चाद प्राप्त हुआ था । उनके निष्पक्षके दृढ़ बानेके लिये सार्थ और प्रचार दोनों तरहकी सहायता देनेकी भी प्रतिज्ञा की गई थी । उनकी ओरसे पाकिस्तानमें भी सुपक स्थापित किया गया था । तट्ट सदीय प्रेक्षकोंको भी सम्भावित शापकोष परिवर्तनका दशात कर दिया गया और वे इस काममें अपनी सेवा प्रस्तुत करनेके लिये तैयार थे ।

नई प्रवृत्तियाँ

इस कार्यवाहीको जियनेके लिए प्रयास परिषदका आन्दोलन केवल एक परदा था । इस संपूर्ण कार्यवाहीमें समस्त मध्य पूर्वमें छिप कर आक्रमण करनेके अमेरिकन ठेगानी गंध आ रही थी ।

अगस्त १९२३ में कुस्तानतूर्क रत्न हुए इस पक्षपक्षका प्रमाण सरकारके हाथ आ गया । अस्तुस्ता और उनके सहयोगियोंको बंदी बना लिया गया और इस प्रकार एक सफटपूर्ण परिस्थितिमें रत्ता हो गई ।

अस्तुस्ताके विरुद्ध की गई कट्टर कार्यवाहीने भी अमेरिकाका राज्य विभाग अस्तुस्ताहित नहीं हुआ । उन्होंने अपना जाल पकिस्तानमें फैलाया, जहाँ प्रथम मनीषदक्ष कार्यभार नज्मिमुद्दीनमें उनके रिदू मुहम्मद अलीन ले लिया था । यह गरम अफवाहें थीं कि बगवो-वार्शिष्टनके बाव एक पुगीका निर्माण हो रहा है । लेकिन इसके बारेमें सांग बनानाबने ।

महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत और अमेरिकाके सम्बंधोंमें यह गम्भीर प्रकाशमय परिवर्तन उस समय हो रहा था जब ५ मार्च १९२३ को स्टालिनका मृत्युके ठहराव सोवियट सपने अन्तर्राष्ट्रीय तनावको कम करनेके उद्देश्यमें पूर्व कलोन औपनिवेशिक तथा समारके अतिरिक्त क्षेत्रोंके साथ निकट आर्थिक और राजनैतिक सम्बंध स्थापित करनेके लिये एक राष्ट्रीय नीति अपनाई था । इसके अतिरिक्त अगस्त १९२३ में मेलोवोवने यह प्रकट किया था कि हमने उद्द जन धम बना लिया है जो सयुक्त राज्य अमेरिकाकी बुद्ध नैवारियोंके लिये एक अतिरिक्त प्रतिरोध था ।

हर जगह सत्ताप्यवादी पाठे दृढ़ रहे थे और यह धर्मोंकी पूर्वस्थिति एवं विश्वमनोयताकी ओर ध्यान न डकर तेजोने मित्र खोजनेमें लागे हुए थे । अर्थोशामे मुक्ति-आन्दोलन प्रभावित-क्षेत्रोंमें विस्तार हो रहा था । यशोप ईरानमें परिवर्तन हो चुका था, जहाँ साइगी प्रधानमन्त्री मुसहोवको अमेरिकापर अश्रित सैनिक कार्तिके द्वारा पद-अष्ट कर दिया गया था, फिर भी साम्यवादी साम्राज्यकी दीवान गिर रही थी । विनाम आलाभ उल्लंघन कर रहा था । मोरको विद्रोहमें सम्मिलित हो गया था ।

अमेरिकन नीति

अमेरिकन नीतिमें लक्ष्य पन प्रमुखतः संयुक्त राज्यके सामान्य बुलायेंगे रिपब्लिकन पार्टीके सत्तापक्ष राजनैतिक पार्टीके रूपमें प्रतिष्ठित होनेके कारण ज्ञाया था। जनान् आत्मन द्वातर्को अभ्युदयमें नई सरकार परिस्थितिमें सुभारनेमें व्यस्त हो गई, लेकिन भारतका स्पष्ट विरोध निम्न-राज्यीय सुलन बदलने ही बाला था।

भा पा वा द

चाहे हम चलने हों, बैठे हो, सड़े हो अथवा हाथों या पायों पैर उठाते हो, हमें अपनी जन्मभूमिको चोट नहीं पहुँचानी चाहिये ।

(अथर्ववेद)

भारत जैसे देशमें विदेशी परिवर्तनोंका आतंरिक जोति पर बड़े-प्रभाव पड़ना है । ज्यों ही १९४२ में यह स्पष्ट दिखालाई पड़ा कि वर्तमान आर्थिक समस्याओंके मुलभूतमें पूँजीजीवियोंकी सहायता करनेके लिये साम्राज्यवादी नहीं आ रहे हैं और भारतको अपने प्रयत्नोंका ही भरोसा करना पड़ेगा, राजनैतिक विचारधारामें भी परिवर्तन होने लगा ।

यह विश्वास फल गया कि आर्थिक क्षेत्रमें सक्कारी हुम्नक्षेपक बिना कोई प्रगति सम्भव नहीं है और सरकारका सहारा लेनेकी आवश्यकताका प्रभाव यह हुआ कि पूँजीजीवियों और उनके राजनैतिक मध्यन वर्गमें भारी मनोदंष्ट हो गया ।

कटोर प्रयत्नों द्वारा भी बड़े व्यवसायों किमी प्रगत्तिके भारी उद्योगोंके विकासके लिये निजी पूँजी कभी प्राप्त नहीं कर सकते थे । इस कारण उन्होंने यह निर्णय किया कि चाहे सहायताका अथ वित्तीय मदद भले ही हो, लेकिन फिर भी पूँजीजीवियोंके द्वारा देशकी आर्थिक उन्नतिमें सहायता करना सरकारका कर्तव्य है । इसका अर्थ यह था कि सरकारको अनन्ततर कर लगाकर उस पैसैको भारतीय व्यापारियों और औद्योगिकोंको देना चाहिये । वास्तवमें यही ऐसा नाग था जिसे सभी पूँजीजीवियोंका समर्थन प्राप्त होता ।

लेकिन पूँजीजीवियोंके मध्यम वर्गीय लोग इस सम्भावनाके बारेमें बिलकुल प्रगन नहीं थे । उनके बड़े भाइयोंका लाभके सम्पत्त स्रोतों पर एकाधिकार बहुत दिन रह चुका था । उन्होंने अपने कम शक्तिशाली भावियोंको विकास और प्रसारकी सुविधाओंमें काफी समय व्यक्त रखा था । अब चूँकि बड़े स्तर पर लाभ हो सकते थे, मध्यम पूँजीजीवियोंने यह व्यवस्था सोचा कि इस सम्भावना का आत्मसमर्पण बड़े पूँजीजीवियोंके सामने न किया जाय, क्योंकि यदि वैयक्तिक

पूँजीजीवियोंकी विशेषता

उद्योगोंमें सरकार द्वारा मददगार देनेका नारा सुनंद किया जाता है, तो उसका असली तन्त्र नो बढ़ी दृष्टि कर लेंगे।

सभी पूँजीवादी मन्त्रालयोंमें मानान्यतया विद्यमान यह बड़े और मध्यम पूँजीजीवियोंका सङ्घर्ष भागमें एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है तथा उसकी अपनी कुछ निती और एकात्मिक विशेषताएँ हैं। हमके विशेष अध्ययनकी आवश्यकता है, क्योंकि इसी हाल पर बोधिम पाटकि आर्थिक दृष्टिकोणमें होनेवाले कामपथी सुझावकर समझना आश्रित है।

यह मानी हुई बात है कि प्रत्येक पूँजीवादी देशके पूँजीजीवियोंमें अनेक सामान्य विशेषताएँ होती हैं, जिनके कारण हमें आर्थिक और राजनीतिक इतिहासमें उनके विरोध रोलको समझनेमें सहायता मिलती है। लेकिन इसी विशेषतापर इनका अधिक बल दिया जाता है कि इनके कारण प्रत्येक देशके पूँजीजीवियोंकी रचनाकी अन्य विशेषताएँ धुँपती पड़ जाती हैं जो उनमें भिन्न हैं और जिनकी जड़े उसी देशकी जनताके इतिहास और विकासमें उमी हुई होती हैं। भारतीय पूँजीजीवियोंमें इस प्रकारकी विशेषताओंका भाग सामान्यमें अधिक है।

आइये, इन मरीजकी हम सक्षेपमें परीक्षा कर लेंगे। इतिहासज्ञ भारत सम्बंधी पूरी बातों पर विश्वास नहीं करने, लेकिन उसके १००० वर्षोंमें अधिकके कुछ अस्पष्ट और कुछ स्पष्ट इतिहासमें यह बात पूर्ण रूपसे प्रकट हो जाती है, कि भारत कभी समुक्त इच्छा नहीं रहा। पूर्वकालमें अपनी सार्वभौमिकताकी घोषणा करनेवाले बड़े-बड़े साम्राज्य अवश्य स्थापित हुए थे। यह एक विराट् क्षेत्रमें फैले हुए थे और अपने आटेखोंका पालन करवानेके लिये उन्होंने एक बड़ा विराट् नौकरशाही यंत्र स्थापित कर रखा था। लेकिन मौर्य, गुप्त, कुशान और सप्तवाहन साम्राज्यों भी एक साम्राज्यने भारतके समस्त भूभागका नियंत्रण नहीं किया। देश अधिकांश अनेक राजवंशोंके प्रभावमें रहा, जिनमें कुछ ने अपने विरोधियोंके ठपर सर्वशक्तिता स्थापित कर रखी थी, लेकिन जो सकटकालमें अपनी साम्राज्यवादितान्त्रिक शक्ति बहुत कम ही प्रमाणित कर पाते थे।

भा या वा द

हम यह भी जानते हैं कि भारतमें अलग-अलग भाषा, लिपि और रीति-रिवाजों वाली अनेक स्पष्ट सभ्यताएँ फलज्मित हुई हैं। यद्यपि बहुत कुछ समान बातोंसे ही यह निरली थी, लेकिन उनमें अपनी स्वतंत्र विशेषताएँ थीं। यदि सुदूरवर्ती निर्माण वालीय भूतवास्तवमें कोई सांकेतिकता एकरा व्यापित करनेवाली माल होती, तो निश्चय ही भारतीय एकतामें व्याम विभिन्नता और अनेकमपना, सम्भव नहीं हो सकती थी।

साम्प्रदायिक प्रदान करनेवाले वर्तमानोंके आग्रामनने साथ ऐसी शक्ति प्रकट हुई जिसने लूट और औपनिवेशिक प्रणामन स्थापित करनेके लिये भारतके विन्मृत क्षेत्रों और करोड़ों निवासियोंको एक केन्द्रीय व्यवस्था में आधीन कर दिया। लेकिन वह बहुत विनम्रने आये थे। मूलन विभिन्नतामें रहतेने ही धनी था और अन्त मध्याने लिये सुरुज हो गया। निर्दय साम्राज्यवादके सम्पूर्ण अन्यायान भी उन बातोंको नष्ट न कर सके, जिने कुछ लोग भारतकी अनेक गहरी विशेषता कहते हैं।

विदेशी नितिक साम्राज्यवाद इस विशेषताने एकरा स्पष्ट प्रभाव डाला कि कुछ समय उपरान्त अपनी माल बाधम एवनेके लिये उन्होंने इसी विभिन्नताका उपयोग करनेका प्रयत्न किया। राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दुओंको सुसलमानोंने लक्ष्य किया और उन क्षेत्रोंमें जहाँ इस प्रकारका साम्राज्यिक विभाजन नहीं था, दूसरोंकी मानवानीमें तैयार किया गया। स्वेच्छापूर्वक भारतकी प्रान्तोंमें विभाजित किया गया, जिसके लिये सर्वधानिक शब्द था, “मुविधाजनक प्रणामनिक इकाई”। लेकिन अधिकतर प्रान्तोंमें ही या दो से अधिक भाषिक-सांस्कृतिक समूहोंको इकाई रखा गया, जिसमें वह ‘बायो और राज्य करो’ नीतिके सहज शिकार बन लें।

विस्तीर्णीकरण बहुत कम ही हो मल। लुटेने विदेशियोंकी उपस्थितिमें भी साम्राज्यवादके बीचकी खाई न पाटी जा मरी। धीरे धीरे प्रान्तके निर्बल नाधियोंके ऊपर दूसरा समूह प्रधानता स्थापित करना गया।

तनाव बढ़े। उनके अन्तर अधिक स्पष्ट रूपमें व्यक्त होने लगे। तामिसोने तैलरू और मलायालमों पर प्रधानता प्राप्त कर ली, मराठोंपर गुजराती छा मये, बंगाली, बिहारियोंने पूजा करने थे आदि। साम्राज्यवादी प्रणामनके लिये यह आदर्श स्थिति

थी, पर भारतीय ऐतिहासिक प्रगति पर इसका पूरा प्रभाव अच्छी तरह समझना अभी शेष है।

अनेक लेखक और राजनीतिक—मिलेजक हिन्दू-मुसलमानों के प्रश्न तब अपनेको नीचे लेखते हैं और वह मही रूपसे इसे घृणाका एक आस्थापी परिणाम समझते हैं, एक ऐसा रोग जो धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोणके निरन्तर प्रचार द्वारा दूर हो जायगा। इन्हें रोग इस फूटका प्रमुख कारण उत्ती भाग्यवानियोंकी राजनीतिक क्षेत्रमें प्रधानता और इच्छित भाग्यवानियोंका इस स्थितिके प्रति असह्य बलताते हैं।

इस मनभेदकी विद्यमानताको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। यह अन्तर उनका ही पुला है जितना सामान्यण। विषयपूर्ण-व्यपत्ता सामान्य तौरपर इसकी भागीलिक विभाजन रेखा है। यह समझा अनेक नियमोंमें व्यक्त होनी है, लेकिन इस समय भाषा ही इस नतादका मुख्य कारण थी। इच्छितवाणी इसे 'हिन्दी-मात्राज्यवाद' कहना पसंद करते हैं।

इस मनभेदकी भविष्यमें काफी होशियारीमें समझना पड़ेगा, लेकिन आज भारतके विकास पर उसका प्रभाव इतना निर्णायक नहीं है, जितना देशके अन्दर विद्यमान अनेक स्पष्ट सामूहिक और भाषिक दलोंका है। अधिकतर यह तब समझमें नहीं आता। मार्क्सवादी तब तक उसे बहुत ही जाति और सीमित दलों समझते हैं। भारतीय पूँजीजीवियोंका अध्ययन केवल इसी सांस्कृतिक और भाषिक तनावकी पृष्ठभूमिमें किया जा सकता है। हम क्या देखते हैं?

ब्रिटिश सामन और उसके बादके कालोंमें भारतने बड़े पूँजीजीवियोंका शीघ्रतापूर्वक पल्लविन होना देखा है, जिन्हें सामान्यतया बड़े व्यापारी-तब कहा जाता है। दोनों निधुद्ध तथा पैसा पैदा करनेके प्रत्येक अवसरके कुशलतापूर्वक दोहनके कारण बाहे उसका अर्थ साम्राज्यवादी पूँजीमें समझीत करना हो, साथ ही साथ पैसे द्वारा स्वतन्त्रता आंदोलनोंकी मजबूत देनेके कारण ये तब आर्थिक और राजनीतिक जीवनमें आगे आये।

एक विद्वत्ताकी अपेक्षाकी ओरसे विचार मिलते थे। दूसरा विद्वत्ता कांग्रेस नेताओंके विरुद्धताके रूपमें काम करता था। अपनी स्थितिके बलपर वह इस

भा पा या द

प्रकारका दोनरा पाटं सरलतामे सेन पाते थे और जब राजनैतिक आचारा पर हिन्दू महासभाका मिलरा उग्या हुआ दिखलाई पडा, गिफ्टा वहाँ भी अपनी उँगली रसनेमें पीछे नहीं हटे ।

सामान्यवादिशेने जगरा विरोध केवल इसी सीमा तक था कि वे उनके एकाधिकारी फैलावके विषयमें बाधा उपस्थित करते थे और बिबलाओंकी बिबाधारा ठाटा, जलमिया, गोइनरा, सिचानियों आदि बड़े व्यापारी 'परिवारों' से कुछ विशेष भिन्न नहीं थी ।

भारतीय बड़े एंजीनीयर्सने अपना जाल सारे देशपर फैला दिया और लाम्पनोंमें से लेकर रेल ट्रक तक, गाना परलेके स्लिप पदार्थों से लेकर बलिया इत्यादि तकका उत्पादन आरम्भ कर दिया । अपनी एकाधिकारी पदार्थों अधिक हट करनेके लिये उन्होंने अपना सम्बन्ध विदेशी कम्पनियोंमें भी स्थापित कर लिया, बाहे इसका अर्थ नष्ट, बोल्थोंका ही बचना हुआ । लामके किसी क्षेत्रको उन्होंने बाजी नहीं छोडा ।

इस विषयमें टाटा और गिफ्टा एशिया और अजीमके पिछड़े हुए क्षेत्रोंमें काम करनेवाले व्यापारियों और सवालशेके बहुत कुछ समान हैं तथापि एक तत्व ऐसा भी है जिसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता । थोड़ेसे आत्माओंको छोड़कर भारतके बड़े एंजीनीयरी अधिकतर मारवाडी व्यापारी हैं । वे विषाह और अन्य दूसरी दरय और अन्य श्रमियोंसे परस्पर जुड़े हुए हैं । उनमें टाटा सरीछे जो थोड़ेसे गैर-मारवाडी हैं, उन्हें भी उनके राजनैतिक नेतृत्वके पीछे चलना पड़ना है । उनके अखिल भारतीय कार्य-कलाप उन्हें मध्यमवर्गीय एंजीनीयर्सके हितोंके सपनेमें ला देते हैं, क्योंकि विदेशी अपने साधियोंके गिफ्टा इनका आधार क्षेत्रीय है और वे आवश्यक रूपसे अपने ही भाषिक, सांस्कृतिक क्षेत्रमें व्यापार करते हैं । जनवादीका यह कम शक्तिशाली भाग निबला और टाटाको अपना बडा भाई नहीं सम्मत्ता जिसका वे सहारा ले सकें, वरन् वह उन्हें एक नये ढंगका आर्थिक साम्राज्यवादी सम्मत्ते हैं जो भारतकी रचना करनेवाले विभिन्न स्पष्ट भाषिक क्षत्रीय उन्नतिके बाधक हैं ।

बड़े पूँजीजीवियों और विदेशी पूँजीके विरुद्ध होवेवाला यह धर्म बहुत वास्तविक है। जब ब्रिटेनके विजित इबनोंका उत्पादन आरम्भ करते हैं तो बिज्ला या टाटा उसका अधिक ऊँचे स्तर पर उत्पादन आरम्भ करके ब्रिटेनकी तरफ़ी रोह देते हैं, जब स्वामीय सोझ बाटवधी फेक्ट्रियोंमें शानि होती है; कोय कोल उनका स्थापार सनात कर देता है। बिज्ला अपनी माडकी मोटरें बेचना चाहते हैं और इस बातका प्रयत्न करते हैं कि मोटरोंके विषयमें देशी आयात नीतिमें आवश्यक परिवर्तन कर दिया जाय। दियामऊरे बनानेका दक्षिणमें कुडीर उद्योग करने वालोंसे 'बिमको'से कदा मुझवला करना पड़ता है। गोदरेज और अन्य छोटे मोटे सलुन निर्माताओंसे लोकर मदरन तरीली सजुछ कानिगोछ सामना करना पड़ जाता है। यदि कोई महीन कप बनानेको महीनके निर्मातासे बात करता है तो बिज्ला उनसे आगे बढ़ आते हैं और बनने उन्हें स्वयं अहमदाबादके मिल मालिकोंने झूठना पड़ता है, जो अपने सामानके लिये उन पर अधिक नही रहना चाहते। और मारवाडी इस बातका इनीयन करनेके लिये मुद्राप्रलपोर भी एकविध स्थापित कर डालते हैं कि स्थायी पनोंछ न तो पूर्ण पिनरण हो, न उन्हें विज्ञान मिले और अंतमें वे चल भी न सकें। इस बातके असाय उदाहरण गिनये जा सकते हैं। इन सब बातोंने यही दीखता है कि भारतीय और विदेशी एकद्विपति एक दूसरेके एक बन कर इस प्रयत्न करने हैं, जिनके मरिच साष्टतिर क्षेत्रोंने उनके छोटे पूँजीजीवी भाँयोंसे कार्य करनेका अन्तर ही न मिल।

इन लोगोंका मय ठपिन ही था, क्योंकि जिन क्षेत्रोंमें वे कुछ शानि कर सके वहाँ भी सहायकके लिये उन्हें अधिकतर इन अमिल भारतीय व्यापारी क्षेत्रोंका सहनाम होना पड़ता था और सहायकके साथ उनके अनेक उपेय जुड़े रहते थे। यदि मन्वित्तीय पूँजीजीवीके अभिष्टानोंके पूँजी क्षेत्रोंकी परीक्षा की जाय, तो यह पता चलेगा कि वे वास्तवमें अपने स्वामी नहीं हैं।

भारतीय पूँजीजीवियोंकी रचनाका यह रूप पहली बार देखने पर अत्यवस्थित मले ही मालूम पड़े, लेकिन जितना ही उन्हें ऐतिहासिक रूप और वर्तमान परिस्थितियों से परा जाता है, उतनी ही परिस्थिति स्पष्ट हो जाती है। बड़े पूँजीजीवी

भा या चा द

चिनका संचालन क्षेत्र सम्पूर्ण भारत है और जो अधिकतर मारवादी है, आर्थिक विदेशोंके लिये अपने ही मापिक क्षेत्रमें निर्यात अधिकार चाहनेवाले मध्यम पूंजीजीवियोंकी उन्नति और प्रसार रोकने हैं।

यह सच है, जो प्रमुखतया आर्थिक है, उस समय राजनैतिक स्तर तक पहुँच गया, जब राज्यको देशके साधनोंको विकसित करनेके लिये प्रयत्नशील होनेके लिये विवश होना पड़ा, क्योंकि गणराज्यवाद उन शक्तों पर सहायता देनेके लिये तैयार नहीं था, जिसकी ठगपुक्तता उनके बड़े पूंजीजीवी मित्र स्वतंत्रता और सार्वभौमिकताके प्रति जागरूक जनताके सामने निरुद्ध कर सकते हैं। आर्थिक नीतिमें राज्यके नेतृत्वका प्रश्न बड़े और मध्यम पूंजीजीवियोंके बीचके इस संघर्षमें राजनैतिक कार्यावधि पर पहुँचा देता है।

प्रारम्भिक रूपमें यह सार्व्य देशमें सांस्कृतिक-भाषिक आधार पर पुनः विभाजित करनेकी माँगके लिये होनेवाले राष्ट्रीय आंदोलनमें दिखलाई पड़ता है। मध्यम पूंजीजीवी अपने कार्यक्षेत्रमें दृढ़ता प्राप्त करनेके लिये यह कदम उठाना आवश्यक समझता है। निम्न प्रकार बड़े पूंजीजीवियोंने राजनैतिक शक्ति प्राप्त करनेकी आशासे अखिल भारतीय कांग्रेसकी सहायता की थी, उसी प्रकार मध्यम पूंजीजीवियोंने नये राज्यको निर्माणमें सक्रिय सहायता दी, ताकि वे उनके प्रभावमें रहें और छपनी नीति पर अधिक प्रभावशाली दवाब डाल सकें। मध्यम पूंजीजीवी अपने राज्योंके निर्माणके लिये दृढरति हैं।

लेकिन उनके प्रयत्नोंकी हपरेला हमेशा इतनी स्पष्ट नहीं दीख पड़ती। मद्रासके तन्मिल और बम्बईके गुजराती आदिके समान प्रधान भाषिक-सांस्कृतिक वर्गके पूंजीजीवी यथेष्ट विरमिश्र हैं, जिन्हें 'बंग' कहा जा सकता है। राज्य पुनर्रचनाकी मौँग इनकी ओरसे इतनी जोरदार नहीं है, क्योंकि यह विरमिश्र बड़े राज्यके अपने निर्वल साथी पूंजीजीवियोंके प्रयत्नोंसे दबा सकते हैं। लेकिन यह भिन्नतर अधिकतर उस समय समाप्त हो जाती है, जब अखिल-भारतीय बड़े पूंजीजीवी प्रमुख शक्तोंकी हपरेला उन्हें दीखने लगती है।

राज्य पुनर्गठन आयोग

एक मुक्त केन्द्रीय प्रशासनिक प्रतिपादक यात्रा विद्वत् आदि, भातों की पुनर्गठनाधीनता की नहीं देना सके, क्योंकि अपनी प्रकृतिक कारण राज्यों में वे अपने कोई समर्थक न पा सके, वे बंगालियों, पञ्जाबियों, विहारियों, तेलगुओं, महाराष्ट्रियों और मलयालियों में कोई नया पूँजीजीवी न हूँ सके। शायद दम्बई शहर में रहनेवाले गुजराती व्यापारी, जो भारतीय एकाधिकारी पूँजी से लुटे हुए हैं, उनके एकमात्र माथी थे। मबने अधिक विफल, और भारत के मध्यमवर्गीय पूँजीजीवियों में राजनैतिक रूप से सबसे अधिक सुगठित, अहमदाबाद के गुजराती भी अंतर्गत भारतीय प्रभाव रखनेवाले इस वर्ग की शक्ति समाप्त करने के इच्छुक थे।

यह शक्ति समाप्त हो जा सकती है। नये दंगे लगे हुए प्रांतों का अर्थ था, मध्यम पूँजीजीवियों द्वारा आसानी से नियंत्रित निये जा सकनेवाले व्यवस्थापित सदस्यों का चुनाव। व्यवस्थापक क्षेत्रों में सुगठित विरास करने पर बहुत जोर डाल सकते थे, जिस विकास के लिए दिसोसे सहायता प्राप्त होती और जिसका अर्थ था अपने क्षेत्रों में प्रशासन, और बड़े पूँजीजीवियों द्वारा नियंत्रित, केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित और विभाजित न होनेवाले मध्यम पूँजीजीवियों को लाभ के नये क्षेत्र प्राप्त करना।

और इसी कारण १९५२ के अखिर कारणों में जब यह स्पष्ट हो गया कि सरकार अधिक विकास-कार्योक्त नेतृत्व करनेवाली है, भारत के सबसे अधिक पिछड़े हुए सांस्कृतिक अधिक क्षेत्र, आग्र में प्रथम अधिकराज्यरी योग करनेवाला एक आरोहण धपक उठा। वहाँ के वीरसिंहों ने वीरसिंहों के आदेशों की अवहेलना की।

पेटी धीरान्तर्गत परमाणु आमाण अंतराज्य प्रारम्भ कर दिया। ५० वें दिन उनकी मृत्यु हो गई। वे आग्रसी एकता के प्रतीक थे और उनकी मृत्यु के परिणाम स्वरूप जोश इतना बढा कि दिल्ली में उनके सम्मने मुकना पडा। १॥ दिसम्बर १९५२ को नेहरूने घोषणा की कि सरकारने यह योग खान ली है।

एक वर्ष के अंदर ही अंदर, २२ दिसम्बर १९५३ को सीनाओं की पुनर्गठित करने के प्रकरण की सभी दृष्टियों से परीक्षा करने के लिए राज्यपुनर्गठन आयोग की नियुक्ति का दी गई।

भा वा वा द

जब भविष्यके इतिहास रचयिता इन घटनाओंको लिखेंगे, उन्हें इन घटनाओंमें भारतीय प्रगतिमें एक नवीन निर्णायक रूप दिखलाई पड़ेगा । इस समयमें अपनी प्रथम विशेषतायें रखनेवाले भारतीय मध्य पूँजीजीवी देशकी नीतिपर अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर देते हैं । भविष्यमें दो नये शब्द बहुत जनप्रिय बन जाते हैं “सार्वजनिक क्षेत्र” । ये दो शब्द बड़े पूँजीजीवियोंने सुर्घ करनेके बड़े भारी दृश्य हैं ।

यह ठीक है, कि आरम्भमें सार्वजनिक क्षेत्रकी नीति मध्य पूँजीजीवियोंकी भी समझमें नहीं आई और यह मालूम पड़ा कि इसका अर्थ यही है कि आर्थिक कुशलताके हितार्थ पूँजीवादी सरकार कुछ कार्य अपने हाथमें ले लेगी । लेकिन यह दृष्टिकोण भी उस समय समाप्त हो गया, जब राज्यने सक्रिय रूपसे उन क्षेत्रोंमें भी प्रवेश किया, जिन्हें बड़े पूँजीजीवियोंने अपना आरक्षित स्थान समझ रखा था, जैसे इस्पात ।

भारतका इस प्रकारके हस्तक्षेपका विचार ब्रिटेन और अमेरिकाके इसी प्रकारके कार्यसे यथेष्ट प्रेरक था । उनकी अर्थव्यवस्था विरस्तित है और यहाँ यदि राज्य किसी आर्थिक कार्यक्रमको स्वयं संभालनेके लिये आगे बढ़ता है, तो उन्हीं क्षेत्रोंमें जिन्हें वैयक्तिक प्रयत्न विभिन्न कारणोंने सफलतापूर्वक नहीं संभाल सकते । भारतके सम्बन्धमें यह बात नहीं है । नवीन अर्थव्यवस्थाकी तुलनामें यह देश अविकसित ही है और इस कारण राज्यके हस्तक्षेपका अर्थ केवल एक ही निरालता है कि सरकार विकासघर्षोंका नेतृत्व करके कमरा प्रमुख स्थिति प्राप्त करनेवाली है ।

१९५२-५३ में शक्तियोंके इस विचित्र संगठनका कोई राजनैतिक विवेचन नहीं किया गया । परल स्वरूप भारत वामपंथियोंने मित्रता करनेकी ओर बढ़ा । विदेशी समस्याओंमें नेहरूजी साम्राज्यवाद विरोधी स्थितिमें “दो शिविरोंके बीच अनियोज्य तमाशा” कहकर चल दिया गया और आश्चर्यको बात यह है कि यही दृष्टिकोण दक्षिण और वामपंथी दोनोंने अपनाया था ।

इस सम्बन्धमें अनेक आम्ल-अमेरिकन तेल-कंपनियों द्वारा भारतमें तेल शोधक घर खाने स्थापित करनेके बारेमें होनेवाले सन्धियोंकी ओर ध्यान गया । इन सन्धियों-

ने पल स्वल्प विदेशी पूंजीकी आवश्यकतासे अधिक अच्छा व्यवहार प्राप्त हुआ, क्योंकि उन्हें अपने लाभ नियाल करनेकी आशा थी। केवल यही आमममर्षण दिखलाई पड़ता था। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

इस प्रकारकी परस्पर विरोधी नीति समन्वित्तन्त्रने अधिकतर दिखलाई पड़ती है। तथापि राजनैतिक विस्लेषणाका कार्य इसकी मुख्य प्रवृत्तियोंको हूँदना, बर्न संगठनके रूपमें उन्हें समझना और सम्पादित प्रवृत्तियोंको पहचाने देखना है। यह नहीं किया गया, यद्यपि १९५३ के अन्तमें न केवल नेहरू, एमोमिबेटेड खेवर और कामर्मेके सामने यह कह रहे थे कि औद्योगीकरणका मुख्य भाग सरकारके ऊपर है, बल्कि आईमनहावर और उनके मित्र पार्लियामने मैनिफेस्टोकी सभिके बारेमें बातचीत करते हुए भी सुने गये थे। सम्भवतः इसी बात और भारतकी भविष्य-नीतिपर इसका प्रभाव किसी सोना तक समझ लिया गया था। भारतके अंदर होनेवाले परिवर्तनोंने उन्हें सम्बोधित न करनेके कारण उनके वास्तविक अर्थकी पूर्ण विवेचना न हो सकी।

१९५३ के अन्तमें न तो कंपैसियोंने और न सम्पादकदियोंने यह अनुभव किया कि अगले दो वर्षोंमें क्या होनेवाला है। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढ़कर विश्वासपूर्वक यह घोषणा करने लगे कि अवाटलल नेहरू और उनकी सरकारको स्वयं उस मार्गी कुछ भी कल्पना नहीं थी, जिसपर वे चलनेवाले थे, एक ऐसा मार्ग जिसने भारतके असम्यक् अर्थिकी लिये आश्चर्यजनक सुभाषनाये प्राप्त होनेकी आशा थी।

महत्वपूर्ण वर्ष

अपनी मानृमूर्मिहा कीन दोस्त है और कौन दुरमान !
आप स्वयं विचार पूर्वक देखकर पता लगाइये ।

— मजहूर ।

वर्तमानके बीज भूतशालमें थे । भूतशालका परिणाम वर्तमानशालमें दीपता है । यही सतत कम है । और स्वतंत्र भारतके इतिहासमें १९५४ और १९५५ के वर्षोंको परिवर्तन-बिंदुके रूपमें स्मरण किया जायगा । यह एक महत्वपूर्ण निर्माण-काल था, जिसने वर्तमानका रूप निर्धारित किया ।

घटनाओंने पड़ोस रचकर भारतको तथा भारतके विचारोंको गम्भीर परिणामोंसे पूर्ण विषय बना डाला था, कुछ समय तक तो सत्कारी रूपमें मास्को, वॉशिंग्टन, पेरिस और लंदनकी यही पालना बनी रही । इसका उत्तर स्पष्ट था । शीन मुद्दोंमें व्युह-रचनाने सत्कारके लोभोंको लचकंदके बिनासेपर खर खर दिया था । भारत हम प्रभुके किसी प्रकारके निर्णय करनेमें गहायता कर सकता था ।

यद्यपि कोरियामें बढ़कें शांत हो गई थी, लेकिन संपूर्ण चीनी समुद्रतटपर सृष्ट और छेड़छाड़की गूंज बनी हुई थी । हिंद चीनमें शांघनाके साथ एक नये अंतर्राष्ट्रीय संपर्ककी सुपरिचित स्थिति फलफिल हो रही थी । यूरोपीय बाह्यका भंडार भी बहुत सूखा हुआ था । वॉशिंग्टनने हस्तक्षेपके लिये यही अवसर उपयुक्त समझा । इस अवर्षके इतने निष्ठ होनेपर भी लोग अंतिम स्थितिमें अवरोध उपस्थित करनेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील थे । दूसरे शब्दोंमें, इस शीत युद्धके अंदर ही छुटकाता पानेके कारण भी दीख रहे थे ।

चिन्होंने युद्धपर दाम लण रखा था, भिन्नमतनेवालों पर कुरी तरह दबाव डाल रहे थे । लेकिन इन भिन्नमतनेवालोंके, विशेष रूपसे मास और बर्तानियोंके हित इतने अधिक परिष्कार थे और वे समझवादी दुर्निर्णयने तक चरण करनेके लिये तैयार न थे, जब तक कि सुझ, निष्ठ और मध्यपूर्वमें उनके हितोंकी रक्षाका प्रबंध न हो जाता । इन घोरोंकी कुजी भारतके पास थी ।

भारत अपने सक्रिय तटस्थताकी स्थितिसे विचिन्तित भी होनेका शक नहीं करता था। यही वह स्थिति थी जो युद्धके दक्षिण अवरोध कर रही थी तथा यूरोप और एशियामें विद्यमान सूखे हुए वास्तुके देखने गीला रखनेवाले युद्ध-विरोधी विचारोंको सक्ति प्रदान कर रही थी।

समुक्त राष्ट्र सम्मेलनके कुशल एणोनितेने यह निष्कर्ष किया कि अगर मखमली दस्ताने बचकर उमरी आदमें कथ करनेका समय आ गया है। भारतको सीख देनी थी। उसे सीधे युद्धकी वास्तविकतासे परिचित करना था।

कहा जाता है कि १९४३ के अंतिम वर्षमें समुक्त राष्ट्र के परराष्ट्र विभागका कारिस्थानकी सैनिक मरणा देनेके बारेमें सम्मेलन हो चुका था और वह इन बातों को ध्यान देनेके लिये एक अनुकूल अवसर दे रहा था, जिनमें 'सहयोगी जवाहरलाल नेहरू' को एक मन्त्र दिया जा सके। इनका अनुकूल अवसर खोया जा रहा था, जिनमें वह अपने अवरोधों नि सहानुभूति के समान समझकर सामान्य विरोधके परवाना प्राप्तकर्ता कर दें।

निश्चित रूपसे विचार यही था कि एशियामें सर्वप्रथम युद्ध-संक्रांति स्थिति उत्पन्न करके, पाकिस्तानको भारी सैनिक-सहायता देनेकी घोषणा कर दी जाय, ताकि उसका उपयोग काश्मीरमें हो सके और तब मेहरामें यह पूर्ण आय नि वे शिष्ट पक्षों 'स्वतन्त्रता के पुनर्जा' पक्ष करेंगे। उन्हें यह भी स्पष्ट लगाना था कि 'गहन चुनाव' करने पर वे भारी मुसीबतमें पड़ जायेंगे। अतः तब सामान्य कार्यक्रमका सम्बन्ध था, यह दीख रहा था कि बीजनाममें विद्यमान होनेवाली गम्भीर स्थिति शायद निष्पत्ति करण बन जाय।

पाकिस्तानी नेत्र, विरोध करने शुरू करके निरन्तर विद्रोही और सेनाके प्रधान सेनापति, जवरल अखुन सीधे यह विज्ञापन दिला दिया गया था कि अनुकूल अवसर अपने तक यह दुरावस्था में प्रदर्शित नहीं हो जायगी, बल्कि सैनिक सहायता शीघ्रतापूर्वक पहुँचाई जाने लगेगी। इस प्रकार गुप्तत्वमें पाकिस्तान उद्बोधनका कार्य करनेके लिये तैयार किया जा रहा था, जब कि इस नीतिके शिखर भारतको इस बातका तनिक भी भय नहीं था कि उसके विद्रोह का तैयारी हो रही है।

महत्वपूर्ण वर्ष

लेकिन इस योजनाकी सुरक्षादृष्टि मालूम पड़ने लगे थी। कहा जाता है कि पाकिस्तानसे जबरदस्ती बाहर निकाले जानेके कारण कर्तानिर्णय सरकार अग्रगण्य थी और उन्होंने मामूली तौरसे यह इरादा कर दिया था कि इस प्रकारकी कुछ कार्यवाही हो रही है। इसका पुष्टिकरण नहीं हुआ था और वॉरिंग्टन स्थिति भारतीय स्वायत्तता द्वारा दिल्लीको यह विस्वास दिलाया गया था कि यह सब गलत है। सीमाग्रसे उस समय बी. के. कृष्णामेनन अमेरिकामें ही थे। उन्होंने दिल्लीको पुष्टिकरणकी सूचना दी। पुरानी कड़ावतके अनुसार किल्ली बाहर आ गई थी, तथापि चूल्होंको भी मतर्क रहनेकी सूचना मिल चुकी थी।

नेहरू हमें झुनकर हटके बड़े नहीं बरन कोपित हुए। केवल बोके से "वॉरिंग्टन भर्षों"को छोड़कर जो कहते थे कि "भारतने यही मँगा था," समस्त भारतवासियोंके यही विचार थे। राष्ट्रीय दृष्टि अरचित परिचमोत्तरीय सीमाकी ओर घूम गई। मानसिक उलझनमें बुर हो गई। रायनैतिक विचारधारामें एक भारी भटका लगा।

सबसे पहले पाकिस्तानको एक मित्रतापूर्ण चेतनकी दी गई कि समुक्त राज्यसे सैनिक-सहायता स्वीकार करनेसे कारमीर तथा अन्य समस्याओंकी सपूर्ण वृष्टभूमि और सरभ बदल जायगा, जिनके आधार पर अब तक इस विषयमें विचार-विनिमय हो रहा था। यह घटना २३ दिसम्बर १९५३ की है।

एक महीनेके उपरान्त, २३ जनवरी १९५४ को भारतीय दृष्टिकोण कमिस पाटीके ५६ वें अधिवेशनके अवसरपर नेहरू द्वारा सभापतिके पदसे दिये जानेवाले भाषणमें अधिक स्पष्टतामें दिखलाई पड़ा। उन्होंने "देशकी ओर लक्षित बीरोन" का मुकाबला करनेके लिए "राष्ट्रीय एकरथ" स्थापित करनेकी माँग की। उन्होंने पाकिस्तानके सामने "युद्ध न करनेकी सधि रखनी"। समुक्त राज्य अमेरिकामें उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "भारत युद्धमें कोई भाग नहीं लेगा।"

फलस्वरूप समुक्त राज्यका पराष्ट्र विभाग अशांत हो उठा। उन्होंने अत्यंत योग्यतापूर्वक जिस भयादोहक रणनीतिकी रचना की थी, वह तत्क्षप्रष्ट हो चुकी थी। समारके सामने अब उनकी नाशमम्मी प्रगट हो गयी थी, लेकिन उसका प्रत्यावर्तन

हो सकता था। पाकिस्तानमें सहायताके लिये दबनगद होकर वे बहुत मागे बढ़ चुके थे।

एक महीने बाद २४ फरवरी १९४४ को राष्ट्रपति आइसन होवरने नेहरूको इन दुर्भाग्यपूर्ण निर्णयोंकी सूचना दी, तथापि उन्हें यह विश्वास दिलाया कि इन सैनिक-महाजत्ताका उद्देश भारतके विरुद्ध नहीं है। इन असंगत आश्वासनका उत्तर भारतीय प्रधानमंत्रीने १ मार्चको सरकारके सामने दिया। उन्होंने घोषणा की कि जो कदम उठाया जानेवाला है, उससे पाकिस्तानको भारतके विरुद्ध आक्रमण करनेका उल्लास और सहायता मिलेगी। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिकाके बीच एक गहरी खाई बनती जा रही थी। क्या वह कभी पाटी जा सकती थी ?

भारतीय नेतृत्वके सामने इन समय जो समस्या थी, वह कुछ इसी प्रकारकी थी। संयुक्त राज्यकी नीति द्वारा शीतयुद्ध इन उप-महाद्वीप तक आ चुका था। यदि उसे रोक न जाता तो वह एशियाके अंदर सर्वप्रथमका विस्तार करके एक सैनिक आवरपटनाऔर अवरणने ज्यादा बल देकर भारतीय आर्थिक विकासको नष्ट-भट कर सकता था।

अमेरिका द्वारा भारतकी मददके लिये विनी भी चेन्नमे आनेकी अर बहुत कम आशा थी। तटस्थता तथा सक्रिय तटस्थतामें अर अधिक स्वीकार्यता और निर्माणत्मक बनाना जरूरी था। पहलेकी तरह केवल सौदेबाजीके स्थानपर भारतको अब अपनी नीतिके मूल सिद्धान्तका समाजवादी दुनियामें लाभकारी संपर्क स्थापित करना जरूरी था।

स्वभावतः पाकिस्तानपर सबसे पहले ध्यान न दिया जा सका। इसी समय यह सूचना प्राप्त हुई कि पाकिस्तानी वीरोंको बख्तर उनकी सफल १ करोड़ मुपजित सैनिकों की आनेवाली है। ॥ करोड़ों जनसंख्यावाले देशोंके लिये यह सच्चा अतापी-रण बपसे बड़ी थी। और स्थल सेना बजनेका अर्थ एक ही होता था अर्थात् भारतके विरुद्ध अभिमान। क्योंकि उसकी सीमायें भारतको छोड़कर और किसी देशके निरुद्ध भेद्य नहीं थीं। दूसरे शब्दोंमें काश्मीर, पंजाब और राजस्थानको खतरा था। उस समय बंगाल सुरक्षित था, क्योंकि कर्चोंकी गणनामें पूर्वी पाकिस्तानकी सुरक्षा सम्भव न थी।

महत्वपूर्ण वर्ष

दोनों देशोंके क्षेत्रफलको देखते हुए यदि भारत भी किसी समानान्तर सेनाध्य निर्माण करता, तो उस सेनाका पाकिस्तानी फौजोंसे कमसे कम तिगुना होना जरूरी था। उस राष्ट्रके लिये, जो अपनी शक्ति शक्तिपूर्ण आर्थिक प्रगतिके लिये सरलित करना चाहता हो, यह विचार कल्पनासे परे थे। नेहरूने बुद्धिमत्तापूर्वक राजनैतिक विचारधाराले ऊपर आयुधोंकी दौलती कल्पना न करनेके लिये जोर डाला, क्योंकि इसने आर्थिक कठिनाई उपस्थित होनी और अंतमें केवल साम्राज्यवादो बुद्धनीतिके हितोंकी ही पूर्ति होनी।

इसके अनिश्चित समस्या इसकी निराशापूर्ण न थी जैसी कि मालूम पड़ रही थी। समयमें पूर्व ही सैनिक गठवधनका भेद सुलभ अमेिका, पाकिस्तानमें विद्यमान संपर्परी दोनों पक्षोंपर भारी प्रभाव पड़ना निश्चित था। पहली पूर्ण थी राष्ट्रमंडलका भाग समझे जानेवाले क्षेत्रमें समुच्चाराज्यीय प्रवेशको रोकनेके लिये ब्रिटिश अवरोध। यह अवरोध अनेक दुष्टित मागोंका आधार लेनेवाला था, लेकिन इसका निश्चित था कि सदन अमेरिकन पुष्टपोषित पाकिस्तान द्वारा भारतकी शक्तिभंग होना कभी पसंद नहीं करना, क्योंकि भारतका एक ब्रिटेनके प्रति मित्रतापूर्ण था और साथ ही साथ राष्ट्रमंडलीय भविष्यके लिये उसकी स्थिति बहुत महत्वपूर्ण थी।

पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान का अन्य राष्ट्रोंमें बढ़ना चाहिये पंजाब और बंगालमें बढ़ता संपर्प इसकी दूसरी पूर्ण थी और दिल्लीने इस ओर ध्यान दिया। पाकिस्तानमें बंगालियोंका बहुमत था, लेकिन शासनमें पंजाबियोंका प्रभुत्व था और वे ही अधिक शक्तिशाली थे। यहाँ भी समुक्त राज्य अमेरिकनकी सहायतासे विग्रह बढ़नेकी सम्भावना थी। व्यवहारिक राष्ट्रोंमें सहायताका अर्थ था, पंजाबी प्रधान पाकिस्तानी सेनाको अधिक शक्तिशाली बनाना, जिसे निरोध होकर सहन करनेके लिये पूर्वके पंजाबी तैयार नहीं थे।

यद्यपि ठम रामय यह विचारधारा इसकी स्पष्ट नहीं थी, वसी कि ऊपर बतलाई गई है, परन्तु भारत सरकारने इसका मौलिक सिद्धांत नयमक लिया था। इसके निरुद्ध प्रतिआक्रमण नियोजित किया गया। ब्रिटिश सरकारको यह बात स्पष्ट बनना

ही गई कि भारतको यह आशा है कि वह पाकिस्तानमें, होकर भिये जानेवाले संयुक्त-राज्यीय प्रयत्नों पर रोक रखेगा। इस कार्यमें असफल होनेका परिणाम भी ब्रिटेनमें समझ दिया गया। इसी बीच काश्मीरमें स्थितिमें अधिक सुन्दर किया गया। ६ फरवरीको जम्मू और काश्मीरकी विधानसभामें भारतमें स्थायी विलीनीकरण की घोषणा कर दी।

राष्ट्रपति मध्यस्थतामें निर्णय इस प्रकार उठाने पर पाकिस्तान पुनः तरह विगड़ा और बीसलाया, लेकिन इसमें परिणाम अभीको अच्छी तरह दिखलाई दे रहा था। भारत इस भयाहोइनके सामने मुश्किलोंके लिये तैयार नहीं था और आश्चर्यचकित पड़नेपर संयुक्त राज्यके परराष्ट्र विभाग द्वारा प्रभावित राष्ट्रसंघमें सहयोग करना अस्वीकार कर सकता था। आश्चर्यजनक बात यह थी कि पाकिस्तानमें दिये जानेवाले **॥** मदकेसे ब्रिटिश राजपरवाही भी पूरी समुद्र थी।

और उसके उपरान्त अनेक नई प्रवृत्तियों सामने आईं, जिनमें उदय संयुक्त-राज्य एवं पाकिस्तानके मध्य हुए सैनिक समझौतेमें ही हुआ, यद्यपि वे असमर्थित प्रतीत होती थीं। पुर्नगति और मराठीकी बलिबोध प्रश्न पुनः प्रश्नमें आ गया।

भारत सरकारने अच्छी तरह समझ लिया कि छोटे स्तर भी संयुक्त-राज्य अमेरिका द्वारा भयाहोइन और अशरीर उपस्थित करनेके लिये प्रयोगमें लाये जा सकते हैं। पुर्नगति तो वापिसटन पर लगभग आश्रित ही था। अतः तक मरामका प्रश्न था, वह भी बीननाम युद्धमें संयुक्त राज्यीय सहायताके प्रतिदान स्वरूप इस गंदे खेलकी खेलनेके लिये बाधित किया जा सकता था।

बहुत दूर तक नियंत्रित रखी जानेवाली मराठीकी बलिबोधके निवासियोंको आगे बढ़नेमें सक्षम मिल गया। २१ अक्टूबर १९४८ तक पाटीपेरी, राठोछल, चंदनगर, माहे, यनाममें प्राप्तीकी मूझा मुझा दिया गया। दिल्ली और पेरिसमें होनेवाले समझौतेके पत्रस्वरूप इनमें सहायिद शासन भारतके सुपुर्दे कर दिया गया, यद्यपि चंदनगर तो बहुत पदले ही भारतमें विलीन हो चुका था।

महत्वपूर्ण चर्चा

तथापि गोष्ठा, सम्मेलन, स्मू और दादरा नामक पुर्नगली बस्तियोंमें परिस्थिति अधिक उलझी हुई थी। पुर्नगली इन छोटे स्थानोंमें दोहनके निये तैयार नहीं थे और स्वाभाविक रूपमें भारत सरकार ऐसी समय पुलित्ग कर्मकाही करनेमें हिचक रही थी, जब कि सरकारी नीति शान्तिपूर्ण समझौतोंके पक्षमें हो।

इसी बीच अन्य घटनाओंने भारतके नये दृष्टिकोणमें सुप्रभाशित कर दिया। १९५४ में प्रारम्भिक भागमें चीननाममें मासीमी स्थिति सीजाने विगन्ने लगी। मुक्ति सूरों द्वारा दिक्ती पहुंचनेवाले समाचारोंने यह प्रगट हुआ कि संयुक्तराज्य अमेरिका मुक्ति आंदोलनका पामा पलटनेके लिये अणुशस्त्रोंको प्रस्तुत करके मासको इन बातपर विवश कर रहा है कि वह इन क्षेत्रोंमें अपना प्रभुत्व स्थापन करनेका सपना जारी रखे।

नेहरूने सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकारमें यह स्पष्ट कर दिया कि हम इनकी दुर्माहिक नीतियोंके निरुद्ध एशिया संगठित हो आयेगा और भारत तथा चीनको प्रयत्नोंके निराकरण हेतु आवश्यक कदम उठानेसे मसारकी कोई भी शक्ति नहीं रोक सकेगी। ब्रिटिश और फ्रान्सीसीमें प्रतिक्रिया हुई। उन्हें एशियाका अन्ध आनुभव था और इस कारण वे अणुशस्त्रों तरफ़ समझ गये कि हम प्रसारके समझौतेका क्या परिणाम हो सकता है और एक एक कदम करके २६ अप्रैल १९५४ को सुदृष्ट पूर्णकी समस्वापर विचार विमर्श करनेके लिये इन्डिया प्रसिद्ध जिनेवा सम्मेलनका आयोजन हुआ।

यह प्रयत्न राष्ट्रसंघके बाहर हुआ था और हम प्रसारकी अंतर्राष्ट्रीय बैठकमें जन-चीनने पहली बार भाग लिया। संयुक्त राज्य अमेरिकाने इस प्रस्तावका विरोध किया, लेकिन वे इस बैठककी आयोजनामें रुक न कर सके, क्योंकि यह समार व्याप्त शांतिकी आवश्यकताके अनुकूल प्रयत्न था।

इस सम्मेलनका आयोजन भारतीय कूटनीतिकी महान विजय थी, इनकी महान कि संयुक्त राज्य अमेरिकानी चालाकियों द्वारा उसे सम्मेलनमें होनेवाले वादविवादमें भाग लेनेसे वंचित किया गया। पूर्वशास्त्री तरफ़ हम अपमानकी नहीं पचाया

कोलंबो सम्मेलन

या सत्र। अतः भारत, हिंदीस्ता, मद्रा, पाकिस्तान और श्री लंकाके मध्य कोलंबो नामक स्थानपर एक बैठक करनेका आचार प्राप्त हुआ।

त्रिनेवा सम्मेलन आरम्भ होनेके २ दिन पश्चात् होनेवाली इस बैठकके अनेक प्रयोजन थे, जो अनेक रूपसे परस्पर जुड़े हुए थे। भारत, मद्रा और हिंदीस्ताके राष्ट्रिय सभाएं या और वे माध्यमवादी द्वाया और अतिमज्जुय सम्मन करनेके लिये एरिवायो एका स्थापित करनेमें सहान्तर करनेके इच्छुक थे। नहीं तब भी तद्वत् प्रन है, वह अपने अस्तिवत्ता ■ राज काने की इच्छा रखता था।

लेकिन पाकिस्तान द्वारा बैठकमें भाग लेनेका विरोध मजबूत था। निरुद्ध पाकिस्तानके नये प्रधान मंत्री मुहम्मदखलीफ़ विचार था कि वे अपने नये मित्र अर्थात् सदुक्त राज्यके पच्छिम विभागको उत्तेजित करनेका कार्य करेंगे। तथापि इस प्रकारकी स्वयं मजलीमें सम्मिलित होनेका वास्तविक कारण पूर्वी पाकिस्तानके सामान्य निर्वाचनोंका निष्कारपूर्ण परिणाम मान्य पड़ा है। सनहट पार्टी अर्थात् मुस्लिमलीगात अस्तित्व इस देशने तामग मिथ दावा मज था। उसके साथ पर एक नया अवरोधन युद्धदेह मज पार्टी शक्तिशाली हो गई थी, जो पाकिस्तानकी एकरूपी और विदेशी नीतिने प्रन नहीं थी। प्रधानमंत्री मुहम्मदखलीफ़ेकी अस्तिवत्तापूर्ण परिचित्ताने जाने सभी दाव गमाव नहीं कर देना चाहते थे।

कोलंबोमें मित्र मित्र राष्ट्रियवादी बीच गर्जे मित्र एरिवाके अलगअलग लोगोंके लिये तद्वत्ता और स्वयंभावी नीति निर्धारित कर डाली।

दरबिद्वारे दरम्यान उनका तामग उनका ही प्रकाशन हुआ, जिसका त्रिनेवा सम्मेलनका ही रहा था। यद्यपि पाकिस्तान और श्री लंकाके प्रतिनिधियोंके मुह स्वयंभावी बात कुछ अवरोधनी मालूम पड़ी थी, जब कि उन्होंने स्वयं जाने तो कुछ अवरोध तब अधनयुक्त बना दावा था, लेकिन अंतर्गत अपने एरिवा ऐसी अनेक विशेषताये उपस्थित करना चाहता था।

ऐसे जैसे कोलंबो शक्तिशाली विचार स्वयं जाने लगे, उपर्युक्त भाग, मद्रा और हिंदीस्ताके राष्ट्रिय सभाएं स्वयं होना दिखलाई पड़ा। लेकिन उन दिनों इस घटनाका महत्व और उसकी कार्यक्षमता पूरी तरह मूल्यांकन न हो सका।

महत्त्वपूर्ण चर्चा

जिनेवा सम्मेलनको विशेष रूपसे चीननामके प्रश्नपर अनेक उत्थान पतनोंका सामना करना पड़ा, लेकिन प्रगति सतत और निरन्तर रही। जब प्रश्नके प्रधानमंत्री लेनिनसहित, संयुक्तराज्य अमेरिकाकी महायुक्तता द्वारा शांतिपूर्ण सम्मेलनमें अग्रधन दालनेके उद्देश्यसे सम्मेलनके वृद्धिपारम विचार लिया, तब मास्को पियरे मैडेस प्रश्न नामक नये प्रधानमंत्रीको चुनकर जिनेवा भेज दिया। उन्होंने चीनके प्रधानमंत्री चू-एन-लीसे बातचीत की और इस प्रकार समझौतेका मार्ग खुल गया। ११ अगस्त तक एशियाके एक अन्य सन्नत भूभागपर लगभग आठ वर्षके युद्धके उपरान्त बंदूक त्यागी रूपसे मान कर दी गई।

लेकिन मगारकी अप्रकट विचारधारा संयुक्त राष्ट्रीय नीतिकी नपुनस्तथापर अभी अपना ध्यान केन्द्रित भी न कर पाई थी कि एक नये माटनीय परिवर्तनकी सूचना फैल गई। जिनेवामें सफलता प्राप्त करनेके उपरान्त अपने देशकी लौटते समय चू-एन-ली, जवाहरलाल नेहरूसे विचारविनिमय करनेके लिये वायुमार्गसे दिग्विधारे।

मानान्वयनवा होने एक महत्त्व घटना समझा जाता। क्या भारतने जन चीनके प्रश्नका राष्ट्रमण्डले समर्थन न दिया था? और क्या भारतने जिनेवा सम्मेलनमें व्याप्त मनभेदके कारणोंकी दृष्टि करनेमें सहयता न दी थी? क्या भारतने शान्तिके पक्षका जोरदार समर्थन न दिया था? और इसके अनिश्चित समर्थ विचारविनिमयके पश्चात् भारत और चीन द्वारा हस्ताक्षरित निश्चयविपरक संधि भी दोनों प्रधानमंत्रियोंकी बैठका कारण हो सकती थी।

लेकिन एशियाने इन तर्कों के बारेमें नहीं सोचा। ■■■ इस विचारसे ही आपत्तिन हो उठा कि एशियाकी दो हस्तियों आपसमें मिल रही थीं। अब इस बातकी पूरी आशा थी कि इन परस्पर द्वन्द्वके परिणाम स्वरूप साम्राज्यवाद अकेला पद जाग्रता और औपनिवेशिक बंधनोंमें मुक्ति पानेवाले आंदोलन जोर पकड़ने लगे। संसारकी १०० करोड़ जनसंख्याके प्रतिनिधियों द्वारा मिलकर मित्रताके बंधन अधिक दृढ़ करनेका प्रयत्न कोई साधारण बात न थी।

पंचशील की घोषणा

एशियाको निराशा होनेका कोई कारण न था। चू-एन-ली २५ जूनको दिल्ली आये और उनका एतना भारी आतिथ्य-सत्कार हुआ, जितना किसी विदेशी राजन्योतिष्ठका अब तक न हुआ था। और थोड़े समयके ही अन्दर पंचशीलके महान सिद्धांतोंकी घोषणा हुई। चीन और भारतने मिलकर सत्कारके सम्मेलन सह-आस्तित्वके पौष मौलिक सिद्धांतोंकी घोषणा की, जिसके आधार पर राष्ट्रोंने सहयोग और शांति स्थापित की जा सकती थी।

प्रत्येक ईमानदार तथा समझदार निष्कारणारके सम्मिलित स्थापित करनेवाले वे पौंच सिद्धांत क्या थे।

(१) परस्पर एक दूसरेकी सैत्रीय अखण्डता और सार्वभौमताका आदर
(२) अनन्याकर्मण (३) एक दूसरेकी आन्तरिक समस्याओंमें हस्तक्षेप न करना (४) समानता और परस्पर सहायता (५) शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व ।

हाला कि यह निरर्थक सिद्धांत अशक्त प्रतीत होते थे, लेकिन वर्तमान विस्फोटक परिस्थितिमें यही निरर्थक सिद्धांत सन्निध्यके पञ्चानक पथ प्रदर्शक बन गये। इस कारण इसमें कुछ आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि सभाज्यवादी शक्तियोंने इस घोषणाका उपहास किया। इसके अतिरिक्त वह कर ही क्या सकते थे! जो भूमे उनकी नहीं रही थी, उनका प्रवेश करनेकी वैधता अब वे किस प्रकार प्रमाणित कर सकते थे।

शांति जनताके लिये " पंचशीलका सिद्धांत " औरनिवेदिता कथनोंसे मुक्ति पानेका सिद्धांत था। जिन्हें युद्धका रस था, उनके लिये यह शान्ति सपना करनेका एक साधन था और साथ ही सामान्यतम नागरिकोंको शान्तिपूर्ण प्रगतिके लग्न दिशानेका आश्वासन देता था।

अब तक सह अस्तित्वकी सभाज्यवादी समझने अपनी नीतिगत मौलिक तत्व घोषित कर रखी थी। कुछ लोग सभाज्यवादी समर्थ दिखलानेके लिये इस सिद्धांतको कथनके रूपमें प्रस्तुत करते थे, लेकिन अब वह सिद्धांत अत्यन्त-वास्तविक होकर विश्वको बहु संस्थाक जनप्रत्यक्ष मिलन-बिंदु हो गया।

महत्त्वपूर्ण वर्ष

भारत और चीनने इन पाँच सिद्धांतोंके आधारपर अपने सम्बंध कायम करके सहस्रास्तित्वको स्थान प्रदान किया। जैसा कि सर्व विदित है, इन सिद्धांतोंका प्रथम बार प्रयोग तिब्बत विपयक संधिमें हुआ। अब इन दोनों देशोंके बीच सभी प्रकारके सम्बंधोंका आधार बन जानेपर उन्होंने मास्तुनिक व्यापारिक संपर्क तथा एक दूसरेके हस्तिशेखोंको सम्ममनेका पथ प्रशस्त कर लिया।

भारत और चीनने हम यलका प्रण किया कि वे एक दूसरेमें शिक्षा ग्रहण करेंगे और समारके नामने ऐसा उद्घरण प्रस्तुत करेंगे, जिनका अनुकरण वे आत्मानोंसे कर सकें। भ्रमाने भी हमी प्रसारकी घोषणापर हस्ताक्षर कर दिये और तत्काल ही एशिया तथा अफ्रीकाई देशोंका एक सम्मेलन बुलाने पर गंभीरताके साथ विचार होने लगा। पंचशील ही उनको एक स्थान पर खींचकर लानेवाला चुंबक हो सकता था और इसीके द्वारा जाति, रंग, धर्म, विचार, राजनैतिक व्यवस्थामें अंतर होनेके बावजूद भी शांति हेतु मित्रता मुक्त की जा सकती थी। नवोदित राष्ट्रोंकी अपनी इनलि और स्वतन्त्रताको सुरक्षित करनेके लिये वास्तविक शान्तिकी आवश्यकता थी।

पंचशीलका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये १५ अक्टूबरको नेहरू दक्षिण - पूर्वी एशिया तथा चीन-भ्रमणके लिये निकल पड़े। उनकी इस यात्राका परिणाम विमूर्त और गंभीर होता निश्चित था। भारत और चीनके बीच बन्दते हुए मित्रनारण सम्बंध ही वह केन्द्र बिन्दु थे, जिनको आधार बनाकर एशियायी एकता और सौमन्यताका सघीयकरण हो सकता था। नेहरूजी चीन यात्रा और यहाँकी मित्रता और प्रेम प्रदर्शनेने एशियायी इतिहासमें एक नया अध्याय जोड़ दिया।

बर्तान कोलको राक्षिर्बेहि हिन्देशियाकै बोगर नामक स्थानपर मिली। उन्होंने एम्बन होकर यह निश्चय किया कि एशिया अफ्रीकाई देशोंका एक सम्मेलन बुलाया जाय, जिसमें जन चीन भी उपस्थित हो। राजनैतिक घटनाओंका सामान्य दृष्टा हम घोषणाका केवल एक ही अर्थ निकाल सकता था अर्थात् उपनिवेशवादका अन्त, साम्राज्यवादकी रहित राक्षिजा अन्त, उम युगका अन्त जिसमें स्वतन्त्रप्रभु एशिया और अफ्रीका वासियोंको शुन्यम बनाकर परिपुष्ट हुए थे।

अन्तर्गतों हमारे सम्मिलित करना स्वाभाविक था। उस समस्त महाद्वीप पर अपना नियंत्रण बनाये रखनेके लिये साम्राज्यवादी सचियों द्वारा वृत्तमन्त्र साधन आनाते जा रहे थे। एतिया उनके हाथोंमें निम्नता जा रहा था और इस कारण अन्तर्गतों अपना आधिपत्य कायम रखनेके लिये उन्होंने कोई साधन न छोड़ा।

प्राचीनियोंने उसी अन्तर्गत सानियोंका फलस्वरूप निम्न। ब्रिटेनवासियोंने केनियाके मूल निवासियोंको जीवन-शुक्ति देनी शुरू कर दी। अमेरिकीोंने, जिन्होंने इन्हीं तरीकोंमें अपना राज्य स्थापित किया था, पश्चिमी एशियाके तैलक्षेत्रमें राजशेख और हत्याके कारण प्रविष्ट होनेका प्रयत्न किया।

बालविक्रम यह भी कि अन्तर्गतों जहाँ कहीं स्वेच्छासे प्रभाव था, ईश्वरके प्रतिनिधियोंके हाथों उन्होंने वहाँ चलकर इन प्रचारके जीवन ज्ञानका उपदेश दिया जिसमें तीन समीपले अपने मौलिक अधिकारोंसे भी वंचित रह जाये। एशिया और अन्तर्गतोंके अन्तर्गत निम्न होनेकी बात समझनेके लिये किसी गहन अध्ययनकी आवश्यकता नहीं है।

१९५४ में समस्त भारतमें ब्रिटिश विरोधी विचार पनप रहे थे और वही विचार समस्त औपनिवेशिक समारमें अनेक रूपोंसे नवीन स्वतंत्र भावनाओंको सृजित करनेका नेतृत्व कर रहे थे। ये भावनाएँ, हमारे विचारों और कार्यों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती थीं। दूसरे भन्दाओंमें, पाकिस्तान तथा अन्यत्र होनेवाले साम्राज्यवादी पक्षियोंने उत्पन्न निराशाके परिणाम स्वरूप देश-भक्तिमें परिपूर्ण राष्ट्रीय भावनाओंकी सहायता लगी और उसने उन मौलियोंको जन प्रिय बना दिया, जिनसे भारत अपने पैरोंपर खड़े होकर भविष्यमें भयादोहन और दगावके नये प्रश्नोंसे अपनी रक्षा कर सकता था।

प्रथम बार भारत सरकार साम्राज्यवादी दुनियासे व्यापार करनेकी सम्भावना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी, जिस व्यापारका अर्थ अपनी अर्थव्यवस्थामें सुधार करना था। ऐसे सबबोंके लिये इसने अच्छा कौन-सा समय हो सकता था।

महत्त्वपूर्ण घर्ष

सोवियत सभ्यते में मलेनकोवकी नीतिरी आलोचना होने ही लगी थी। उन्होंने भारी औद्योगिक उत्पादनके स्थानपर उपभोक्ता वस्तुओंके उत्पादन पर जोर डाला था। यह ऐसी नीति थी जो लागू होनेके उपरान्त सोवियत सभ्य द्वारा अविश्वसित देशों और विशेष रूपसे जन चीनसे सहायता देनेकी समझा कम कर देनी। सोवियत आदेशाओं तर्क कर रहे थे कि विदेशोंके औद्योगिक उपकरणों की आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये और सोवियत वस्तुओंके जीवनस्तरको अधिक ऊँचा उठानेके लिये आवश्यकता है कि औद्योगिक विस्तार किया जाय न कि उसे कम किया जाय।

कुलमानिन और लुत्चेवके चीन यात्राके लौटनेके परिणाम स्वरूप वादविवाद उत्कर्ष शिखरपर पहुँच गये। वहाँकी औद्योगिक उपकरणोंकी तत्कालीन आवश्यकता तथा 'परिधिगत ज्ञान' ने उनके ऊपर भारी प्रभाव डाला था। यह स्पष्ट था कि चीनकी आवश्यकताओंको पूरा करना पड़ना। सोवियत सभ्यके दृष्टिकोणमें आनेवाले परिवर्तनके सभी चिन्ह १९५४ के अन्तिम दिनोंमें स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे थे।

फरवरी १९५५ तक मलेनकोवने गुप्तपत्रिकाके लिये जगह कर दी। अर्थ-शास्त्रियोंने इन परिवर्तनोंका ठीक ही विवेचन किया था कि यह सोवियत सभ्यता अविश्वसित देशोंसे परस्पर लाभगी शर्तोंपर सहायता देनेके मद्दान प्रयत्नोंका प्रारम्भ है। यह वह नीति थी, जिसने अमेरिका अनिश्चयने पन आता।

सोवियत सभ्यते एक हस्तगत धनानेकी मशीन प्राप्त करनेके बारेमें भारतने प्राथमिक प्रयत्न तो पहले ही कर लिये थे। इस बदलता भारी विरोध हुआ था। देशके प्रमुख व्यापारियोंकी समझवादी दुनियासे व्यापार करनेके परिणाम समझते देर न लगी। विद्युत शक्तिमें विद्वत् छिट्छिट्छ इत्यादि निर्माणोंके पास सीधा पठानेके लिये पहुँचे। जिन्होंने पहले किसी प्रकारकी सहायता देना अस्वीकार कर दिया था, अब वे तैयार थे। लेकिन भारत सरकार तैयार नहीं थी, हालांकि डॉ. टी. कृष्णामाचारी जैसी कुछ सदस्योंने विद्वत्वाले सीदेको स्वीकार न करनेकी स्थितिमें त्यागपत्र देनेकी धमकी दे दी थी।

नेहरूके बड़े समर्थक योग्य आधुनिक वादी एपी अइय्यर किरवर्देने इन परिस्थितिमें निकलनेका रास्ता यह रोज करके देखा निगला, कि सरकारको अपनी

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

१९४८ में जोड़ित औद्योगिक नीति का फलन करना चाहिये। बहुत बलसे मुलायमे इस कानूनको प्रचलित किया गया। इसका सार्वजनिक क्षेत्र की वस्तु बलाई गई। यह नया हुआ कि इस दिशा में की जाने वाली प्रगतिके लिए सरकार उत्तरदायी है। छोटे देशने इस पुनः प्रचलित औद्योगिक नीति का भारी समर्थन दिया और फलन गम्भीरता पूर्वक आर्थिक समस्याएँ विचार करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

पिछले कुछ दिनोंमें कई विदेशी कार्यकारी भारतीय संगठनों से सहायता के पी सी सहानुभूतिके निर्देशनोंमें द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर विचार विनिमय करनेमें व्यस्त थे। वे लोग सुकु राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस और पोर्तुगलमें जाये थे। यह एक असीब टीम थी। इनके सहस्य पूर्वाचारी और समझवादी दोनों हुनियाने जाने थे, लेकिन वे इस धारणामें एहममत थे कि केवल कुशलतापूर्वक तैयार की हुई पैमाने-विनाश योजना ही भारतको दक्षिण में ऊपर उठ सक्ती है।

उनका कार्य अद्वितीय था। उन्हें एक ऐसी योजना मिली थी, जिसमें राज्य नियंत्रित तीव्र आर्थिक प्रगतिके साथ ही साथ भारतीय निजी व्यापार और उद्योगोंके हितोंकी रक्षा हो सके। आर्थिक योजनाओंके श्रेयोभालाने भारतीय वर्गोंके पक्ष में अन्धनय यह विशेष रूप व्यक्तित्व गया था।

सोवियत संघके इसान वास्तविक के प्रभाव और रूसीअहमद निद्वर्तके सार्वजनिक क्षेत्रके जोरदार समर्थनमें विवर्तित होनेवाली आर्थिक प्रगतियोंके कारण यह कार्य अधिक सरल हो गया। वास्तवमें भारतीय भारी क्षति सब हुई जब कि २४ अक्टूबर १९४४ को अचानक इस समझौते का अन्तिम शरीर त्याग दिया। नेहरू अभी चीनमें ही थे। उन्होंने ऐसे अक्षिणवासी प्रचारकों को दिया, जो उनके भारत लौटनेके ठगान बहमूय स्थापित होना।

भारत लौटकर चीनकी प्रगतिमें प्रभावित प्रचनमयी नेहरूने यह निर्णय किया कि देशके सामने समाजवादी गठन का लक्ष्य उपस्थित करनेका समय आ गया है। वे व्यापारिक क्षेत्रोंमें व्यापक मण्डल पान देकर उन्हें निरन्तर भी दिलाया था। वे इरादा रख पढ़ावते थे। लेकिन भारतीय वास्तविकोंके साथ

महत्त्वपूर्ण धर्म

यह बात नहीं थी। उन्होंने प्रजातांत्रिक मामलों में "रंग, गाने-झुंझ" समीक्षारी समाज में प्रतिष्ठित करने विषयक २१ दिसम्बर की सरकारी घोषणा में "पाण्ड" कह कर मजबूत उद्घाटन।

लेकिन यदि साम्राज्यवादी नीतियों में बढ़ते हुए मनभेदों के उपरान्त कैंपेसी आर्थिक विचारधारामें होनेवाले परिवर्तनों पर ध्यान दिया जाता, तो उनके बावें उनमें अनपूरण और दम्पूर्ण प्रतीत होते। "सहकारी समानदर्शन," "मिश्रित धर्म-व्यवस्था" और "कल्याणकारी राज्य" के स्थान पर कैंपेसी का अब "समाजवादी" शब्दा प्रयोग करने लगे थे। जो अब तक पूँजीजीवियों के अधिकारम अनादिन शब्द था।

यद्यपि 'समाजवाद' में कैंपेसी का तात्पर्य उस समाज में नहीं था, जिसके लिये साम्यवादी पार्टी ने अपने को समर्पित कर रखा था, न इसका अर्थ मजदूरों के जनतंत्र की स्थापना थी। इरादा यह था कि इन प्रकारके मिश्रित समाज का निर्माण जिसमें परस्पर विरोधी विचारों और व्यवहारों का मिश्रण हो सके। लेकिन नये नारे को 'पाण्ड' का सजा देकर उसका मजबूत उद्घाटन एक महती भूल थी। कैंपेसी विचारधारा की यह नई प्रगति थी, एनी प्रगति जिसके परिणाम स्वरूप देश में अधिक परिवर्तन निश्चित थे।

१९२५ के आरम्भ में भारत में जनता का ध्यान दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं की ओर केन्द्रित था। आगे के चुनाव तथा अगली में कैंपेसी पार्टी का साठवा अधिवेशन। अपने अधिकार क्षेत्र में दोनों बातें महत्त्वपूर्ण और परस्पर सम्बन्धित थीं।

नव निर्मित आर प्रदेश में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के अन्दर कैंपेसी का सामना साम्यवादी पार्टी ने था। यह एक महत्त्वपूर्ण बात थी। भारतीय साम्यवादी पार्टी विश्वासपूर्वक अपनी विजय की भविष्यवाणी कर रही थी और उसके आत्म-विश्वास के विपक्ष बाधों की शिबिरों में निराशा व्याप्त थी।

इन दोनों में अगली अधिवेशन पड़ने हुआ। पार्टी ने आरबर्चजनक एकता के साथ अपना आदर्श 'समाजवादी दण्डन समुदाय' निर्धारित किया। यूगोस्लेविया के

राष्ट्रपक्षने अतिथि रूपसे हममें भाग लिया था। यह सच है कि 'समाजवाद' समाजवादी बना दिया गया था। यह भी सच है कि 'इंग्लिश समुदाय' सुहावरेका प्रयोग हुआ था। समाजवादके परिचित श्रुतियों नये नारेको भी विरोधका साधन बनाया और यह भी सच है कि भारतीय समाजवाद और अन्य प्रकारके समाजवादोंमें अन्तर दिखानेके भारी प्रयत्न किये गये। यह सब बातें तथा इसके अतिरिक्त भी अनेक दन्तोंसे इस सन्दर्भ की उल्लेखनाके बारेमें सुदेह दिखलानेकी रत्ती जा सकती है। तथापि कुछ ही समाजिक अन्तर सभी सम्बन्धपर, रीतिशैली और अन्य प्रचारामक साधन इस समाजवादी ढंगका बराबर गये।

सन्तत देशके नरनारी उन पुष्पोंमें समाजवादके बारेमें पढ़ने लगे, जिन्हें किसी भी साम्यवादीका अनुमोदन मिल जाता। मरकान बर्मचारों भी अब समाजवादी साहित्य पढ़ सकते थे। ऐसा करि पूर्ण अन्तर्गत समस्त गुप्तचर विभागका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता और इन प्रकार भारतके अनेक प्रकारसे समाजवादपर विचार करना प्रारम्भ कर दिया।

आम्रमें कांग्रेसके चुनाव प्रचारने जोर पकड़ा। नेहरोने बहोपर दौरा किया। उन्होंने लोगोंको बतलाया कि उन्होंने भारतीय गहरी जमी हुई साम्यवाद-विरोधी परम्पराओंपर आधारित एक ऐसी विदेशी नीति दी है, जिसका सभी जगह आदेश होगा है। उन्होंने बतलाया कि यह बड़ी नीति है जिसके बारेमें साम्यवादी विचारवादी करते थे कि मैं उनका ईमानदारीसे पालन नहीं करूँगा। क्या मैंने उनकी मिथ्या-चारण्यको प्रमाणित नहीं कर दिया है?

यह सम्प्राप्तिके बारेमें उन्होंने असादी अधिवेशनका महत्व लोगोंको समझाया। उन्होंने अपने समाजवादी विचारोंके बारेमें होनेवाले साम्यवादियोंके उपहासका जिक्र किया। वे बहने लगे कि इसी प्रकारकी बातें वे लोग उनकी विदेशी नीतिके बारेमें किया करते थे। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों को कुछ कर दिखाया, बड़ी बड़ श्रद्धासे कर दानेगे। वे अपना वाक्य पूरा करेंगे। इसके बाद उन्होंने प्रतिज्ञा की कि उनकी सरकार भारतमें दस वर्षके अन्तर समाजवादको प्रतिष्ठित कर देगी।

महत्त्वपूर्ण वर्ष

इसकी प्रतिक्रिया लक्ष्यल हुई। उनका प्रचार जोर पकड़ने लगा। 'प्रवर्त' के सप्ताहरीय लेखोंका भी यह प्रमाणित करनेके लिये कांग्रेसने उपयोग किया कि भारतीय साम्यवादी प्रेमलियमे दो बंदम आगे बढ गये हैं और हम प्रचार बंदी कुशलतापूर्वक, मध्यमवर्गको भी अपने पक्षमें कर लिया। जनमें जब चुनाव हुए तो कांग्रेस साम्यवादी पार्टीको उन्हींके सुन्द नदमें धुरी तरह हराकर बिजयी बनी।

मरकरी चैनेमि बडा आनन्दोन्मत्त मनाया गया, लेकिन एक बातकी उपेक्षा न की जा सकी। साम्यवादियोंको कुल मन्गोके २० प्रतिशतमें अधिक मत प्राप्त हुए थे। यदि कांग्रेसके विरुद्ध १० प्रतिशत मत और बढ जाते तो परिणाम इसके बिल्कुल विपरीत होता अर्थात् साम्यवादी आश्रम निर्माण हो गया होता। यह एक ऐसा बडा था, जो भारतीय पूँजीजीवियोंको बाई और चलावनेके लिये तब तक बाधित कर सकता था, जब तक कि प्रजातान्त्रिक ढंगमें मतदान सम्भव बना रहे। भारत छोड़ो रिड्डे देशमें आर्थिक समस्याओंको मुलमानेके लिये इसमें अधिक अन्धा मोक्ष और दोष-सा हो सकता था, क्योंकि न तो उन्हें टाला जा सकता था और न सामाजिक निष्ठियोंकी बाढ देखी जा सकती थी।

कांग्रेसके इतिहासमें अवादी अतिवेशनको सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण युगततर बिन्दु बतलाना कोई अनिरायोक्ति नहीं है। पूर्वकालमें कांग्रेसके अंदर विद्यमान अनेक वामपंथी गुटोंके निरंतर दबावके परिणाम स्वरूप समाजवादी उपचार मुम्तया गया था। १९५५ तक कांग्रेसके अंदर ऐसा कोई गुट शेष न रह गया था, तथापि केवल उन्मूलनवादी विचारधाराने ही नहीं, बल्कि वामपंथी विचारधाराने भी प्रधानता प्राप्त कर ली।

यह परिवर्तन किम प्रकार हुआ? हम पहले देख चुके हैं कि अखिल भारतीय पूँजीजीवियों और चेजीव मध्यम वर्गीय पूँजीजीवियोंके हितोंका वैषम्य किस प्रकार लगातार बढ रहा था। हम देशकी आर्थिक पुनर्वचनाकी पृष्ठभूमिमें कार्यरत आर्थिक प्रतिक्रिया भी देख चुके हैं, जिनका जन्म मध्यम वर्गीय पूँजीजीवियोंकी वर्गीय आवश्यकताओंमें हुआ था। और हम यह भी देख चुके हैं कि किम प्रकार साम्यवादी

नीतिज्ञ विरोध जिसे ज़िम्मे सामने आना पड़ा, वैसे ही वैसे इन सभी प्रवृत्तियों और प्रति प्रवृत्तियों परस्पर एक दूसरे पर अपना प्रभाव डाला ।

अबारी अधिवेशनके परवान मध्यम पूँजीजीवियोंके विचारोंको प्रधानता प्राप्त होना प्रारम्भ हुई । उन्होंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया कि यदि क्रॉसम जनतामें अरना नेतृत्व बरकरार रखना चाहती है, तो इसको एक मात्र आशा समाजवादी उपचार ही है । उन्होंने भारतीय समाजवादके तथ्यान्वित प्रयासात्मिक अंगको केवल इसी कारण रेखांकित किया कि जिसने बड़े व्यापारिक हितोंको ही नहीं बरन मध्यम वर्गके व्यापारिक हितोंको भी विराम प्राप्त हो सके, क्योंकि वे भी निजी लाभके क्षेत्रमें राज्य हस्तक्षेपकी राहचले करने थे ।

लेकिन उस क्षण इस महत्वपूर्ण तत्त्वको आपसीसे भुला दिया गया कि " समाजवादी " राज्य को पूँजीजीवियोंकी प्रधान आर्थिकगति पर रोक लगानेका ही साधन है, जिसके परिणाम स्वरूप उन दिशाओंमें प्रगति करनेमें सहायता मिलेगी जिसने मध्यम पूँजीजीवियोंका भला हो सके ।

वर्तमान प्रयत्न इतने मर्मन्तापूर्ण हैं कि इस बातका आश्वासन दिलाया जाता है कि सार्वजनिक क्षेत्रका प्रवेश केवल उन्हीं दिशाओंमें होगा, जहाँ निजी प्रयत्नोंने महत्वपूर्ण परिवर्तन होनेकी सम्भावना न हो । इसका अर्थ हुआ कि भारी उद्योगोंकी उनही राज्य अपने हाथमें ले लेगा । यहो यह क्षेत्र है जिसे बड़े पूँजीजीवी स्वयं नियंत्रित करना पसन्द करते ।

इस दिशाकी ओर अग्रसर होनेमें सन्देह आवश्यक है । दर भी है । यह संक्रमणके ही तत्त्व हैं, विरोध हमने जब कि पूँजीजीवियोंका एक गुट समाजवादके साथ कीड़ा कर रहा हो और ■■■ समय तक अपनेही हितके कारण उनके बारेमें पूर्ण स्मरण ईमानदारी बरतना चाहता हो । केवल नेत्रहीन व्यक्ति ही सरकसकी सजा देकर अवासीकी उपेक्षा कर सकता है ।

इस नये दृष्टिकोणका प्रभाव अब तक न सुनमाये जा सकनेवाले भूमि विषयक प्रश्नपर अत्यधिक पड़ेगा । साम्यवादकी जर्मनीकीये वैधानिक रूपसे सम्प्राप्त किया जा

महत्त्वपूर्ण घर्ष

रहा है, लेकिन निरंतर बढ़ते औद्योगीकरणके समय जमींदारोंकी पकड़का किस प्रकार सामना किया जाए, बोम्बेके नेता इसे टालनेका नितना ही प्रयत्न करें, लेकिन इस समस्याकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उद्योग और कृषि एक दूसरेके पूरक होने ही चाहिये, अन्यथा आर्थिक सर्वनाश अवश्यभावी है। अवांछी समाजवादकी यह बात गाढ़ बांध लेनी चाहिये। लेकिन इनके सम्बन्धमें आगे, अन्यत्र बतलायेंगे।

इस हम अन्य सामाज्यिक घटनाओंकी ओर प्यान देते हैं, जिसका विवरण अधिकतर लोगोंको मालूम है। १८ अप्रैल १९११ को एशिया और अफ्रीकाके प्रतिनिधि हिन्देशियाके बाडुंग नामक स्थानपर एक सम्मेलनमें उपस्थित हुए। वे सामाज्यवाद प्रेरित एक दूरांत हत्याकी छायामें मिले। चीनी तथा अन्य प्रतिनिधियोंको ले जानेवाला काश्मीर 'प्रिन्स' नामक एयर इंडिया इंटर नेशनल वायुयान आगबो लपटोंने घिरा हुआ प्रशांत महासागरमें डूब गया। यह अंतर्ध्वंस-कार्य, किरायेके दुराभिकर्ताने किया था।

तथापि इस गम्भीर दुःखद घटनाने बाडुंग सम्मेलनके महत्त्वको द्विगुणित करने-वाही कार्य किया और यह भी बतलाया कि साम्राज्यवादके भविष्योपर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। इतिहासमें प्रथम बार एशिया और अफ्रीकाके दो महाद्वीप, हम ज्ञानके साथ कि उनके पास उपनिवेशवादों रोगको मसाम करनेकी शक्ति है, कार्य-क्रमकी एक सामाज्य योजना बनानेके लिये मिले।

चीन और भारतके मध्य जो दर मित्रता और अवरोध उस समय विद्यमान था, उसके बिना इस प्रकारका सम्मेलन कदापि सम्भव नहीं हो जाता। एशिया-अफ्रीका एकताकी धुरी यही थी। पश्चिमने इस धुरीको नष्ट करनेका प्रयत्न अकारण नहीं किया था। जिस वायुयानमें यू-एन-सीकी यात्री सूचना थी, उस वायुयानको अंतर्ध्वंस करनेके बलके परचात, उन्होंने सम्मेलनका अंतर्ध्वंस करनेका प्रयत्न किया।

संयुक्त राज्यके परराष्ट्र विभागने प्रयोगक अधिकारियोंके रूपमें पाकिस्तानके मुहम्मदअली और धी लघके कोटलावालाको चुना। उनके पीछे फिलिपाइन, बार्बोनेड और ईराक़रूपी इलाके पर नाबनेवाली छद्मप्राप्तियों खड़ी की गईं। तथाकथित स्वतंत्र सरकारके इस विचित्र प्रतिनिधि-दलने एक मुंड होकर सम्मेलनको प्स्त करनेके लिये साम्यवाद-विरोधी परिचित कूट युक्तियोंका प्रयोग किया।

कोटलावाताने इस बात पर जोर डाला कि सभी साम्यवादी सरकारों में मास्को का उपयोग समझना चाहिये, और इसका शक्तिपूर्ण विरोध प्रदर्शन बांडुंग में होना चाहिये। यही वह बात थी जिसके द्वारा संयुक्त-राज्य के परराष्ट्र विभाग में यह आशा की गयी कि विशेष रूप से अपने निरंकुश समाज में वामपंथी शक्तियों के प्रवेश से भयभीत सार्वभौम तथा धर्ममानी राज्य के प्रतिनिधियों में मतभेद और गड़बड़ पैदा होने के साथ ही नेहरू भी उलफन में पड़ जायेंगे और फलस्वरूप भारत-चीन धुरी निर्वल पड़ सकती है।

यह अभिलाषित विचारण थी। ऐसी कोई बात नहीं हुई। नेहरू और जू-एन-ली की राजनीतिज्ञान से सम्मेलन की रक्षा कर ली। जिन चीजों में कुछ आशा नहीं थी, उन्होंने भी बुद्धिमानों से काम लिया। सद-आस्तिस्त्व के पाँच सिद्धांतों के आधार पर दस सूत्री अधिक विवरणान्वित घोषणापत्र प्रकाशित हुआ। यह एक मजबूत पात्र हो गया। वस्तुतः जनार्दन के इस प्रयत्न का प्रभाव उत्तम-उत्तम-उत्तम पर पड़ा। समस्त संसार में लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर यह देखा कि विभिन्न सिद्धांत और राजनैतिक व्यवस्था-वाले राष्ट्र एक स्थान पर एकत्रित हुए, उन्होंने गरमागरम और लक्ष्मण अपराधनुष बुराद-बिबाद किया और अपने-अपने सिद्धांतों के एक ऐसे घोषणापत्र पर सहमत हो गये, जिसने शांतिपूर्ण दृष्टिकोण और शांतिपूर्ण सम्बन्धान का आरंभ करने में सहायता दी।

पचशीस अथ २० राष्ट्रों ने मान लिया। यह स्वरूप में सत्ताहीन लाभ था। अब तक एकता में पड़े हुए लोगों के लिये, यह पुल के समान था। यह दोनों महा-द्वीपों की अधिक निकट स्पर्श में आया। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि अब सामान्यवाद उनके साथ घाटी घाटी में बह बह रहा था। और सबके व्यवहार नहीं कर सकता था। उसे संपूर्ण एशिया और अफ्रीका के प्रति उत्साहवादी होना पड़ेगा।

अनर्दिष्ट आवश्यक विद्यमान थे। बांडुंग सम्मेलन में भाग लेनेवाले अनेक सदस्य युद्धकालिक दक्षिणपूर्वी एशिया सभिसंघटन के सदस्य थे, जिसका लक्ष्य चीन की सार्व-भौमता और स्वतंत्रता थी और जिसका समय से संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था। अन्य लोगों की सक्रिय अभिकल्पना वर्षपूर्व में सीओसी की प्रतिवृत्ति नगदाद सभ में थी। जिसकी रचना ब्रिटेन की थी तथा जिने संयुक्त राज्य अमेरिका का आशीर्वाद प्राप्त था। उसमें सम्मिलित अधिकतर सदस्य राष्ट्र नानमन के स्वतंत्र थे, लेकिन वास्तव में वे संसार की एक या दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति पर आश्रित थे।

महत्त्वपूर्ण वर्ष

लेकिन यह सम्मलेनके लिये किसी अगुआईकी आवश्यकता नहीं थी कि बाङ्गाला अनुभव और भावना धीरे धीरे इन पारस्परिक विरोधोंका समाधान कर डालेगी और अफ्रीका और एशियावासियोंको समानरूपसे उन श्रुतनाओंको तोड़नेके अवसर प्रदान करेगी, जिनके द्वारा वह आज तक पश्चिमी स्वामियोंमें बँधे हुए थे।

औरनिवेशिक मुक्ति प्राप्त करनेके प्रयत्नोंका वेदस्थान बने अफ्रीकाके सम्बंधमें यह बात विरोध रूपसे सत्य थी। वहाँ पर साम्राज्यवाद अपना मृत्युपरा कायम रखनेके लिये हठपूर्वक सड़ रहा था। इस बातके चिन्ह स्पष्ट दीप्त रहे थे कि यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकती। क्या बाङ्गालमें यह तय नहीं हो गया था कि एशिया और अफ्रीकाका दूसरा सम्मेलन अफ्रीकाकी भूमिपर होगा? यह बड़ निर्णय था, जिनमें एक चेतावनी सन्निहित थी।

अफ्रीका—यही वह स्थान था जहाँ बीसवीं शताब्दीके द्वितीय अर्धशताब्दी कहानी लिखी जानेवाली थी। राष्ट्रसंघ द्वारा १९५४ में प्रकाशित डेमोग्रेफिक ह्वर बुकने अनुसार अफ्रीकामें केवल पाँच प्रदेश स्वराजित थे, अर्थात्—मिश्र, एथोपिया, ऐंगोला, लाइबेरिया, लीबिया और दक्षिण अफ्रीका सब। शेष अफ्रीकामें जहाँभी जनसंख्या कुलकी ६१० थी, स्वराजित नहीं था। अफ्रीकाके एक प्रदेशको "बेलजियम" अधिकृत, २१ प्रदेशको "फ्रांस" अधिकृत, ५ को "पुर्तगाल" अधिकृत और २० को "ब्रिटिश" अधिकृत अनुमूर्चित किया गया था। इन मूल घोषणाका वस्तुतः अर्थ यह था कि अफ्रीकामें लगभग २० करोड़ मुस्लाम उन पश्चिमी राष्ट्रोंकी निजी संपत्ति थे, जो हमेशा 'स्वतंत्र जनता' और 'स्वतंत्र' सत्तारकी बात करते रहते हैं।

यदि पश्चिमके साम्राज्य निर्माता यह सोचते थे कि अफ्रीकाको कायम रखा जा सकता है, तो वे बाङ्गाल सम्मेलनके नाम लेते ही बँपनेके अनिरेक और कर भी क्या सकते थे? उन्हें फ़ाया था कि एशियामें मित्रता स्थापित करनेवाले अफ्रीकाको और उन्हें ध्यान देना पड़ेगा। यही अनुभव था जिसने शीत युद्धको स्थितिको समाप्त करनेवाली शक्तियोंको यति दे दी।

जो लोग ससारके परिवर्तनोंके सम्बन्धमें यही धारणा रखना चाहते हैं कि वे अमर्यादित वैयक्तिक शक्तियोंके परिणाम स्वरूप होती हैं, वे लोग इस बातमें सहमत न होंगे। उनके सामने लिये हमें उन पटनाओंकी ओर पुन ध्यान देना चाहिये, जिन्हें “ बाहुगके निरर्थक सिद्धांत ” कहकर टाक दिया गया था।

प्रधान मंत्री नेहरूने पंचशतलके सिद्धान्तोंका प्रचार करने उन देशोंके सम्पर्क पानेके लिये सोवियत संघ और पूर्वी यूरोपके अन्य सन्तुष्टकारी देशोंका जूनमें भ्रमण किया। १२ जुलाईको १८ नोवुल पुस्तकार पानेकाने बैरानिकोने विश्वके राष्ट्रोंमें यह अरील की वे राजनैतिक साधनके रूपमें आणविक शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग बढ़ कर दें। १९४४ के पोस्टडम सम्मेलनके पञ्चान प्रथम बार १२ जुलाईको जिनवामे होनेवाले बार राष्ट्रोंके शीर्षस्थ सम्मेलनने स्थायी शान्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करनेकी प्रतिज्ञा की। इस विचार-विमर्शमें आख्येजतक सीहार्दता बनी रही।

बहुत होता रोय था। चीनने निम्नार्थमें घोषणा कर दी कि वह उन ११ अमरीकन उगनोंको मुक्त कर देगा, जिन्हें भेदिया होनेके अदरारमें बंदी बनाया गया था। इस प्रकार दोनों देशोंके बीच गैरसरकारी बातचीतके लिये मार्ग साफ हो गया। दिसम्बर १९४४ में सोवियत संघ और पश्चिमी जर्मनीने दृष्टनीतिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। संयुक्त राज्य अमेरिकाने अक्टूबरमें सोवियत संघ और पूर्वी यूरोपकी यात्रा करनेवाले अमेरिकनोके पार-पारोंके ऊपर लगे प्रतिबंधको हटानेकी घोषणा कर दी। नवम्बर और दिसम्बरमें बुलगानिन और लुरचेवने भारत यात्रा और अफ़ग़ानिस्तानका दौरा किया।

१९४५ के अन्त तक प्रमुखरूपमें बाहुगके सम्पर्क १९ नये सदस्योंके राष्ट्रसंघमें प्रविष्ट होनेके कारण उस संघटनका शक्ति स्तुम्भन बहुत कुछ बढ़ल गया। जापानके प्रवेश और फारमोसाके स्थानपर चीनी जन गण-तन्त्रके सुरक्षा परिषद्में पहुँचने पर; निम्न परिवर्तनको संयुक्त राज्य अमेरिका अधिक दिनों तक नहीं टाल सकता था; बाहुग दल निश्चित रूपमें राष्ट्रसंघमें तत्काल निर्णायक स्थितिमें पहुँच जायगा।

आणविक शक्तियों शान्ति हेतु प्रयोग करनेके विषयमें होनेवाला अत्यधिक सकल अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी अत्यंत महत्वपूर्ण था। प्रथम बार अणुशक्तियोंके विस्फोटन और

महत्त्वपूर्ण वर्ष

सम्मेलनके भेदोंपर और विश्वके लाभ हेतु इस असीमित शक्तिके प्रयोग का स्पष्ट विचार हुआ। भारतने इस सम्मेलनका सभापतित्व किया। यदि विज्ञान जिसपर युद्धमें विजय आवांशित है, सीद्दार्थतामे प्रभावित हो जाय, तो निश्चित रूपसे शांति अधिक सुगम हो सकती है।

और यह प्रक्रिया १९५६ मे जारी रही। भारतमें अनेक विदेशी सभ्यता व्यक्ति आये, जिनमे सऊदी अरब और ईरानके शाह भी सम्मिलित हैं। इंग्लैंडमें मलेनबोव, बुल्गारिन और लुइचेव पहुँचे। चीनने कम्बोदिया और जापान सरीखे राष्ट्रोंके उन प्रतिनिधियोंका आतिथ्य सत्कार किया, जिन्हें पहले सदेहकी दृष्टिमे देखा जाता था। मिश्र और पाकिस्तानने अपने आपको गणतंत्र घोषित कर दिया। सीमांत प्रदेशोंके अपार अधिक व्यापार होने लगा। मासुक्ति विनिमय द्वारा लोगोंमे एक दूसरेकी समझनेका हान बसा। अन्तमे सामान्य स्थितिके चिन्ह दिखलाई देने लगे।

लेकिन सर्वो यह बाल नहीं थी। तनाव क्षेत्र चीनी तटमे बदल कर पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीकामें पहुँच गया था। साम्राज्यवादी रणनीतिके परि वर्तन और नये संकटका प्रमुख कारण अरब प्रदेशीय तेल था। अमेरिकीके पुराने तेल क्षेत्र शुष्क होने लगे थे। तेलकी माँग बढ़ रही थी। समुक्त राज्य अमेरिका भी वास्तविक रूपसे तेलका आश्रय करने लगा था। पश्चिमी एशियामें विश्वका ८० प्रतिशत प्रमाणित तेल भंडार था। लेकिन इस अपेक्षाकृत सुगम और अनिवारिक क्षेत्रमें भी विस्फोट होने लगे थे और परिणाम स्वरूप वे शेष एशियासे मित्रता स्थापित करनेमें लगे थे।

१६ मार्च १९५६ को साइप्रसकी अशांति पर होनेवाले विवादका उत्तर देते हुए प्रधान मंत्री एथोनी ईडनने लोकसभाके सामने वास्तविकता पर प्रकाश डाला था। उन्होंने कहा था कि “हमारा कर्तव्य अपने देशकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की सुरक्षा है... सबसे ऊपर तेल... हमारे देशवासियोंका कल्याण और यहाँ तक कि उनका जीवन भी साइप्रस पर आश्रित है, क्योंकि कि यह स्थान तेलके तत्समों हितोंकी रक्षाके लिये चीनी और सनरीके समान खड़ा है। यह साम्राज्यवाद नहीं है। अनेक सरकारें यही सुस्पष्ट कर्तव्य होना चाहिये और

इसे ही हम पूरा करना चाहते हैं।" एक सप्ताह पूर्व लेदनके डेली टेलीग्राफने इन परिस्थितियों को मनेस्टेरे टुए लिखा था कि, "मध्यपूर्वकी नीतिक सुन्य उद्देश्य हमारी तैल पूर्णता को सुरक्षित करना है।"

कना अन्तिम डेर भूत अरब अब येन यूरोप और येन अमेरिकाके लाभ हेतु जीवन रहनेको तैयार नहीं थे। लन्दन और वाशिंगटन-वासियोंके लिये यह बात बहुत सत्यके समान थी और इसी कारण आराधुक्त रूपमें उन्होंने तय-पैर मारे। बगदाद सर्जिका समर्थन करनेवाले राष्ट्रोंकी मित्र, सऊदी अरब और सीरियाने भारी आलोचना की। इन समस्त संघर्ष एक सदस्य ईरानने पुनः मोचना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच इन सभीमें सम्मिलित होनेके लिये हवाय डाले जानेके कारण जोर्डनने विरोध कर दिया और अपनी सहायता प्राप्त सेनाके पाम्यनकारी मित्रिश सेनापति "गलब पामा" को उखाड़ फेंका।

जब पश्चिमने अरब राष्ट्रोंको इसदलके सैनिकीकरणकी धमकी दी, तब इस प्रयत्नको निरर्थक करनेके लिये उनकी प्रतिनिधि यह हुई कि उन्होंने सनातनवादी दुनियाँकी ओर दृष्टिकोण किया। मित्रने पुनः तय मोविमद अपने शत्रु सहायताके समझौते पर हतभीत कर डाली। सीरिया भी ऐसा ही करनेका विचार कर रहा था और यही दख सऊदी अरबकी थी। और सऊदी अरबवासियोंके महान आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि "नास्तिक" मोविमद सब किसी भी शत्रुके लक्ष्यके बिना भी पराजित आर्थिक सहायता देनेके लिये तैयार है।

पाकिस्तान भी समाजवादी दुनियासे पुन सार्क स्थापित करनेकी आवश्यकताके विषयमें सोचने लगा। उसके प्रधान मंत्रीने चीन जानेद्य विचार प्रकट किया। एक मोविमद व्यापारिक मंडल परम्पर सदस्य समझौते पर विचारविमर्श करनेके लिये करीबीने आया। राजनैतिक रूपमें भी संयुक्त राष्ट्रीय बचनोंने मुक्ति पानेकी प्रक्रिया धीरे धीरे जोर पकाने लगी।

संघवासियोंने इस नई भावनाका बड़े नाटकीय रूपमें प्रदर्शन किया। आम चुनावोंमें मतदान करते समय उन्होंने साम्यवादके विनाशक जोन कोटलावालाको बुरी तरह पराजित कर डाला।

महत्त्वपूर्ण वर्ष

थोड़े राज्यों में, एशिया और अफ्रीका नाटियों में जो अब तक साम्राज्यवादी दवाव के शिकार रहे थे, भारत की ही तरह अपनी स्वतंत्रता प्रतिपादित करनी प्रारम्भ कर दी। राजतन्त्रात्मक सरकारें गणतन्त्रात्मक सरकारें तथा सामन्तवादी और कब्जादारी व्यवस्थावाले देश भी इसी दंगरी आकाशवाणी को पोंछ कर रहे थे। इस बात की भी पूरी सम्भावना थी कि कहीं नई हलचल आगि शक्ति पूर्ण होकर साम्राज्यवाद की उनके मानसिक स्थान और अस्तित्व स्थान देने में इनकार न कर दे और फल स्वरूप राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक प्रगति का द्वार खुल चुके हो जाय। भारत की कार्य १९५५ और १९५६ में इन महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं का घने क दिशाओं में नेतृत्व करना रहा।

बाढ़ों सम्मेलन के समस्त होते ही नेहरू की सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की यात्रा तथा १९५५ की सम्मेलन के समय बुल्गारिया और छुश्चैव की भारत, धरमा और अफगानिस्तान की जवाबी यात्रा अधिन स्मरणीय घटनाएं थीं। यह घटना साम्राज्यवादी दुनिया के साथ भारत के सम्बंधों में एक ऐतिहासिक परिवर्तन बिंदु है।

शीघ्रता पूर्वक प्रगतिशील समाजवादी देशों के साथ व्यापारिक और आर्थिक सहयोग प्राप्त करने के लिये कदम उठाये जाने लगे, सोवियत संघ समानता और पाठ्य-रिक्त सामग्री शतों पर भारत द्वारा अनेकाने मिली भी प्रगतिशील सहायता देने के लिये तैयार था। छुश्चैवने विदेशी सहायता के इस सिद्धांत की मुश्किल सोवियत के सामने २६ दिसम्बर १९५५ के दिन दिये गये अपने भाषण में स्पष्ट स्पष्टता के साथ व्याख्या की थी। उसका प्रमुख अनुच्छेद है कि—

“सोवियत संघ प्रत्येक देश को मित्रता की भावना के साथ और किसी प्रकार के उपबंधों के बिना आर्थिक एवं तांत्रिक सहायता देता है। हमारे पास अतिरिक्त पूंजी नहीं है।

“हमारी अर्थ-व्यवस्था योजनानुसार चलती है। हमारी अभिरूचि पूंजी के निर्मात में नहीं है। और माल के निर्यात में सम्बंध में हम केवल उतना ही उदात्त करते हैं, जितना हमारे लिये, हमारे मित्रों के लिये और विदेशों में व्यापार के लिये आवश्यक हो।

“इस वस्तुओं की तो हम अपने देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के लिये भी पूर्ण नहीं कर पाते, लेकिन अपने मित्रों के साथ अन्य सामान को बाँट लेना

और इस प्रकार एक साथीके रूपमें उनकी सहायता करना हम अपना कर्तव्य मनमते हैं।

“कुछ समयदूर पूर्वोन्नी आज कम अर्थ विकसित देशोंमें आर्थिक सहायता बचानेके विषयमें शान्तिपूर्ण करते हैं। यह कुछ नहीं है। पूर्वोन्नी देशोंद्वारा ऐसी सहायतामें कोई आपत्ति नहीं है। नैतिक गुणों और सधियोंमें देशोंकी परीक्षणकी अनेक यह अधिक अच्छी बात है।

“हम इस बातमें बहुत श्रम है कि उन देशोंके साथ भारतके संबंध बहुत अच्छे हैं, जिनके साथ हमारे सम्बन्ध किन्हीं कारणोंसे कुछ खिंचे हुए और अनुमाह पूर्ण हैं। अपने मित्र, भारतके भाव्यमने हम उनके साथ अपने संबंध सुधारनेकी आशा करते हैं।”

रुतु केर मित्रमें भेद करनेके लिये भारतको इस घोरणके साथ अगले सप्ताहमें राष्ट्रमन्त्र आसनहावर द्वारा किये गये राष्ट्रपतिदेशके समानान्तर अनुच्छेदकी केवल तुलना करनेकी आवश्यकता है। उन्होंने कहा था कि —

“हमें अपने पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रमको अधिक सुदृढ़ और सुरक्षित बनाना चाहते हैं। और अधिकजित क्षेत्रोंमें दोहला और अमानिती परिस्थितियोंके कारण वहेंकि लोग अन्तराष्ट्रीय साम्यवादके विशेष लाभ बन जाते हैं। इस कारण साम्यवादी धमकियों और प्रतोननोंने उनकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये यह आवश्यक है कि आर्थिक उन्नति और सुश्रुता प्रम करनेमें उनकी सहायता की जाए।”

जैसे ही भित्तिई इस्पात कारखानेका विवरण प्राप्त हुआ, जैसे ही इस बातका प्रचार होने लगा कि सोवियत साम्य और तांत्रिक सहायता किमी भी देशमें मित्रेन और अमेरिकन निर्मात्रोंकी तुलना नहीं कर सकती। समारम्भ यह एक नवीनतम इस्पात कारखाना बननेवाला था। इसके आतिरिक्त सोवियतसंघ अनेकाले एक भारतीय इस्पात प्रतिनिधि मंडलने, जिसमें हमका पक्षपात करनेवाले तन्त्र बहुत कम थे, भारत सरकारको अपना प्रतिवेदन दिया और उसमें स्पष्ट रूपमें उन्होंने यह कल्पना कि सोवियत इस्पात उद्योग अनेक रूपोंमें सशुद्धतम्य अमेरिकनके उद्योगों भी आगे है।

महत्त्वपूर्ण वर्ष

इस साल के परचात अनेक क्षेत्रोंमें सर्पक स्थापित हुए, जैसे खान, नई छानोंकी खोज, तेल, औषधियों, जहाज और यहाँ तक कि भारी औद्योगिक प्रसार। साम्राज्योंके साथ उद्योग गये यह कदम विरिचतरूपसे आगत अमेरिकियों पर भारतकी आश्रयताको समाप्त करनेकी दिशामें उद्योग गये प्राथमिक प्रयत्न थे। अब इस बालन अधिक देर नहीं थी, जब कि भारतीय नेता इन नये सम्बंधोंको विकसित करेंगे और यहाँ तक कि साम्राज्यवादी मयादोहनकी नईव विद्यमान धमकीका निराकरण करनेके लिये सम्राज्यवादी देशोंके साथ सैनिक एवं अन्य आवश्यकताओंका विकस्य करना प्रारम्भ कर देंगे।

इन विषयमें यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है कि सोवियत सघने कारमीरके विषयमें भारतके बहुत कुछ अनुकूल गिदात ही अपनाया है। सोवियत-अफगान सम्बंधोंका पुनर्निर्धारण और पस्तून आंदोलनकी जनतात्रिक भावनाओंकी माय्यो द्वारा स्वीकृति भी विचारोंमें अति उत्पन्न करनेवाली बात है।

भारतकी उत्तर-पश्चिमी सीमापर शक्तियोंका ऐसा पुनर्संगठन पाकिस्तानको निष्क्रिय बनानेमें सहायता करता है। क्योंकि पाकिस्तान संयुक्ताज्य द्वारा रण सजित होकर स्वतंत्र इटिकोण अपनातेके इच्छुक भारतके लिये भारी अवरोधका कारण प्रमाणित हो सकता था। यद्यपि यह सच है कि ब्रिटेन और संयुक्ताज्य अमेरिका तथा पूर्वी और पश्चिमी भागोंका पारस्परिक सर्प उक्त देशमें नई शक्ति उन्मुक्त कर रहा है, जिसके सहारे डालर-नीतिनी पक्षमें सम्भवतया पाकिस्तान अपनेकी मुक्त कर सके, लेकिन भारतके लिये तो सदैव भय रहता ही है, क्योंकि इस पंगुलने सुटकसा पानेके लिये यहाँ अब तक कोई वास्तविक सगटित प्रयत्न नहीं हुआ है।

भारत सरकारके मामले हमेशा यह वास्तविकता आती है और पलत उगे इसी आशाने राष्ट्रमंडलीय सदस्यताको कायम रखने पर विवश करती है कि शक्ति अमेरिका द्वारा उत्तेजित पाकिस्तानकी दुगाहविक नीतिनी शात करनेमें आघात स्थितने ब्रिटेन अपने प्रभावका उपयोग करेगा। लेकिन अफीवाकी विस्फोट परिस्थितने और उसके निगरण हेतु भारत द्वारा ब्रिटिश हितों

मिश्र द्वारा स्वेज नहर का स्वामित्व

अधिकधिक दरानेकली स्थिति ग्रहण करनेके कारण इस श्रृंखलापर भी भारो तनाव पड़ रहा है ।

इस कारण मिश्र द्वारा स्वेज नहर कंपनीका स्वामित्व ग्रहण करनेका सार्वाधिक प्रयत्न इस प्रस्ताव सफ़ट अंगीकार करनेके प्रयत्नके बावजूद भी एक महत्वपूर्ण घटना है । साम्राज्यवाद द्वारा नक़ुल तलशारेका मिश्र पर कुछ प्रभाव नही पड़ा । इससे केवल किसी कानूने के शासक पक्षिन और नगोदित पूर्वके सम्बंधोंने सोम ही बढ़ता है । यान स्वयंसी बात है, वह आब स्थित तैलरा प्रसन्न हो सकता है । राष्ट्रीय प्रगतिके साथ विदेशी मुविधामोदी समाप्ति जिन रूपमें सम्बंधित है, जैसा कि मिश्र और उनके आनवान बाँपके प्रकरणमें था, उनके फलस्वरूप सन्नत एशिया और अफ्रीकामें इसी प्रकारके विचारोंको प्रोत्साहन मिलनेकी पूर्ण सम्भावना है । भारतमें यह बात विरोधनरा लागू होती है, क्योंकि यहाँ विदेशी पूँजी अधिक है ।

जिन प्रकार बीसवी शताब्दीके प्रथम आध्यायमें एशियाकी घटनाओंका प्रभाव समारकी प्रकृतियों पर पड़ा था, उसी प्रकार आज और अफ्रीकाकी घटनायें शताब्दीके द्वितीय आध्यायमें प्रमुखता प्राप्त कर रही हैं । यह निर्णायक क्षण है, जो साम्राज्यवादकी मृत्यु देता सकेगा ।

प्रचुरताकी योजना

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन ।

—भगवद्गीता

स्वतंत्रताकी नीतिने भारतको होनेवाले लाभको देखकर एशिया और अफ्रीका दोनोंमें प्रभावित होना ही पड़ा । प्रथम पञ्चवर्षीय योजना कालमें अपमानपूर्ण दबावके सामने आत्मसमर्पण बिना ही महत्वपूर्ण आर्थिक सफलता प्राप्त हुई थी ।

इसके कुल परिणामोंमें बड़ी प्रतिभासित होना था कि पाँच वर्षोंमें वास्तविक राष्ट्रीय आयमें १८ प्रतिशतकी वृद्धि हुई है । १९५२-५३ के मूल्यांक आधार-पर यह अनुमान लगाया गया था कि राष्ट्रीय आय १९५०-५१ के रु ६,११० करोड़में बढ़ कर १९५३-५६ में रु १०,८०० करोड़ हो गई है । प्रति व्यक्ति आयमें ११ प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उपभोगमें ६ प्रतिशतका सुधार देखा गया था ।

अनाजका उत्पादन २० प्रतिशत, रुईका ४५ प्रतिशत और निलारनका ८ प्रतिशत बढ़ गया था । मिर्चाईके महत्व कार्यों द्वारा ६० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि और लघु सिंचाई कार्यों द्वारा १०० लाख एकड़ अन्य भूमि सिंचित होने लगी थी ।

औद्योगिक उत्पादनका अंतरिम देशानांक १९४६ को १०० आधार मान कर १९५० के १०५ और १९५१ के ११७ के स्थानपर १९५५ में १६१ तक हो गया था ।

योजनाने प्रमुख बल इकट्ठा किया था, किन्तु हिन्दुस्थान मशीन टूल फैक्टरी, वित्तजन रेल इंजन कारखाना, पेराम्बूर सवारी डिब्बा कारखाना आदि अनेक उद्योगों द्वारा राज्यने भी औद्योगिक विकासमें प्रमुख भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था,

निजी क्षेत्रके अन्दर विशेषरूपने उत्पादक माल और पूँजी मालके उद्योगोंकी स्थापनामें यथेष्ट नवीन विनियोजन भी हुआ था । माणस-नागत सरोखी बहु उद्देशीय आयोजनाओंकी प्राप्ति भी निरन्तर हो रही थी, जो सत्तरवीं विश्वयुद्धमें

योजनाओंमें एक है। आठ वर्षोंमें सिचाई और बिजलीकी प्रगतिके लिये होनेवाला विनियोजन उसमें कई गुना अधिक था, जो अग्रोषोंमें अपने सामान्य कालके २०० वर्षोंमें किया था।

तदनन्तर कारखानों और एक भारी विद्युत कारखानेमें सम्बंधित प्रारम्भिक कार्य पूरा हो चुका था। चूंकि लागत दरमें १९१०-११ के ४-६ प्रतिशतसे १९५१-५२ में ७-९ प्रतिशतकी वृद्धि होनेके परिणामस्वरूप मुद्रास्फीतिसे दबाव नहीं बना था, इस कारण आर्थिक आवश्यकजनक कार्य प्रारम्भ करनेके लिये अब एक सुन्दर आधार मौजूद था। वास्तविकता यह है कि प्रथम योजनाकालके समाप्त होनेपर मूल्योंमें योजनाके आरम्भ होनेके समकाल १९ प्रतिशतकी कमी हुई थी।

निश्चयनरूपसे भारतीयोंका जीवनस्तर अब भी सुधारके निम्नतम स्तरके देशोंके अन्तर्गत था। अन्तर्गत जीवन उपयोग, स्वीकृत स्वास्थ्य-स्तरसे कम था। प्रति व्यक्ति व्ययोंका उपभोग दुर्लभके स्तर पर था। आवास स्थान अत्यन्त घने और देशकी लगभग आधी जनताकी उपभोग मात्रपर खर्च करनेके लिये नरक ६-७ रुपये प्रतिमासमें अधिक नहीं मिल पाता था। घरोंमें पैदा विद्ये अन्तर्गत और घरोंमें बनी वस्तुओं सहित जीवन उपभोग ०.१३ से भी कम था। इसके अतिरिक्त देशमें नौजरीके अन्तर्गत भी भ्रमशक्तिकी वृद्धिके साथ कदम नहीं मिला पा रहे थे। अस्तु योजनाके अन्य अंगोंकी आलोचना स्थानी ही समीर क्यों न हो, किन्तु प्रथम योजनामें प्रगति होनेवाले लाभोंका महत्त्व कम नहीं किया जा सकता।

पी सी मदनमोहन एवं अन्य भारतीय राज्या शास्त्रियोंने विदेशी अर्थ-शास्त्रियोंके एक दलके साथ पचास विचार विमर्श करनेके परवान मिल द्वितीय पंचवर्षीय योजनाका प्रारम्भ बनाया था, उसके ऊपर १९५५ से आरम्भ होकर १९५६ तक, काभी विवाद होता रहा। तथापि इस निर्णायक विवादके विवरणपर विचार करनेसे पहले एक बार फिर उस समानान्तर आलोचन अर्थों भाषावी पुनर्गठन मौल पर विचार करना जरूरी है, जो भारतीय राजनैतिक दृष्टिकोण केवल एक आन्तरिक

प्रचुरता की योजना

अनक सम हो नहीं है, बल्कि देशकी अर्थ व्यवस्थाके साथ भी अत्यंत निकट रूपसे सम्बंधित है ।

✓ १० अक्टूबर १९५२ को राज्य पुनर्गठन आयोगका प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ । सामान्य तौरसे वर्तमान २७ राज्योंके स्थानपर उसमें करमीर सहित १६ राज्योंके निर्माणकी सिफारस थी । इस प्रतिवेदनके प्रकारानुसार, जिनके कुछ विवरणोंका किन्हीं क्षेत्रोंको पूर्वज्ञान था, भारतके मुख्य भागका पूर्ण ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया ।

सामान्य तौर पर निम्नारों स्वीकार्य थीं । यद्यपि भाग्य और सङ्घनिकी कदम आस्थाको हटाकर सीमाओंके पुनर्गठनकी आवश्यकतापर जोर डाला गया था । तथापि तथ्य यह था, कि आयोगने सरसे अधिक माया और सन्तुष्टि ॥ ध्यान रखा था । जिन केन्द्रोंमें हम और ध्यान नहीं दिया गया, वही कटु विवादके क्षेत्र बन गये ।

द्विभाषिक रूप अग्रिम था । पंजाब-बेसू हिमाचल और महाराष्ट्र-गुजरातके लिये यही प्रस्तावित किया गया था और यही पर तनाव शीघ्र ही पैदा हो गया, क्योंकि एक भागभाषी वर्ग सोचता था कि वही दूसरा वर्ग प्रगतिता प्राप्त न कर सके । महाराष्ट्रवासियोंमें यह भय विरोध रूपसे व्याप्त था । आयोगका निर्णय था कि विदर्भ जो प्रमुख रूपसे मराठी भाषी क्षेत्र था, प्रस्तावित द्विभाषिक राज्यके बाहर रखा जाय, यद्यपि कुछ और सीराट्टके गुजराती भाषी क्षेत्रोंको सम्मिलित कर लिया गया था । यह स्पष्ट था कि आयोगको सिफारसों द्वारा विशुद्ध द्विभाषिक राज्यमें महाराष्ट्रवासियोंको वास्तविक बहुमत प्राप्त करनेसे वंचित करनेका प्रयत्न हुआ था । अपने विरुद्ध, अन्यथा सोचनेवाले दलोंका, प्रमुख कार्य यह हो गया कि इस 'घटकेषन' को समाप्त कर दिया जाय । उन्होंने अब अपनी शक्तिका प्रदर्शन किया । हिन्दू और सिक्ख, महाराष्ट्रियों और गुजरातियोंमें मतभेद बढ़ गये ।

अन्य क्षेत्रोंमें इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ होनेवाला था । देशके प्रत्येक भाषिक दलने यह मोचा कि यदि पंजाब और कश्मीर प्रदेशोंमें प्रतिवेदनकी इतनी उम आलोचना हो रही है, तो वह भी अपनी शक्तिके प्रदर्शन द्वारा उममें परिवर्तन

चा सकते हैं। एक सन्तुष्टे इतर या उबर निम्न भूनिर्खंड पर अधिकार पानेके प्रयत्नको लेकर उनकी सुदृष्टी हुई भावनाएं सुन कर सम्पन्न हो गई। कभी-कभी तो यह मालूम पाना था, किन्ती पोंवके मविमका प्रच लेकर ही गार्ड-भार्नि पारस्परिक युद्ध छिड़ जावगा।

प्रथम सरोपनोंको दोरणा हुई। मराठे ऊपर गुजराती चढ़ा हो सकते थे, लेकिन ऐसी दशामें बम्बई शहर एक पृथक् इकाई रहने। यह कुमाव, दठपनी मराठोंके गल पर पड़नेवाले एक नमाचके सन्तान मनमग्न गन।

बम्बई नगरको लेकर होनेवाला सार्वे अन्य सभी रुधोंसे बचपड कर था। महाराष्ट्रवातियोंके जिने यह उनके मविमका अर्थात् एक सूर्यी जातिकी आर्थिक मरुद्विध युद्ध हो गया। नेहरू तबने जिने महाराष्ट्र भूग मान लिदा था, ठप बम्बईके बिना महाराष्ट्री कभी सौजन्यपूर्णक टनने नहीं हो सकती थी।

सर्वोच्च और निम्नतम स्तरका महाराष्ट्रकी दृष्ट-दृष्टा शहरकी जीतनेके लिये सन्तुष्टि दृष्टा। देशने शहर ही कभी ऐसी उत्तेजन और लानके दर्शन जिने हों। इस भावनाके साथ-साथ यह मग विचारात्त न कि अगले युगमें वैमिषको महाराष्ट्रसे एक भी मन प्राप्त न हो सकेगा। स्वयंका इन महाराष्ट्रवाती नगरके सपरने भाषावादकी शक्तिनो रेखांकन कर दिना, जिसका गमना राजनैतिक रूपसे प्रत्यक्ष होनेके अन्तरेके बिना कोई नहीं कर सकता था। मुँह छिगनेके अनन्त प्रयत्न जिने गये। यह बहा गन कि बम्बई नगर केन्द्र शक्ति होना, लेकिन महाराष्ट्रकी राष्ट्रवादी भी बग रहेगा। परन्तु कुछ क्यों, शहर पंच वर्ष तक ही राष्ट्रवादी क्यों रहना चादिये। इसके स्थान पर बिदने-मदित गुदराने गरी सभी राज्यका निर्माण क्यों न हो।

बहुत कोप्रेमो नेगमो हग बम्बई नगर विषयक मुद्दके सूर्यी प्रननोंसे वेमकर आस्था होता है, लेकिन इसका कारण है उनके लिये दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है।

मुख्य गुनागनमें, जिनका मिग-केन्द्र अन्तःशक्ति है, बम्बईके मान्यके बारेमें विनिता भी विम नहीं थी। नगरके दंग और गुनागनियोंके मग होनेवाली छेड़-

प्रचुरता की योजना

जहाँ भी प्रतिनिधा स्वरूप गुजरातमें महाराष्ट्रियोंके साथ कोई हिंसात्मक बदला नहीं निकाला गया। अहमदाबादके गुजरातियोंको बम्बई स्थित अपने सहधर्मियोंके प्रति कोई वास्तविक सहानुभूति नहीं है। वस्तुतः वे तो उन्हें अपने सभास्य शत्रु मानते हैं, विशेष रूपसे मारवाड़ी पंथीके साथ उनके निष्ठ सपर्कके कारण, उस सपर्कके कारण जिनके आरोप हेतु अहमदाबादमें उन्होंने भाते प्रयत्न किया है। अगर बम्बई महाराष्ट्रमें चला आता है, तो क्या हुआ? गुजरात काउलाको विक्रमित कर डालेगा।

बम्बईमें महाराष्ट्रसे दृष्यक करनेका कारण यह था कि न केवल राष्ट्रके गुजरातियोंको हमकी आवश्यकता थी, बल्कि भारतके बड़े पूँजीजीवी और विदेशी पूँजी भी यही चाहती थी। कमिंस ऐसी माँगकी उपेक्षा कैसे कर सकती थी, विशेष रूपसे जब कि पार्टीको इसी जरियेसे पैसा प्राप्त होता था। बड़े पूँजीजीवी अनेक बातें स्वीकार करनेको तैयार भिये जा सकते थे, किन्तु अपने अत्यंत विरसित स्थलोंको महाराष्ट्रीयन राजनीतिक अधिधितताके भरोसे छोड़नेके लिये नहीं।

और इस प्रकार नेहरूको भी इस अध्यायको न्यायमिद मान्य करनेके लिये विवश किया गया। उन्होंने महाराष्ट्रियोंकी माँगका समर्थन किया, लेकिन इस निर्णयको डालनेके बहाने बूँदें। दक्षिण पंथियोंकी आवाज इस सम्बंधमें दृढ़ और अडिग थी, क्योंकि बम्बईमें अनेक हिलोंका समन्वय होता था।

बम्बई विषयक कमिंसकी नीतिके मोर्चे और गुजरातोंसे न्याय-मिद करनेके लिये सभी प्रकारके तर्क उपस्थित भिये गये। सर्वप्रथमवास्तविकता तक वास्तवमें बात विचित्र था। क्योंकि कलकत्ता और अन्य अनेक नगरोंमें भी क्या इसी प्रकार सभी जातिलीं नहीं रहती। महाराष्ट्रियोंके एक नगरका नियंत्रण उन्हींके हाथोंमें सौंपते समय भयका वातावरण उपस्थित करनेका अर्थ केवल यही निकलता है कि वे अविरवसनीय थे।

केन्द्रीय अर्थमंत्री चित्तामणि देशमुखके त्यागपत्रके साथ-साथ इस प्रश्नने प्रमुखता प्राप्त कर ली। द्विभाषावाद जिसका अर्थ संपूर्ण गुजराती और मराठी क्षेत्रोंको एक

ही राज्यमें सम्मिलित करना था, अनेक महानोंने बहुत संघर्षके उपरान्त समझौते का आधार बना ।

अहमदाबादके नेता इन निर्णयोंके प्रान्त नहीं हैं । उनके लिये हिमाचलनादख्ख अर्थात् है दशहजारों बहुसंख्य शासन । ऐसा बहुमत, जो महाराष्ट्रके आर्थिक हितोंकी स्थापना करेगा । सामान्य तौर पर वेदिक शक्ति का हृदय समझे जानेवाले, गुजरातमें ; देशा वेदिक-विरोधी-भाष्य-प्रयोग अथवा तात्त्विक रूप में है । महाराष्ट्रियोंके विरुद्ध गुजरातियोंकी रीति पुराने नहीं है । वेबल कैंपेसी नेत्र-प्रयोग विरोध हो रहा है, जिन्होंने गुजराती हितोंके साथ विरामप्राप्त किया ।

हिमाचलनादख्खके प्रान्त पर स्वयं बम्बईके गुजराती एकाग्र नहीं है । जिसकी अधिकतर पूंजी वास्तविक गुजरातमें खरी हुई है, वे इस नये रूपके विरोधी हैं । उन्हें जो केन्द्राभिमत बम्बई पक्ष था, क्योंकि उस व्यवस्थामें उन्हें केवल गुजरातमें ही नहीं, बल्कि बम्बईमें भी लाभ प्राप्त करनेकी आशा दिसलाई पड़ी थी । क्योंकि उस दृष्टिमें बम्बई सीखे एक अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों भी वे नियंत्रित कर सकते थे । वे गुजराती व्यापारी जिनायत कार्य केवल नगरमें ही सीमित है, स्वभावतया इन हिमाचल रूपमें प्रान्त हैं । तथापि अहमदाबादकी आवाज शक्तिशाली है ।

अंतिम निर्णय कुछ भी हो, लेकिन यह स्पष्ट है कि अंतमें भाषावादी तर्क की ही विजय होगी और एक गुजराती प्रदेश तथा बम्बई-सहित एक मराठी प्रदेशकी रचना होकर ही रहेगी । यदि इच्छाके विरुद्ध लोगोंका हिमाचलनाद प्रयोग गया तो वह केवल एक अस्थायी निराकरण ही होगा, क्योंकि उसके साथ संघर्ष अग्रिम उनके बीच विद्यमान रहते हैं ।

अनेक लोग निराशाके साथ अपने हाथ ऊंचे करके यह भविष्यवाणी कर रहे हैं कि ब्रिटिशराजकी एकाग्र अच्युत अर्थान् भारतीय एकाग्र पर पुनः सन्नत हो गया है । अन्य लोग भारतीय अन्तर्गत धर्ममें रहे हुए जातीय छिन्नोच्छिन्न की बात करते हैं । लेकिन ईमानदारीसे इन बातों को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आंदोलनोंकी रीति एवं उनकी लक्ष्य-देशान्तरकी विरोधप्रान्त आगमें मोक्ष काम किया ।

किन्तु भी इन समस्या अनावश्यक वास्तविक कारण सांस्कृतिक अथवा दृष्टान्त छिन्न-बोणमें नहीं मिल सकता । इसका कारण आर्थिक था, पर आर्थिककी बात तो यह

प्रचुरता की योजना

है कि सांस्कृतिक और भाषिक अधिकारोंकी उन्मादपूर्ण रचक भारतीय माध्यमवादी पार्टीभी अपने प्रचारमें इस तथ्यकी उपेक्षा करती प्रतीत हुई ।

जैसा कि पहले बतलाया गया है, भाषिक पुनर्गठनके प्रश्नपर पार्टीवोके भी मतभेद नहीं रहा । इस शताब्दीके आरम्भमें ही अनेकों बार इस मैंगरों दुहराया गया था ।

१९०५ में बंगालके अभिलोपनका सन्तर्पन करते समय ही कांग्रेसने इस सिद्धान्तको मान लिया था । इसके ३ वर्षे पश्चात् और बिहार-बंगालके वास्तविक विभाजनसे चार वर्षे पहले, एक पृथक् बिहार प्रदेश समिति बनाई गई थी । १९१७ में दो नई समितियाँ एक आंध्रके लिये और दूसरी सिंधके लिये बनाई गई ।

१९२० में कांग्रेसके नागपुर अधिवेशनमें पार्टीने अपना एक राजनैतिक उद्देश्य भाषिक पुनर्गठन निश्चय किया । १९२० में होनेवाले सर्वदलीय सम्मेलनने इसकी शुक्तियुक्तता निम्नलिखित शब्दोंमें व्यक्त की, यदि किसी प्रांतमें अपनी ही भाषाके माध्यममें दैनिक कार्य और शिक्षाका प्रबंध करना है तो उसका एक भाषिक क्षेत्र होना आवश्यक है । यदि वह अनेक भाषा-भाषी क्षेत्र रहेगा तो निरंतर कठिनाइयाँ होती रहेंगी । मिश्रित सांस्कृतिक विविधता, परंपरा और साहित्यके अनुपपत्ती भाषा होती है । भाषिक क्षेत्रके अंदर यह सभी तत्त्व मिलकर प्रांतकी सामान्य उन्नतिमें सहायता करेंगे । यह दृष्टिकोण उस समिति का, जिसके अग्रज स्वयं अवधारणा नैदान थे ।

१९२० और १९४७ के बीचमें कांग्रेसने भाषिक मिश्रण का प्रतिपादन ३ अंतरोंपर किया था, अर्थात् १९३७ में बलुसतमें जब उन्होंने आंध्र और कर्नाटक प्रांतोंके निर्माणकी सिफारिश की थी, १९३८ में वर्षा में आंध्र, केरल और कर्नाटकके प्रतिनिधियोंकी आश्रामन देकर और १९४३-४६ में जब कांग्रेसने अपने चुनाव घोषणा पत्रमें यह प्रकाशित किया कि यथा समभव सांस्कृतिक और भाषिक, आधारपर ही प्रशासनिक इकाइयाँ बनानी चाहिये ।

इस स्थितिमें एक विचित्रता किया गया । १९४३-४६ में प्रयुक्त “यथा सम्भव ” शब्दकी व्याख्या १९४८ में पर आयोग द्वारा की गई, जिसमें

बतलाया गया कि हिन्दी भाषिक क्षेत्रों को ग्राम वर्गों में पहले विन्तीय ध्यान्निर्माण, प्रशासनिक सुविधा और भाषी प्रगतिशील समता सरोचने परीक्षाओं में लगी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त भारत में एकता और भारतीय मुरझा आदि के नये नारे भी ईजाद किये गये।

उपग्रामों के इस परिवर्तन की उम्मेद नहीं थी कि सच्ची। स्वतन्त्रता संग्राम के दरम्यान जब पारस्परिक मतभेद और साम्राज्यवादी बंटो और राज्य-को नीति के आधारों पर बुरा व्यवहार था, तब बंमिसने भाषिक पुनर्गठन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था, उस समय प्रत्येक भाषावादी और भारतीय प्रतिनिधित्व प्रत्येक क्षेत्र में, भाषा, संस्कृति और साहित्य में सम्पन्न प्रत्येक बत दिया जाता था।

जैसा कि हम देख चुके हैं, हिन्दी में भी इस मर्म के मूलाधार - अर्थात् व्यवस्था - का नारे भी न तो बना ही था और न हिन्दी में उम्र और ध्यान ही दिया। इस स्वाभाविक भी था, क्योंकि अमेरीका शासन समय था और अभी विदेशियों में आर्थिक परिवर्तन करने के अतिरिक्त ही दृष्टान्त नहीं दिया जा सके था।

लेकिन जैसे जैसे वह समय निकट जाने लगी, भारतीय मर्म के दर्शन के लिये अखंडता और मुरझा के नारे लगाने जाने लगे। व्यापारियों को अपनी आर्थिक गति के लिये भार दीया। १९४५-४६ में बंमिस के पुनर्गठन योजना पत्र में विशेष रूप से इसी द्वारा "यथा सम्मान" शब्द का प्रयोग किया गया था, क्योंकि वे एकाधिकार प्रणाली के स्वयं देख रहे थे। और अब वह सच दृष्टान्त हो गई, तो १९४८ में निपुण 'भारत आयोग' ने यह स्पष्ट कर दिया कि दक्षिणपंथी बंमिसियों के जलिये काम करने वाले अखिल भारतीय बड़े वृद्धिशील, भाषिक पुनर्गठन के लिये तैयार नहीं हैं, क्योंकि ऐसा होने के परभाव शक्ति - निरन्तरता के कारण आर्थिक प्रगति और उनके एकाधिकारी नियंत्रण को भय उत्पन्न हो जाएगा।

अब तक इन दक्षिणपंथी बंमिसी प्रगतिशील रही और विशेष, यद्यपि अतिरिक्त विदेशी पूँजी के सामने आर्थिक प्रगतिशील नियंत्रण रहा, तब तक बंमिस के अंदर भाषिक भाषा की दृष्टि भी सच।

प्रचुरता की योजना

समयक इमर विस्फोट आगमें ऐमे समय हुआ जव कि दक्षिणाभिधी उनने शक्तिशाली नहीं रह गये थे और जव साम्राज्यवादी सहायता होत पूर्ण शुष्क दिखलाई पड़ने लगे थे अर्थात् जव केन्द्रीय सरकार आर्थिक प्रगतिम प्रमुख भाग लेनेका निरचय कर रही थी। इस अवसरपर प्रत्येक भाषिक क्षेत्रमें एक बार पुनः यही विचारधारा ओर परतने लगे कि आर्थिक क्षेत्रमें उचित व्यवहारकी सभी आशा की जा सकती है, जव देशके पुनर्गठनका आधार ऐसा हो, जिसमें समान अवसर प्राप्त होनेकी सभीको गारंटी मिल जाय।

ऐमे समय जव कि एक ओर द्वितीय पंचवर्षीय योजनापर बहस जारी थी, भागवार राज्यकी माँगका हिमाचल रूपमें थपक उठता कोई अस्मरण बात नहीं थी।

योजनामें तीव्र प्रगतिका संदेश था, उस प्रगतिका विषये प्रत्येक भाषावार प्रांत अपने लिये चाहता था। उसके अंदर सभी समाजवादी मौजूद थीं, क्योंकि राष्ट्रीय एकता और एकात्मके दृष्टिमें केन्द्रकी अधिकतम पिछड़े हुए क्षेत्रकी माँगोंपर ध्यान देना जरूरी था।

प्रत्येक भाषिक क्षेत्र अधिकतम सहायता प्राप्त करनेके लिये अपनी स्थिति सुदृढ़ करनेमें दमकित हो गये। ऐमे समय क्रोध और उत्तेजनाकी ही आशा की जा सकती थी क्योंकि तेलंगू और तामिल, मलयाली और मराठा, बंगाली और बिहारी, उडिया और कन्नड़, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी तथा अन्य लोगोंका मजिद्वर दौड़कर लगा हुआ था। और क्या टीक कि प्रत्येक भाषिक क्षेत्रके अग्रिम क्योंनी कहानीका अनेक रूपसे निर्णय करनेवाली यह सीमायें हमेशाके लिये बनी रहें।

यह बात भी भविष्यकी सूचक थी कि अखिल भारतीय पूँजीजीवियोंके लगभग प्रत्येक सदस्य द्वारा शत्रु निरोध हो रहा था, जिसे वे “भाषावादका रोग” कहते थे। उनका सामना करनेके लिये अपने अपने भाषिक क्षेत्रमें अच्छी तरह जमे हुए मध्यम पूँजीजीवियोंके सदस्य थे, जो पुनर्गठनके आंदोलनोंकी सक्रिय रूपसे सहायता कर रहे थे।

जहाँ कहीं भाषावादका अतिक्रमण हुआ है, वहाँ साधारणतया बड़े व्यापारियोंका हाथ दिखलाई पड़ता है। उदाहरणके लिये, मुख्य मंत्री विधानचद्वर अपने पश्चिम

बंगाल विधान सभाके सामने यह प्रकट किया कि मानभूमि जिलेके बंगाली भाषी चंडिल और पलमाद ताल्लुकोंके पश्चिमी बंगालमें सम्मिलित करनेका कारण यह है कि राजधानी राज्य अपने धारकनेके द्वितीय चरणमें उन्हें बिहारमें रखना चाहते हैं और बेजोय सम्भारने राज्यकी रीज स्वीकार करनेके लिये मेरे ऊपर जोर डाला है।

तथापि मध्यम पूंजीजीवी मापासादके सम्बंधमें एक भिन्न प्रकारसे सोचना है। उद्योगके प्रधान मजदूरों पानी द्वारा इन दिखानक निदोहोंके नेतृत्वका दरय इतना विचित्र नहीं था। शीघ्रसे महाप्रांतीय पूंजीजीवियोंने अपने धर्मिक अंदर बैठकर अनेक समस्याओं पर परस्पर बुरी तरहसे विभाजित आग्रहोंके राजनीतिक संकेतनाओं शामिल करनेके लिये एकजुट होकर प्रयत्न करते थे, यह भी आश्चर्यका विषय नहीं था। फलस्वरूपके एक उपबन्धनमें हारकर विधानचद राज्यने अपनी समस्त शक्तिके बावजूद भी एकीकरणका विचार त्याग दिया, यह भी वास्तविकता प्रतीक नहीं था। इतना विलुप्त होनेके बावजूद भी उत्तर प्रदेशने अपनी सीमा विस्तारकी रीजको आगे बढ़ना उचित समझा, हम जानकी भी पागलान कहकर उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यह तो उस प्रकृतिकी थोड़ी-सी ही फलकें हैं, जो भारतीय प्रगतिकी किसी व्यक्ति द्वारा वर्तमान क्षणमें अनुमानित रूपसे अधिक रूपमें प्रतिबंधित करेगी।

यह वह प्रकृति है, जो व्यक्तिगत भारतीय बड़े पूंजीजीवियोंके असंतोषका ध्यान न देकर, क्षेत्रीय मध्यम पूंजीजीवियोंके हाथमें उपक्रमका सौजन्य है। भारतकी प्रगतिके लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है। जो कुछ संदेह बाकी है वह भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना और उसपर होनेवाले तीव्र और विनाशपूर्ण विवादको हल करनेके परचाय समाप्त हो जायगा।

पी. सी. महालनोबिस द्वारा निर्मित योजनाके आरम्भके अंदर उत्तरोत्तर क्रममें अनेक परिवर्तन हुए और मई १९५६ में जो अंतिम रूप संसदके सामने प्रस्तुत किया गया, वह मूलरूपकी अपेक्षा अधिक बृहदाकार था। तथापि उत्तम विस्तार इस भागमें ही हुआ था, जब कि अन्य संघोंमें उसे सक्षिप्त कर दिया गया था।

जीवन-स्तर सुधारमें सहायता देनेके लिये राष्ट्रीय आयको अब २५ प्रतिशत बढ़ानेकी योजना है, जब कि प्रथम योजनामें लक्ष्य ११ प्रतिशत थी।

प्रचुरता की योजना

“तीज औद्योगीकरण” का लक्ष्य घोषित किया गया है तथा सार्वजनिक क्षेत्रके उद्योग एवं उद्यमनकी उन्नतिके लिये रु ८६० करोड़ आंके गये हैं। इस शासक विरचाम दिलाया गया है कि आगले पाँच दशकोंमें लगभग ८० लाख नयी नौकरियों खोजी जाएंगी। और आयुधों तथा धनकी अपमानता घटानेकी शरण मौजूद है ताकि आर्थिक रुकड़्य अधिक सम्मान विवरण सम्भव हो सके।

हमारे शब्दोंमें, प्रथम योजनाके विपरीत द्वितीय योजनामें उनके औरोंकी अधिक स्पष्ट और निश्चित घोषणा की गई है। इसके अनिश्चित शारीरिक लक्ष्य भी प्रथम योजनाकी तुलनामें पर्याप्त ऊँचे हैं। यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्रमें आवंटित धन दुगुनेसे भी अधिक है जैसा कि निम्नांकित तुलनामें स्पष्ट है—

	प्रथम योजना		द्वितीय योजना	
	(करोड़ रुपयोंमें)			
		%		%
१. कृषि और ससुदायिक विहास परियोजना	३५७	१५.१	५९८	११.८
२. मिर्चाई और विजली	६६१	२८.१	६१३	१६.०
३. उद्योग और उत्पन्न	१०६	७.६	८६०	१८.५
४. परिवहन और संचार	५५७	२३.६	१३८५	२८.६
५. समाज-सेवा	५३३	२२.६	६४५	१६.७
६. विभिन्न	६६	३.०	६६	२.१

२३५.१ १००.० ४८०० १००.०

इसके अनिश्चित पिछले पाँच वर्षोंकी विनियोजन प्रवृत्तियों मोटे तौरसे देखते हुए तथा कुछ क्षेत्रोंके इन विनियोजन कार्यक्रमोंको ध्यानमें रखते हुए, द्वितीय योजना कालके अंदर सार्वजनिक क्षेत्रमें लगाने जानेवाली लागतका सम्भावित स्तर रु २४०० करोड़ कहा जा सकता है, जिसका विभाजन इस प्रकार है—

६० (करोड़ों में)

(१) संगठित उद्योग और उद्योगिक	१७५
(२) वाणिज्य, विपणन व्यवसाय और रेलवे के अलावा अन्य परिवहन	१२५
(३) निर्माण	१०००
(४) कृषि और मान तथा सधु उद्योग	३००
(५) सड़क	४००
	<hr/>
योग	२४००

इसमें से कुछ आंकड़ों को सम्झने पर मालूम पड़ता है कि उत्पादन में निम्नलिखित वृद्धि होगी — इसान में १,२५०,००० टन से स्थान पर ४,२००,०००, टन से घटके होनेवाले कच्चे लोहे में ३८०,००० टन से ७२०,००० टन, भवन निर्माण सामानों में १८०,००० टन से ५००,००० टन, भारी स्तान टनारों में न कुड़ में १५,००० टन, भारी कुड़हरण (कोरिंग) में न कुड़ में १२,००० टन, कच्चे लोहे के टनारों में न कुड़ में १०,००० टन, रेल इंजनों में १७५ से ४००, ट्रेक्टरों में न कुड़ में २००० सवारिकों में १२,००० से २०,००० और मोटर डेलों में १२,००० से ४०,०००, जीप गाड़ियों में न कुड़ में ५,०००, बहाय निर्माण में ६००,००० टन (१९५१-५६) से ८००,००० टन (१९५६-६१) ।

१९६०-६१ तक औद्योगिक क्षेत्रों में प्राप्त होनेवाली प्रविष्टत वृद्धि भी साधारण तौर पर यथेष्ट प्रमावशाली है । अधिकतर क्षेत्रों में सतप्रतिशत में अधिक और कुड़ में दो से तीन से प्रतिशत तक वृद्धि की योजना बनाई गई है । योजनाचल में देश के अंदर बनाये जानेवाले औद्योगिक क्षेत्रों के मूल्य में भी ५-६ गुनी वृद्धि होने की आशा की जाती है ।

इसके अतिरिक्त भूमि सुधार के प्रस्ताव भी हैं, जेने भूमि धारण की अधिकतम सीमा निर्धारण करना, रफ्तान में कमी, सान्तावादी भूमि सम्पत्तियों को नियमित कर देने सहायता करने में निराल और कृषि पुनरुपटन में नई सम्भरनाओं का कार्य

प्रचुरता की योजना

सोचना यदि उत्साहपूर्वक इनपर कार्यवाही की गई तो यह सोचने मुश्किल भी प्रामाण्य स्वरूप की क्या शक्ति क्या करने है, एक ऐसा समय जो पहले चलार नाल सेठों की उन्नति में भी महाप्राय के समान है। क्योंकि भारत को अर्थों में ही अपनी राष्ट्रीय उपज का आधा भाग प्राप्त होता है। विद्यमान उद्योगों की स्थापना में भूमि और उन्नति उपज में भारी परिवर्तन हो जायगा।

यह वितरण योजना (वितरण इमलिये कि पूँजीजीवियों की राजनैतिक सत्ता में इसे प्रस्तावित किया है) अनेक परस्पर विरोधी आकांक्षाओं का केन्द्र रही है और रहेंगी। मुख्य रूप से यह वैपरीत्य निम्नलिखित सन्तुष्टियों पर है, जैसे सार्वजनिक और निजी उद्योगों का समुदाय हिस्सा करने और महत्व, योजना के लिये धन प्राप्ति के स्रोतों, घाटे के वित्तप्रबंधन की सुरक्षित सीमा, बेकारी, भूमि-सुधार, भारी उद्योगों के प्रसार और गन्तारण के लिये अनुदानित और उत्पन्न धन का वितरण।

पी. सी. महालनोबिस ने अपनी मूल योजना के अक्षर में सार्वजनिक विकासियों के लिये कुल ₹ ४,२०० करोड़ प्रस्तावित किये थे। औद्योगिक प्रकार कुल राशि का २५ प्रतिशत अर्थात् १,१०० करोड़ सोरु लेना, जिसमें उद्योगों के अर्ध १,००० करोड़ की वार्षिक या स्थिर पूँजी होनी। सरकारी सहायता के परस्पर औद्योगिक विनियोजन के निजी क्षेत्र में ₹ ४०० करोड़ तक पहुँचने की आशा थी।

सर्वसाधारण लिये योजना अक्षरों में प्रस्तावित करने से पहले ही अर्थों में विद्यमान प्रतिस्पर्धावादी तत्त्वों द्वारा इसकी अत्यधिक आलोचना आरम्भ हो गई। औद्योगिक प्रकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में निष्पन्न विनिर्माण करने के क्षेत्रों के रूप में उन्हें भारतीय एकाधिकारी हितों के लिये एक सारा दीया।

सार्वजनिक क्षेत्र में नष्ट करना तो लक्ष्य स्वीकार कर लिया गया था। साथ ही क्षेत्रीय मध्यम पूँजीजीवियों ने इस विचारधारा का कोई विशेष विरोध नहीं किया। इस कारण भी पूँजीजीवियों में उल्टी विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, जिसपर उन्हें मध्यमवर्गीय समर्थन प्राप्त होने की आशा थी।

अन्य तो घाटे के वित्तप्रबंधन के अंतर्गत रेखांकित किया गया। यह तर्क उपस्थित किया गया कि अत्यधिक आकांक्षापूर्ण विनियोजन अर्थों पर प्रभाव निम्नलिखित

घन होगा और पचासवस मुद्रास्फीति और तानाशाही नियंत्रण-व्यवस्था स्थापित होगी। मध्यम पूँजीजीवियोंके जब अपने सामर प्रतिक्रियाओंसे सम्मोहना दिखता है परी, तो उन्होंने भयमल होकर अन्वीक्षात्मक योजनाके आसपास आगे बढ़नेमें समर्थन देना बंद कर दिया। योजनाको सन्तुष्टि करनेकी रीति उधर जाने लगी।

इसके बाद हमारा दाय लगाया गया। यह दोष दिया गया कि सार्वजनिक क्षेत्रके प्रस्तावित प्रकार द्वारा निजी क्षेत्रको गर्हनिष्ठा देकर निकाला जा रहा है और इस कारण वैयक्तिक उद्यमियोंको विचारके लिये पर्याप्त स्थान प्राप्त न हो सकेगा। सार्वजनिक क्षेत्रकी ऐसी निन्दा नीतिनिर्माण नहीं करी जा सकती, क्योंकि इस बातची सम्भावनामोह सार्वसाधारणका ध्यान आकृष्ट हो चुका था और उसने मध्यम पूँजीजीवियोंको भी प्रलोभित कर लिया था। एक ओरसे तो सरकार सरकारके विचारमें साक्षात्कार और विशेषरूपसे रेलवेके आसटनको आलोचनाका एजन्टा विषय बना लिया गया था। वैयक्तिक उद्यमोंका लाभ और व्यापार-विस्तारका व्यवहार देनेके लिये साक्षात्कारकी वजह आवश्यक थी। यदि रेलवेकी संपूर्ण आवश्यकताएँ पूरी कर दी जाती तो सार्वजनिक क्षेत्रके अन्य उद्योगोंके लिये बहुत कम राशि बचती और पचासवस योजनाको सन्तुष्टि करना पड़ता।

मध्यम पूँजीजीवी, जो अनेकों राज्य नियमित वित्तीय निगमोंद्वारा व्यक्तिगत उद्यमोंके लिये अधिक धन आवंटित करवानेकी योजना पहलेसे ही बना रहे थे, स्वाभाविक रूपसे अपना भाग बढ़ानेके इच्छुक थे। अब तो नवगठित भाषिक इकाइयोंकी तरफसे और विचारमंथन द्वारा अधिक हजार हजारों जा करनेकी सम्भावना थी। इन प्रकार व्यक्तिगत क्षेत्रको औद्योगिक विद्यमानके लिये अनुमानिक रूपसे अधिक बड़ा भाग दिये जानेकी रीति, जोर पकड़ने लगी।

व्यापारिक सत्ताकी आयेके महत्वपूर्ण साधन, बीमा कंपनियों और व्यक्तिगत संचालित नौके आकस्मिक और अप्रसन्नित राष्ट्रीयकरणने टाटा-विदला सरोखे एकधिकारियोंके हाथमें मध्यमवर्गको हटानेके लिये एक अन्य रास्ते सीप दिया शरपि बीमा व्यवसायके राष्ट्रीयकरणका प्रभाव एकधिकारी तत्त्वोंर ही पड़ा था और मन्त्रिमन्त्रि इसके द्वारा मध्यम पूँजीजीवियोंको अधिक तरफको धन प्रस्तुत हिये

प्रचुरता की योजना

जा सहनेही आशा थी, तथापि यह धारणा सफलतापूर्वक उत्पन्न की जा रही कि जब तक द्वितीय पंचवर्षीय योजनामें पर्याप्त परिवर्तन नहीं होता, तब तक यह समस्त पूँजीजीवी वर्गके हितोंके लिये भयान एक कारण रहेगी।

• योजनाके प्रारम्भमें प्रथम महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस बातकी घोषणा करनेके साथ-साथ कि लक्ष्योंको पूर्व निर्धारित करके योजनामें वित्तीय क्षेत्रोंकी खोज करनेमें भूल की है, प्रतिक्रियावादियोंमें इस भौतिक योजनाकी "साम्यवाद से प्रभावित" कहकर आलोचना की और इस बातपर बल दिया कि औद्योगिक लक्ष्योंकी कम किया जाय। परिवर्तन आरम्भ हुआ। योजनायंत्रके आवंटनमें रु १०० करोड़में अधिक वृद्धि की गई अर्थात् इस राशिमें रु ११२० करोड़में बढ़ाकर रु १३०५ करोड़ कर दिया गया। इस प्रक्रियामें सर्वजनिक विनिमोचनका कुल योग रु ४३०० करोड़में बढ़कर रु. ४,८०० करोड़ तक पहुँच गया। भारी उद्योगोंकी विशेष कटौती सहनी पड़ी और रु २०० करोड़ लागतवाले सरासि निर्माण-उद्योग कार्यक्रमको हटा ही दिया गया। अन्य परिवर्तन छोटे मोटे थे।

व्यवहारिक शब्दोंमें इसका परिणाम तीन भारी औद्योगीकरणकी रोकना, भविष्यमें नई नीतियोंकी सम्भावना घटाना तथा बड़े पूँजीजीवियोंके जीवन-कालको बढ़ाना था।

विरोध गम्भीरताकी बात बेकारीकी समस्या पर पूरा ध्यान न देना था, जिसकी ओर प्रारम्भके दृष्टिानेत्रोंमें अपने आलोचकोंका ध्यान आकर्षित किया था। देशकी अर्थव्यवस्थाके तत्सम्बन्धित आंकड़ोंके गैर सरकारी विभाजनमें यह चेतावनी सन्निहित है -

वर्ष	कामगार	अश्रित बेकार
१९०१	५०१	४६६
१९११	४६६	५०४
१९२१	४८६	५१४
१९३१	४७०	५३०
१९४१	३६६	६०१

वस्तुतः पूर्ण लाभकारी कार्योंमें लगे दोनों कामगारोंकी संख्या का अनुपात कृषि निपयक और कृषिके अलावा अन्य क्षेत्रोंमें बिलर फिर रहा था।

समस्याका केवल ऊपरी स्तर

वर्ष	कृषिविपणन क्षेत्र	कृषिके आजीवा अन्य क्षेत्र
१९०१	३१.०	१८.६
१९११	३४.२	१५.१
१९२१	३३.२	१५.४
१९३१	२६.२	१७.८
१९४१	२८.६	११.१

यह भी स्वीकार किया जा चुका है कि सामान्य तौर पर प्रत्येक १००० ग्रामनिर्भर व्यक्ति केमे २,५०० अन्य व्यक्तिगोच्य पालन करते है, जो लाभकारी कार्योंमें नहीं लगे हुए हैं। यानी हुई जनसंख्याकी दृष्टिमें समग्र १०,०००,००० क्षतिरहित स्थान निवासके लिये मूल सत्य भी समस्यका केवल ऊपरी स्तर ही था। योजनाके परिवर्तनमें केसरी - निवासगृहके लक्ष्यमें अधिक दूर कर दिया है।

नौकरोंके सदस्यों की भी तरफ दुहरा दिया गया है अर्थात् ११०-१२० लाख स्थानोंमें घटाकर ८० लाख कर दिया गया है। निम्न निम्न निम्न प्रकार है -

(संख्या लाखोंमें)

१ निर्माण	२१.००
२ निर्माण और निगम	०.४१
३ रेल	२.४३
४ अन्य सामान्य एव सार	१.००
५ उद्योग और प्रगति पदार्थ	५.५०
६ कृषि और लघु उद्योग	४.५०
७ बन, मछली, राष्ट्रीय विस्तार सेवा और अन्य सम्बंधित परिवर्तनार्थ	४.१३
८ शिक्षा	१.१०
९ स्वास्थ्य	१.१६
१० अन्य मनान-नैवार्य	१.४२
११ सरकारी सेवाओं १ से ११ तक	४.३४
	५१.६६
१२ जोड़ो व्यापार और वाणिज्यकी शामिल करते हुए अन्य वार्षिक दर - योग्य ५२ प्रतिशत कुनवी	२७.०४
	५६.७३ या ६ लाख०

प्रचुरता की योजना

सम्भवतया हमने अधिक अवसर दे प्रस्तुत भा नहों कर सकते थे, क्योंकि औद्योगिक उन्नति की प्राथमिक स्थिति में अधिक नौकरियों की गुमाश नहीं रहनी। इसमें तो समस्या के दीर्घकालीन निराकरण में सहायता मिलनी है। वैज्ञानिक योजना निर्माण की सदैव यही समस्या रही है। इन समस्या का एक गलत प्रयत्न आगे चलकर परिस्थिति में उत्पन्न करना है तथा बेकारी की समस्या को सुधार के स्थान पर विनाश करना है।

उत्पादक कार्य प्राप्त करने के लिये धन की जिन वस्तु की आवश्यकता है, वह है काम के औजार और उपकरण। अविक्तित देशों में इन्हीं वस्तुओं की कमी होती है। यही कारण है कि बेकारी-समस्या के दूरता निराकरण हेतु पूँजी प्रतिष्ठानों का इतना भारी महत्व है।

पूर्वकाल में विकसित देश पिछड़े देशों में पूँजी उधार देकर उन्नति में सहायता करने के लिये तैयार रहते थे, लेकिन तभी जब कि इसमें उनका हित-साधन होता हो। इस तरह, जिन घनिष्ठों की जरूरत स्वयं औद्योगिक देशों की पड़ती थी, उनके उत्थान के लिये तथा ऐसे ही और कबे सामान के विनाश, उसको जानेनाले मानायात और कबे सामान के बने उत्पादन को उपाने के लिये नये बाजार खोलने को पूँजी और उपकरण उधार दिये गये। यह सब विदित है कि अविक्तित देश ऐसी पूँजी किन शर्तों पर और किन सामाजिक मूल्य पर प्राप्त कर सके।

यदि प्रगतिका लक्ष्य प्राथमिक रूप से जनता का ही लाभ हो तो पूर्णरूपेण भिन्न प्रकार की योजना बनानी चाहिये। उसे भागी उद्योग और मशीन निर्माण में कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में मशीन और अच्छी टेक्निक की सहायता में विभिन्न क्षेत्रों की उत्पादकता में क्रमिक वृद्धि और अपसर होना चाहिये। भविष्य में ऐसी प्रगतिके लिये योजना प्रारूप में गहरी नींव रखी गई है, जिसमें सुकेत है कि वास्तविक पूँजी रचना और स्थायी उत्पादक शक्ति बनाने के लिये रु ३,४०० करोड़ की उल्लेख्य निष्ठा आवश्यक, जिसमें निरंतर उन्नतिका आधार प्राप्त हो सके।

लेकिन सरकार पर सभी प्रकारके दबावका प्रभाव पडा और हम प्रक्रियामें कुल लागत रु ४,५०० करोड़में ऊपर निम्न रह गई है तथा उसके और भी अधिक घटनेकी पूरी आशा है । भारतवासियोंकी सामर्थ्यसे देखते हुए यह बहुत कम है, लेकिन सरकारके वर्तमान अन्य साधनोंसे देखते हुए बहुत अधिक है, क्योंकि सन्निधि और राजनैतिक बचन-बद्धता और उत्तमनाने यह सीमित हो जाती है ।

यहाँ यह बताना चाहिये कि यद्यपि आयोगजिन उद्देश्यमें बार-बार कृति की गई थी, तथापि उसका लक्ष्य योजनाके मूल उद्देश्यको आगे बढ़ाना नहीं था । अब जिन भारी व्ययका प्रस्ताव किया गया है, उसमें पूँजी निर्माणकी व्यवस्था मूल योजनाकी प्रस्तावित राशिये भी कम है, जो आर्थिक प्रगतिको निश्चित करेगी ।

लेकिन समस्त योजनाकी शोरमें ओल्ले बट्ट दिखे हुए बिजली प्रतिक्रियाने हम प्रश्न पर सतर्क जागे रहा कि रु ४१,०० करोड़में बढाकर रु ४८,०० करोड़ किया जानेवाला उद्देश्य किस प्रकार निरतिन किया जाय । स्वभावतया हमका मुख्य उद्देश्यराज्य संचालित औद्योगिक प्रमाणों से प्रेरित करके निष्पत्ति करना तथा अर्थ-व्यवस्थाके औद्योगिक आधारको अतर्पित करनेके लिये विनियोजनका ऐसा ढाँचा ढोपना था, जो पैसेवालोंकी आवश्यकताओंसे पूरा करनेके लिये सभी तरहके उपभोक्ता सामानकी अधिक प्रस्तुत करनेका विश्वास दिलाने जानेके कारण अधिक आकर्षक मालूम पड़े, लेकिन जो वास्तविक उन्नति और अधिक उत्पादक शैलीके अवसर घटाना हो ।

योजनाके अंतर्में जिनकी नीकरियोजना विश्वास दिनाया गया है, उसमें यथापूर्व स्थित बचत रखने और बेचारीकी समस्याको अधिक न बिगड़ने देनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । जिन नये स्थानोंको बनाना है, उनके विवेचनमें यह पता चलता है कि अर्थ-व्यवस्थाके वर्तमान ढाँचे पर कोई लाभ प्रभाव नहीं पड़ेगा और अन्य उन्नादक या अनुनादक व्यवस्थाओंमें लगे हुए लोगोंके अनुमानमें कोई परिवर्तन नहीं पड़ेगा ।

प्पान देने योग्य बात है कि अविद्यमान काम दिलानेकी एकमात्र मदकी सख्या १२—“ व्यापार और वाणिज्यकी शामिल करते हुए अन्य कार्य हैं । ” विज्ञाने जन-

प्रचुरता की योजना

गणनाके समय विभिन्न व्यवसायोंमें लगे हुए आदमियोंमें भी वितरण लगभग इसी अनुपातमें था । वस्तुतः इस अनुपातको जनगणनामें ही लिया गया है और नौकरीके अवसरोंका अनुमान भी इसी आधार पर लगाया गया है कि वह अनुपात अपरिवर्तित बना रहेगा ।

प्रणालिके लिये यह आवश्यक है कि लोगोंको उत्पादक कार्योंमें अधिकारिक सङ्ख्यामें लगाया जाय और अनुपादक कार्यों तथा व्यापार और वाणिज्यके क्षेत्रमें भोज भाव करनेवाले लोगोंका अनुपात निरन्तर घटाया जाय । अब कि योजनाके प्राप्तिमें व्यापार और वाणिज्य प्रत्येक स्थानके विपरीत औद्योगिक क्षेत्रमें दो स्थान रखे गये थे, वहाँ योजनाके अन्तिमरूपमें यह अनुपात उलट दिया गया और अब व्यापार और वाणिज्यके दो स्थानोंके सुकाबलेमें औद्योगिक क्षेत्रमें स्थान रक्खा गया है ।

इस योजनामें नौकरीके स्थानोंका लक्ष्य न्यून और अपर्याप्त होनेके साथ साथ काफी बचानर दिखलाया गया है । नये बनाये जानेवाले स्थानोंमें अनेकोंके रूप परिवर्तित स्थान होनेका संदेह है ।

उदाहरणमें पड़े तथा नये भाषावी राज्योंमें भारी शक्ति प्राप्त होनेकी उत्पन्ना करनेवाले मध्यम पूँजीजीवी हैतन थे कि किस ओर रुढ़म बढ़ाया जाय । यदि वे सरकार चालित भागी औद्योगिक कार्यक्रमों पर करनेमें सौम्यता समर्थन करते हैं तो उन्हें अपने क्षेत्रमें बलायें आनेवाले सरकारी उद्योगोंमें प्राप्त होनेवाले लाभोंमें वचिन होना पड़ेगा । वस्तुतः उन्हें अपने आरक्षी बड़े-बड़े निजी संचालकोंकी धुनके भराने मौल्य पद आयगा ।

योजनाके विषयमें होनेवाली आलोचनाका प्रतिकार करने, और उमके ढागनो रोक्नेके लिये नेहरने एक नयी औद्योगिक नीतिकी घोषणा की । यह समय अपर्याप्त अप्रैल १९५६ बरस मीनेका था, क्योंकि इस समय मतभेद पूरे जोगे पर थे ।

इस प्रस्ताव द्वारा १९५८ की पूर्व घोषणामें सुधार किया गया । सार्वजनिक क्षेत्र सूचीमें कुछ नये उद्योगोंकी जोडा गया । तथापि यह कहा गया कि व्यक्तिगत क्षेत्रको

राष्ट्रपूर्ण होने दिया जाएगा और विशेष परिस्थितियोंमें उन्हें उन क्षेत्रोंमें भी कार्य करनेकी अनुमति दे दी जाएगी, जिन्हें सार्वजनिक क्षेत्रके लिये अनुरक्षित कर दिया गया है।

इस प्रस्तावका छोटे-बड़े सभी व्यापारिक क्षेत्रोंमें हार्दिक स्वागत हुआ। यह स्वागत केवल इस मुक्तिमें होनेवाली प्रमत्तताका सूचक था कि अन्ततः सरकार अपने संचालन क्षेत्रमें सीमित करनेके लिये विवश कर दी गई। क्योंकि उस समय अग्रिमतर लोगोंमें यही धारणा थी कि भारी परिवर्तनोंकी योजना बन रही है। इस प्रस्तावका अर्थ यह धारवाचन माना गया कि राज्य-संचालित सार्वजनिक क्षेत्र, व्यक्तिगत उन्माहवर्षोंके अघोषित रोड़े रोड़ नहीं लायेगा। क्षेत्रीय मन्थन पूँजी जीवितोंने सोचा कि उन्होंने सरकारको बहुत आगे न बढ़नेकी चेतावनी देकर बहुत टीक किया है।

लेकिन एकधिकारी तत्वोंने अपना आक्रमण जारी रखा। उन्होंने रेलवे और जालायातके लिये अग्रिम आन्दोलनकी इस आधारपर मींग की, कि तीव्र विचामरौख अर्थ व्यवस्थाकी आवश्यकताओंकी पूर्ति हेतु वर्तमान सुविधायें अपर्याप्त हैं। इसके लिये इ ४०० करोड़ अतिरिक्त दिये गये थे। फिर भी वे सन्तुष्ट नहीं थे। योजना आयोगमें त्यागपत्र देनेकी भी धमकी दी गई थी। जालायातके लिये इतनी भारी बिनाका राण्ड बुद्ध तो स्वार्थ पूरा था, क्योंकि निजी क्षेत्रोंमें जालायातकी प्रगतिके पथान नये जालोंमें लाभकी संभावनायें दीर्घी तथा बुद्ध यह भी कारण था कि वह एक रोग परदा था, जिसकी आइमें उन्हें देशकी राज्य संचालित तीव्र औद्योगिक प्रगतिके अन्तर्गत करनेकी आशा थी। यह अभियान जारी है लेकिन अब यह धाना पक गया है। वास्तविकता अब पूर्ण स्पष्ट दीजती है।

यदि रेलोंके पात्र द्वितीय योजनाकी आवश्यकताओंकी पूरा करनेके लिये धन नहीं है तो वह रियायतें और बुद्धीके दरम्यान रियायतें लागू की टिकट जारी करके इतन भारी चुकानन सहन क्यों स्वीकार करती है। वे जालायातके दिव्योंकी सख्या बढ़ाने तथा पूर्ण जालायातकी गति आती करनेके प्रश्न पर इतना ध्यान देनेका क्या

प्रचुरता की योजना

कारण बनता सकते हैं, जिसे युरोपीय पर्यटकोंने विज्ञान-यात्रा के प्रेरक माध्यम बनता है। क्या रेल द्वारा तीथारी यात्रा का प्रवेश योजना के अन्तर्गत यातायात का परमार्थिक कार्य नियंत्रित किया गया है? क्या दिनों-दिन बढ़ती अनुशासना वर्तमान सुविधाओंके पूर्ण प्रयोगको अवरोधित नहीं करती? दुर्गम स्थान विज्ञानियों की क्या आवश्यकता है, जब कि आसानीसे लगाई लूप भी यही कार्य कर सकती है? यदि चीन अपने देशमें स्थित सीमित रेल मार्गोंपर अंधाधुन व्यय किया जाता है अपनी अर्थ-व्यवस्था और व्यापारको उत्पत्ति कर सकती है, तो भारतको क्या बाधा है।

यह प्रश्न और इसी प्रकारके अन्य प्रश्नोंका आगामीमें उत्तर नहीं दिया जा सकता। साथ ही परिवहन और संचारके लिये पूर्व स्वीकृत व्यय अर्थात् ₹ १३५५ करोड़ या जो कहिये कि कुल उद्देश्य का लगभग २६ प्रतिशत, किसी एक बाधके लिये अधिकतम आवंटित गरि है, और फलस्वरूप योजनाके अन्य भागोंको पूर्ण तरह से रोकना पडा है। अधिमाने १०० करोड़ भी रेलोंपर इतना अधिक व्यय नहीं किया जा।

एक अन्य आश्चर्यजनक आशुष, अन्य मोर्चोंके लिये अधिक, आवंटन का मार्ग है तथा १९५६ में मूलतत्वात्मिकी मूल्यवृद्धि इस मोर्चके प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत की गई।

सभी इह प्रकारकी कूटनीतिकोका उपयोग हो रहा है। यहाँ तक कि गणराजित "स्वतंत्र व्यवसाय मंच" की ओर से समाचारपत्रोंमें साधनहीन पूर्वापानियोंकी दुर्गवस्था दिगंतानोंके लिये विज्ञापनोंके द्वारा बर्दाभी पुकार उठाई जाता है। इन 'मंच' के प्रमुख पृष्ठोपरक भारतीय एकाधिपति और विदेशी व्यापारिक संस्थान है। याने सामें ये अधिकतर मध्यम वर्गों भी ले लेने हैं, क्योंकि अपनी सभ्यतामें ये लोग सोचते हैं कि जिन क्षेत्रोंमें प्रवेश करनेकी ओर उनकी आंखें लगी हुई हैं, उनमें सरकारी दखलती रोकनेके लिये कुछ न कुछ अवरोध आवश्यक है। 'गठबंधन' कितने दिन रहते हैं, यह इसी बात पर आधारित है कि बड़े पूंजी-जीवियों और विदेशी व्यापारियोंकी इत्कार शुभारम्भोंका साम्नाविक उद्देश्य, योजनाके प्रतिपादक किन्तु जन्मी खोजते हैं, क्योंकि सीमेटका राज्य द्वारा व्यापार करते

योजना के उद्देश्य की विधायकता

और राज्य संचालित इस्पात वितरण कार्यों के क्षेत्रों में लेने में छोटे-छोटे औद्योगिकों को अनेक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

इस आक्रमण की सम्भोला इसी बातों पर स्पष्ट हो जानी है कि आरम्भ में क्या विचार थे और अब उनका विचार क्या बना है। भारतीय और विदेशी अर्थशास्त्रियों एकमत से समर्थन प्राप्त महासन्मेलन द्वारा निर्धारित योजना-भोति में सभी भारी उद्योगों तथा अन्य महत्वपूर्ण उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आवंटित कर दिया गया था। योजना के प्रारम्भ में उद्योग हेतु आवंटित रु १,४०० करोड़ में से रु १,००० करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र के लिये और रु ४०० करोड़ निजी क्षेत्र के लिये नियत किये गये थे। इन रु ४०० करोड़ में से भी आधी राशि तत्पु एव कुटीर उद्योगों के लिये थी। लेकिन अब उत्कलन एव उद्योग हेतु सार्वजनिक क्षेत्रीय निर्यातों को घटाकर रु २६० करोड़ करने का निश्चय हुआ है, जब कि निजी क्षेत्र में एतदर्थ आवंटन बढ़ाकर रु ७०० करोड़ कर दिया गया है।

दुसरी बात है कि देश के वैज्ञानिक योजना समर्थक महासन्मेलन द्वारा रचित मूल योजना के प्रारम्भ के पक्ष में जनमत का निर्माण न कर सके। यदि वे ऐसा करते तो इस बात की पूरी आशा थी कि एकाधिकारी हितों के नेतृत्व में किये जानेवाले आक्रमण के सामने सरकार को घुटने न टेकने पड़ते। साम्यवादी पार्टी भी सम्भावित आन्तकर्मियों को रोकने के लिये सार्वजनिक जनमत संग्रह की आवश्यकता को न देख सकी।

संनतता, यह आत्मसमर्पण भी प्रथम योजना की अपेक्षा प्रतिकूल थी। और इसका एक मात्र कारण यह है कि योजना का स्वयं अधिक सुस्पष्ट है तथा राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के मूल केन्द्रों पर कम्पन या शीघ्रता से नियंत्रण प्राप्त करने की आवश्यकता को अधिकतर स्वीकार कर लिया गया है।

इस नुस्खा योजना के उद्देश्य की विनीय पूर्ति कैसे होगी? वर्तमान संभवनाओं को गंभीर रूप से दुष्ट, आशा, उन पर विचार कर लें।

प्रचुरता की योजना

रु (करोड़में)

१ सालू राजस्वमें वचत	८००
(क) (१६५१-५६) में विद्यामान करों दामे	३६०
(ख) अनिरिक्त कर	४५०
२ जनतामें ऋण	१२००
(क) बाजार ऋण	७००
(ख) अन्य वचत	५००
३ अन्य आय—व्ययके साधन	४००
(क) विकास कार्यक्रममें रेलोंका अलुदान	१५०
(ख) निर्वाह निधि तथा अन्य कोष	२५०
४ विदेशी साधन	८००
५ बाटेका वित्तप्रबंधन	१२००
६ रिक्तता जिसकी पूर्ति स्वदेशी साधनोंसे अनिरिक्त उपायों द्वारा करनी है ।	४००

योग ४८००

द्वितीय योजनाके लक्ष्य प्राप्त करनेके लिये रु १,२०० करोड़ तक बाटेके वित्त-प्रबंधन और रु ८०० की विदेशी सहायताका विरगम किया गया है। इसे रु २,००० करोड़ तक 'रिक्तता की पूर्ति' कह सकते हैं। इसके साथ रु ४०० करोड़की बतलाई गई 'रिक्तता' की जोड़नेसे कुल योग रु २,४०० करोड़की हो जाता है। अर्थ-शास्त्रियोंका विरवास है कि योजनाके लागू होनेके परवाज इस राशिमें द्रष्टे वृद्धि हो जायगी। इसे ढूँढ़ना ही पड़ेगा, अन्यथा देशको गम्भीर आर्थिक सकटका सामना करना पड़ेगा।

तथापि यह धारणा बनानेका कोई कारण नहीं दीखता कि यह राशि अथवा हमने अधिक राशि अग्रह्य होगी। बाटेके वित्तप्रबंधनकी नीति निरिचन करने अनावश्यक आकांक्षा-पूर्ण नहीं है, बरने कि सरकार आवश्यक उपाय करनेमें तैयार हो। जहाँ तक विदेशी सहायताका प्रश्न है, शानि और सद्भावनासे परिपूर्ण नवीन अन्तर्गर्तीय

वायुमंडल निश्चित रूपसे आर्थिक सहायता प्राप्तिको सुनिश्चित बनाता है, विरोध तोरफ उम ममय अब कि भोविष्य सचने यह सष्ट घोषणा कर दी है कि भारतीय भागोंको पूरा किया जायगा ।

‘रिचला को पूर्ण’ विनाश कोई कारण नहीं है, बल्कि बिना इस बातकी ही है कि मूल्यों पर नियंत्रण रखनेके लिये क्या आवश्यक उपाय लिये जायें । घाटेके विस्तारबधनका दुःप्रभाव विदेशी महानता तब तक दूर नहीं कर सकती, जब तक कि योजनाके मूल उद्देश्यका बलिदान न कर दिया जाय । इस बातको अग्रणी तरह समझ लेना चाहिये ।

आत्मकल मात्र तोष हलने ही कम है । साथ ही औद्योगिक विस्तार हेतु किया जानेवाला भागी परिचय प्रणालीको आरम्भिक अवस्थामें उपभोक्ता वस्तुओंकी उत्पत्तिमें कोई विरोध वृद्धि नहीं कर सकता । मुद्रास्फीयता भय सनन विद्यमान है । योजना-प्रमुख इस बातको समझनेका कोई प्रयत्न करते नहीं दिखलाई पड़ते कि अन्त-आयातमें विदेशी विनिमयके अवयव द्वारा अथवा योजना कार्यक्रमके अन्य भागोंमें उलट फेर करके मित्त-उद्योगके तदर्थ प्रसार द्वारा अन्न और वस्त्रके मूल्यों की निर्वोद मूल्यपर, रोक नहीं लगाई जा सकती । अब साधारणके जीवनकी न्यूनतम आवश्यकताओंकी पूर्णता सुनिश्चित करनेके लिये वे कठोर सत्यने और वितरण पर नियंत्रण करनेकी आवश्यकताको अनिश्चित बात तक स्थगित नहीं करते रह सकते ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजनाके सम्बन्धमें अग्रणी तर्क करते हैं कि जब किसी भारतीय परिवारमें बच्चा होने है तो परिवारमें स्वस्थ सखे पहले बच्चेका कय वृद्धता है और उसके पश्चात् बीमारियोंको दूर करनेके लिये भेषजों एवं औषधियोंकी और आपर्ण होता है । यदि हम इन अष्ट सिद्धांतों को स्वीकार कर लें, तो भी इस बातकी क्या गारंटी है कि लोगोंकी आवश्यकताके अनुसंधान कये और औषधियों वन वैज्ञानिक उपायों की जायेंगी जिनपर लोगोंके व्यापक अधिकार हैं ।

बच्चेका ही प्रयत्न से लीजिये । उत्पादनमें भारी वृद्धि होगी, लेकिन यदि पूर्व अनुभव, विशेषरूपसे मुद्रास्फीयता अनुभव संकेतक हों, तो इसी बातकी संभावना है कि वस्तु-उद्योग अच्छे प्रकारके और ऊँचे मूल्यके वस्तुओंके बनानेके विषयमें ही

प्रचुरता की योजना

सोचें, क्योंकि हममें अधिक लाभही गुंजाइश होती है। इस उद्योगको प्रतिमानित ढंगके सन्ने कपड़े बनाने पर विवश करनेके सभी प्रयत्न निष्फल हो चुके हैं, क्योंकि मिलमालिकोंके स्वार्थ उद्योगकी प्रगति और तराफ़ि 'भले मानसोंके समझौतोंके पालनसे बचनेकी बड़बोलाजी इन प्रयत्नोंसे निरर्थक कर देती है।

बन्द-उद्योगके अधिपतियोंकी गणनामें सन्ने और टिगाऊ कपड़े बनानेकी आनन्दप्रस्था महमूय करनेके कोई चिन्ह नहीं दिखलाई देने। शेरार बाग़ारके आरुखों पर दृष्टि डालनेसे यही प्रतीत होता है कि प्रचुरता प्राप्त होनेवाली है। इसमें आनन्दप्रस्था कोई बाध नहीं है, क्योंकि प्रतिमानित बस्तुनिर्माण तथा उत्पादनमें अन्य प्रणाली नियमित करके बस्तुके मूल्य बढानेकी बाध तो दूर रही, मरकार इस बाधको मुनिश्चित करनेकी न तो इच्छा ही रखती है और न यह ऐसा कर ही पाती है कि हर माधोग द्वारा निर्धारित उचित लाभ पर रुक जाके।

योजना हानप्रस्था और खादीके उत्पादन द्वारा दरमं रूपसे पूर्ण बसाना चाहते हैं और लाभ ही लाभ यह भी दिखलानेमें सफल हो जाते हैं कि परिणाम स्वल्प लागों आनन्दप्रस्थाको काम मिल जायगा। यह सही कदम है, जिसे ओद्योगीकरणकी ओर अग्रसर होनेकी प्रक्रियामें किसी पिछड़े हुए देशको लेनेका पूरा आश्रय है। तथापि यह बाध भी ध्यान देने योग्य है कि हाथसे बने और खादीके कपड़ोंमें मूल्य अन्तर मिलोंमें बने कपड़ोंमें अधिक होता है। दूसरे शब्दोंमें देना भी अन्तर चरगा इन कठोर अर्थिक तन्त्रकी अपेक्षा नहीं कर सकता कि हाथसे बनी चीज मशीनेमें बनी चीजकी अपेक्षा कभी रास्ती नहीं हो सकती। योजना यदि चाहते हो कि द्वितीय योजना कालमें बननेवाली अतिरिक्त कयशक्तियां कुछ उपयोग बखोमें हो, तो उन्हें राजसहानता बखानी पड़ेगी, लेकिन यह बात तब तक पर्याप्त नहीं हो सकती जब तक कि इन दोनों दोनोंका उत्पादन नियंत्रित किएणकी विभी सामान्य योजनामें विनियन न हो जाय।

इसके अतिरिक्त हाथसे और खादीके कपड़ोंके उत्पादनमें अभिवृद्धि करने-वाले लाखों आनन्दप्रस्थाको स्वयं अपने लिये उग सम्मानकी आवश्यकता होगी, जिसे वे अपनी कयशक्तिके अभावमें अब तक प्राप्त नहीं कर पाते थे। निश्चित रूपसे वे केवल कपड़े और औपचारिकोंमें ही संतुष्ट नहीं रहेंगे। मण्डिके दर्शन करने-

कुपैसे निकलकर खार्चमें कूदना

वाने प्रभाण क्षेत्रोंमें भारी समस्यां नेन्त्रित होनेके कारण संभावना यही है कि उनके विचार वृत्तिके अच्छे औजारों और उपकरणोंको प्राप्त करनेकी ओर धन्युव हों । यदि मत्र बाते धीक सरहमे होनी हैं तो गोंवोंमें अनिरिक्त धन प्राप्त होनेके उपरान्त योजनाओंको इन मौलिक गंधीरतापूर्वक सामना करना पड़ेगा । इसके अनिरिक्त धनको उत्पादकताओंमें प्रवाहित करनेके लिये सफ्टिन प्रयत्नकी आवश्यकता है, जिने अब तक हाथमें नहीं लिया गया है ।

मेयजों और औद्योगिक प्ररन तो एक उदाहरण स्वरुप है । राज्य रोगणु-नाराक और शुल्ननोर्गधक आदि मेयजोंके सस्ते उत्पादनको हाथमें ले सकता है, लेकिन अब तक उमने आगिने अधिक निदेशी साधनोंके आधार पर बनाने आवश्यकताओंको पूरा करनेकी ही योजना बनाई है । यदि इस मदके अंतर्गत होनेवाले भारतका अनुमानित मूल्य देखें तो यह रकम र २० करोड़ प्रतिवर्षके लगभग बैठेगी और खरोदनेमें समर्थ होने पर आपायकोंके बाजारमें भीष्माड करने-वाले लाखों व्यक्तियोंके आनेपर क्या होय ? धार इस मौलिक पथप्रदर्शित करनेके लिये स्वास्नवेचाम नहीं है । ऐसे अनंघे उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

अधिकतिन भारतमें सामाजिक व्यवहारके ढंग और आगे जिने चलके हुए हैं, उनको देखन हुए योजनाओंकी सभी सगणना गलत हो सकती है, क्योंकि पाडेका विन्धप्रधन सब तक मदैव अज्ञात शक्ति ही रहेगी, जब तक कि कय-शक्तिको निर्देशित और नियंत्रित करनेके लिये कोई प्रयत्न नहीं किया जाना । सुतुलित मन्त्रिज्जने योजनानुसार विज्ञान-हीनोका अधिष्ठान ध्यान रखते हुए यह कार्य जानबूझ कर करना आवश्यक है । मुद्रास्फीन विरयक सभी शान उपचारोंकी केवन हन बुद्धिहीन आधारपर त्यागनेका अर्थ, कि इनके फलस्वरुप सैनिकीकरण होना है, दुऐमें निकलकर खार्चमें कूदना है ।

यदि मुद्रास्फीनकी यात्रा एक बार भी प्रारम्भ हो गई ले वह योजनाओं की उप-हान्ताद बना दानेगी । राजस्व और अनिरिक्त कर के लक्ष्य व्ययमें कम पई जायेंगे । सामानकी कमी प्रभावमूल्योंमें इन्दि होनी । परिवारके आवश्यक पर दबाव पडनेमें येनकृदि ध्यादोलनको प्रेरणा मिलेगी । एक बालने दूसरीका पोषण

प्रचुरता की योजना

होगा। और यदि मानमून अक्षमल रहे और अक्षमल उपस्थित हुआ, तो सामान्यरूपसे अक्षमल अक्षमल कठोर और निरुत्तरा उपचारोंसे कामसे लाना पड़ेगा। एतदा यहो है कि कहीं नियन्त्रण प्राप्त न हो सकनेवाली ऐसी परिस्थितिका सामना होनेपर सरकार भयभीत होकर और योजनाको रद्द करनेके बारेमें न सोचने लगे।

हना तथा हनेसे सम्बन्धित अन्य तथ्योंका सामना न करनेका मुख्य कारण प्रथम योजना और उससे प्राप्त सम्बन्धनोंका कठोर विवेचन है। अधिकतर लोग इस बातपर विश्वास करते हैं कि भारत अपने लिये प्रचुरताका नया मार्ग बना रहा है। परन्तु मानसूत्रोंके अमान्य रूपसे अच्छे रहनेको बधाई देनी चाहिये, जिनके कारण प्रथम योजना प्रमुखतासे अपने स्तरको कायम रखनेमें सफल हो सकी। फिर औद्योगिक प्रसारकी ओर भी ध्यान केन्द्रित नहीं किया गया। बीरियामें होनेवाले उत्पादनके समय प्रथम योजना संचालित हुई और इस कारण अर्थ-व्यवस्था सीमित रूपमें किये जानेवाले घाटेके विनाशप्रयत्नका सामना कर सकी। हना होते हुए भी एक बारके केवल एक अनादृष्टिसे ही सम्मन लाभ समाप्त हो सकते थे।

सौभाग्यवश यह नहीं हुआ। विशेष तौरपर कृषिके लाभ मुख्य हुए और इस प्रकार एक वास्तविक योजनाकी नींव पड़ गई। वास्तविक हैं। योजना वैज्ञानिक ढंगमें ही बनी थी, वह परस्पर विरोधी विचारोंका सम्मिश्रण ही न था। महात्माजीस और उनके सहयोगी यही स्पष्ट उद्देश था। योजनाके प्रारूपके साथ जो अन्याय हुआ है उसे सुधारनेके लिये भी अधिक देर नहीं हुई है।

तथापि यह अभी संभव हो सकता है, जब कि आलोचक विपरीत प्रश्नोंमें सम्बन्धित विषयोंके समापनसे ऊपर उठकर मौलिक प्रश्नोंपर ध्यान केन्द्रित करें। योजनाकी आर्थिक साधन खोजते समय इस प्रश्नपर मतभेद होना कि गरीबों और अमीरोंमें किन्नाप कर लगाया जाय, वास्तवमें अक्षमल है।

विशेष तथा निजीकर आदिके जरिये गरीबों पर तो उनकी समताके अनुसार भी पूरा कर लगाया जा रहा है। राजस्वका प्रमुख भाग भी प्रत्यक्ष करोंमें ही प्राप्त होता है। जहाँ तक रईसोंका प्रश्न है, उनमें बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है, परन्तु कराधान

यन्त्री न्यूनताओंके कारण यह बात अमम्भव हो जाती है। अनुभव यह बनता है कि बड़े आदमियों पर जितना अधिक बर लगाना उचित है, उतना ही अधिक वे उसे टालते हैं। जब तक इस टालनेके खेलमें टालने योग्य अपराध घोषित नहीं किया जाता, तब तक इस बातकी कोई सम्भावना नहीं है कि हमें इस क्षेत्रमें योजनाके लिये साधन प्राप्त हो सकेंगे।

अगले पाँच वर्षोंमें वराधान यंत्रके आदर्श बन जानेकी बहुत कम आशा है। निश्चिन्ने बिना सगर विदेशी सहायता द्वारा इस रिकलाकी पूर्तिना प्रयत्न करेंगे। मुगलनीतकी प्रवृत्तियोंके विरुद्ध होते ही पाटेके वित्तप्रवचनको गेका जायगा। विदेशी ऋणोंकी खोज होगी। सुन्दरने विरहित मीथोमिर रात्रोने अर्द्धविरहित देशोंके साथ 'मित्रता प्रतिपत्ति' करनेकी ओ मीग रखी है, वह अण्ड प्रभाव डालेगी।

सुदुर्ग गज्यरा परराष्ट्र विभाग इस बातको म्वय स्वीकार करता है कि सोमियत सय पिङ्गे हुए जैनोकी सहायताके लिये एक विरान्त सहायता योजना बना रहा है, साथही इस बातकी भी बार-बार चेतावनी दी जाती है कि अमेरिकाकी भी इस प्रयत्नकी पराजयी करने चाहिये। यदि अमेरिका विदेशी सहायता प्राप्त नहीं हुई, तो भारत भी मित्रके राष्ट्रव्यक्त नाभिरा अनुयमन कर सकता है, जो अपने देशमें स्थित विदेशी वृत्तोंके हस्तगत करके आवश्यक निधि प्राप्त करते हैं।

अतोलग्या भारतीय प्रगति की योजना सुद्ध होनी चाहिये। उसे नियन्त्रित और समन्वित करना चाहिये। भारत स्वय अपने प्रयत्नोंका भरोसा करके यह सब कर सकता है।

किसी सीमा तक प्रथम योजनाके अनुभवसे हमें यह शिक्षा मिलनी चाहिये थी। देशके विभिन्न भागोंमें तरह-तरहकी जमीनोंके मफैद उर्वरकी कितनी आवश्यकता है, इस प्रश्नकी साथ साथ विवेचना किये बिना ही दैत्याकर सिंदरी उर्वरक कारखाना खका कर दिया गया। प्रतिवर्ष बनमहोमवका आयोजन होता है। हजारों व्यक्ति नये वृक्षोका रोपण करते हैं, जो बिना पानी और देख रेख नष्ट हो जाते हैं। यह हरियाली-पट्टी जो हमारी भूमिकी रक्षा करनेमें समर्थ है, जन्मते ही नष्ट हो जाती है। समारकी बुद्ध मुद्रान्तम वैराविक प्रयोगशालाओंका निर्माण हुआ है, परंतु

प्रचुरता की योजना

वैज्ञानिकों के कार्य को राष्ट्रीय आवश्यकताओं में शायद ही कभी समुक्त किया जाता हो । हमने विशाल निरंतरजन रेल इंजन कारखाना बना डाला, लेकिन इस बात को भूल गये कि बाष्प इंजनों का स्थान अब डिजिल इंजन ले लिया है । इम्पल और सीमेंट दोनों की ही कमी है, किन्तु हम उसे उन विलास पृष्ठों और विशाल कारखानों के बनाने में नष्ट कर रहे हैं, जिन्हें सहजा सड़नी सहनशीलता में परे है । हम मोटर जोड़ने की मशीनों का आयात करते हैं, किन्तु समस्त देश में बिछेरकर केवल उनकी क्षमता के ४० प्रतिशत का ही उपयोग कर पाते हैं, किन्तु किसी सीमा तक समुक्त करने के उपरान्त हम मोटर और मोटर टैलों में आत्मनिर्भर बन सकते थे । सभी उद्योगों के कारखानों और काम धों में उत्पादन बढा सकता है, लेकिन इस अवस्था को मिटाने की कोई चिन्ता ही नहीं करता, जब कि विदेशी विशेषज्ञों ने अनेक प्रतिवेदनों में इन असंतोषप्रद परिस्थितियों और स्थान आकृष्ट किया है । पिछले एक [] दो वर्षों के अंदर कुछ उद्योगों के उत्पादन में ५० से १०० प्रतिशत तक वृद्धि हुई है । जहाँ तक बहुत प्रयोजनीय प्रायोजनाओं में प्राप्त विजली का प्रश्न है, उसका उपयोग होता है, पर सदैव सर्वोत्तम लाभ हेतु नहीं । यह सूची लम्बी और अनंत है ।

जब तक कि योजनाओं और प्रशासनिक पुराने आराम तलरी के दृष्टिकोणों को करने का कोई विरोध प्रयत्न नहीं किया जाता, तब तक संतुलन, सहयोग और स्वतंत्रता इस न्यूनता की कहानी का द्वितीय योजना-काल में पुनरावर्तन होता रहेगा । भारत की प्रज्ञा और कसीयत चाहे जैसी हो, लेकिन इन कार्यों को सफल करने का केवल एक ही मार्ग है । योजनाओं लागू करने और उनके विवेचन के प्रत्येक तार पर लोगों की साध लेना ही चाहिये । दैनिक कार्य और संपर्क से अर्जित होनेवाला उनका अनुभव, उनकी आवश्यकताये, उनका ध्यान ही है, जो इन दिशा में अभ्यास पेरवदी का कार्य कर सकता है ।

अप्रेचों ने इस भूखंड पर देश का धन चूने के लिये सामन किया । उन्हें हम बानसे कोई मतलब नहीं था कि जनता क्या सोचती है । स्वतंत्र भारत का प्रशासन भी राष्ट्रीय जीवन के किसी भी स्तर पर वादविवाद लिये बिना ही योजना बनाता है

और नीति निर्धारित करता है। राजनैतिक पार्टियोंके नेताओं और समूह सदस्योंके बीच होनेवाला सम्मेलन ही प्रज्ञानत्रिमं गव कुछ नहीं है।

शौरभ्य व्यक्ति लाल फीतेके भेदोंको क्या जान सकते हैं? दफ्तरमें क्लर्कोंने यह बात पूछिने। उनके पास अनेक उपचार हैं। यदि कालेबाजार पर गेक लगाई जाती है, तो सामान मिलना एक समस्या हो जाती है। सचिकतयके तर्क वितर्कों द्वारा इन समस्याका निराकरण होनेकी कोई सम्भवना नहीं है। क्या इन कार्यवाहियोंकी शिंशर जनताके श्थाने इतोंरी रचा करनेके लिये विचरा नहीं किया जा सकता? कंट्रोलोंके असफल होनेका कारण यही है कि जनता इन बात पर विश्वास नहीं करती कि बट्टोल उनके इन्तार्थ लागू लिये गये हैं। यदि एफ़्रिन्. धन प्रकट नहीं होता तो गोंधमें जाकर किन्तनों पर इन बातके लिये ओर डालिये कि यदि वे दूरस्थ सरकार द्वारा जारी किये गये ऋणमें अनुदान नहीं देना चाहते, तो उन्हें अपनी बचत नलकूणों आदिमें लगानी चाहिये। यह कुछ सम्भमें आनेवाली बात है। जहाँ उन्नाही सुगडक इन बातको सम्भ लेता है, वहाँ इनका परिणाम भी निकलना है। कामगारोंके लिये काटीनोंका निर्माण करना है, पर यह क्या जरूरी है कि उनका हप बही हो जो पश्चिममें होसता है? अपनी कल्याण हेतु आवश्यकताओंको निरतिन करनेके ल्यय कामगारोंके कुछ विचार हो सकते हैं। विदेशरूग्ने उक्त समय जब कि मेड, कुन्नी, गुलदस्नों आदिमे परिपूर्ण काटीनका बानावरण उनके पर नामगारी दुर्भाग्यपूर्ण विलम्बे पूर्णरूपेण भिन्न है, जहाँ उन्हें सोनेके लिये भी पर्याप्त स्थान नहीं होता? मयुनियिद क्षेत्रोंने विज्ञान शराव बनाना क्यों थालू रजने हैं? अच्छा हो यदि इन विधिके निर्माण धानके क्षेत्रोंमें पुडनों पानीके अदर खड़े-खड़े एक दिन मिगनेके पश्चात यह प्रश्न आने आने पृष्ठें। 'मयुनियिद' नगरोंमें नष्ट विधे जानेवाले करोडों रुपये यदि तैरनेके तान्तावों या मनोरञ्जनके अन्य साधनोंमें लगाये गये होते तो ऐसे विधान बनानेकी आवश्यकता न पडती, जिन्हें पानत करनेकी श्थेला तोड़नेकी ओर अधिक ध्यान दिया जान है।

छोटी बानोंने ही बही बानोंकी ओर बदा जाता है, लेकिन आरम्भ सदैव छोटी बानोंने ही होना है। यह निरर्थक मिद्वान प्रतीत होना है, किनु योजनाके प्रति

प्रचुरता की योजना

जागरूक नेताओंको इसे स्वीकार करना पड़ेगा। अब तक जनतासे सदैव कुछ बातें पूरी करनेके लिये कहा जाता था। जैसे कम बच्चे पैदा करना, एक समयका भोजन छोड़ना, धर्मदानमें भाग लेना या किसी नेताको देखकर उसका उत्साह बढ़ाना। अब वह समय करीब आ चुका है, जब कि ऐसी योजनाके सम्बन्धमें उनकी राय मेंगी जाय जो उनके बच्चोंके और नानी-पोलोंके जीवनको प्रभावित करनेवाली हैं।

द्वितीय योजनाकालके अंत तक संपूर्ण ग्रामीण भारतमें व्याप्त होनेवाली सामूहिक विकास परियोजनाओं द्वारा इस दिशामें जो कुछ सरलता प्राप्त हो पाई है, वह इन परीक्षणोंसे ह्रासमें लेनेवाले उन अनेक अधिकारियोंकी प्रकृतिके कारण नष्ट होनेके संकटमें है, जो स्थिर विचार और मर्म रोगाज्ज औपचारिक विस्वास करनेवाले नये ढंगके दम्भरसाह बनना चाहते हैं और जो दर्शकोंको ऊपरी सिद्धियोंका प्रदर्शन करनेकी आर्थिक लालापिन रहते हैं, अनिश्चय इसके कि आत्मानिमे न देखनेवाले मौलिक परिवर्तनोंकी ओर ध्यान देते। जिस प्रक्रियारा आरम्भ नीचेमें हुआ उनके ऊपरसे आज़ा देनेवाली बननेका भय है। किन्तु स्वतंत्रता और अवसर मिलने पर सामूहिक विकास परियोजना निश्चित हितों द्वारा प्रेरणात्मक शक्ति और प्रजा तानिक योजना निर्माणकी उत्तोलक बनाई जा सकती है।

देशके प्रत्येक विचारधारवाले लोगों द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकी प्रशंसा की गई है। निहित स्वार्थों द्वारा की जानेवाली आलोचना पर्याप्त है, किन्तु उन्होंने अनेक प्रगतिशील तत्वोंकी उपेक्षा की है। लेकिन देश जो आर्थिक मार्ग अपना रहा है, उसके सम्बन्धमें १९४७ के बाद प्रथम बार बड़ेसे महमलि दीखती है। दूसरे शब्दोंमें कार्यके लिए ऐसा आधार विद्यमान है जिससे अनेक गम्भीर न्यूनताये बाढ़े दूर न हो सकें, किन्तु वास्तविक प्रगति की सम्भावनाओंका भरो अवश्य लुप्त जाता है।

राजियों अनेक हैं। निजी क्षेत्रोंको अनावश्यक रियायत दे दी गयी है। विदेशी हितों पर बहुत कम प्रभाव पडा है। राजस्वके जरिये जैसे संगठित निजी उद्योगके लाभ पर हाथ भी नहीं लगाया गया है। तीव्र औद्योगीकरण पर रोक लगानेका प्रयत्न किया गया है। निरंतर प्रगति की एकमात्र गारंटी अर्थात् योजना-उद्योग स्थापित करके तीव्र औद्योगीकरणकी नींव डालनेकी आवश्यकताको भी संभवतः

अन्दी तरह नहीं समझा गया है। कृषिमें पुनर्जागरण लानेके लिये अत्यंत आवश्यक प्रश्न अर्थात् जोतनेवालेको जमीन देनेका प्रश्न अब भी हल नहीं हुआ है। बेकारीको दूर करनेका मुश्किलमे ही प्रयत्न हुआ है, और जीवनस्तरमें कोई विरोध सुधारकी आशा नहीं दीखती, जैसी कुछ लोग पहले आशा कर रहे थे।

लेकिन योजनामें परिवर्तन होगा। सूचना है कि कुल उद्ब्ययको बढ़ाकर ५,३०० करोड़ कर दिया गया है। यह अतिरिक्त नहीं है, क्योंकि योजनाको कार्यान्वित करनेके साथ-साथ सरकारको औद्योगिक प्रगतिके लिये भारी विनियोजन करना पड़ेगा। देशके शासकोंके लिये और कोई मार्ग नहीं है। क्योंकि उन्हें जनताके समर्थनका आश्रित होना ही पड़ता है। भारतको बतला दिया गया है कि यह योजना, प्रचुरताकी योजना है। जब प्रचुरताकी सम्भावना धूमिल पड़ने लगेगी, जैसा होना भी चाहिये, तब कैबिनेटसराईके ऊपर बड़ा भारी दबाव पड़ेगा, जिसके परिणामस्वरूप योजनाका विस्तार होगा।

जनचीनकी आर्थिक सफलतायें भारतको जैसे जैसे प्रभावित करेंगी, वैसे ही वैसे यह दबाव बढ़ता जायगा। उनकी प्रगति चित्करपक है और सीधेही आत्मचर्यजनक हो जायगी। अब यह पता चलता है कि चीन १९९२ के अंत तक १२० लाख टन इस्पातके उत्पादनकी आशा करता है। १९९७ में चीनके इस्पात उत्पादनकी २०० लाख टन तक बढ़ जानेकी सम्भावना है; अर्थात् १९५४ में ब्रिटेन और परिधनी जर्मनी तथा द्वितीय महायुद्धके दसगुना हस्तका जितना उत्पादन था, उससे अधिक।

दिल्लीको भी घमसा रहेनेके लिये विदेशी पूंजी और भारतके बड़े एकाधिकारी तात्की अचीन रहनेवाले लाभ-साधनों पर आक्रमण करना पड़ेगा। भारतीय कंपनी अधिनियमके अंतर्गत सरकारने अथेष्ट शक्तिसे अपने आपको पूर्वसुसज्जित कर रखा है। बेक, जूट, चाय बगान, उत्खनन हित, तेल, सीमेंट और षष्ठोको सम्भवतया, राज्यनियंत्रणका सामना करना पड़े। अभी निजी क्षेत्रमें बने रहनेवाले लोहा और इस्पात हितोंको निरन्तर अग्रसर होनेवाले राज्यक्षेत्रके सामने आत्ममर्माण करना पड़ेगा। यही दरा अद्ययावत निर्यात व्यापारकी होनी।

विदेशी हितोंमें तो अभी मुश्किलमे हाथ लगाया है। अब तक जो कुछ हो सका है, वह केवल यह कि इन फर्मों पर 'भारतीयकरण' करनेके लिये दबाव डाला गया

प्रचुरता की योजना

है, किन्तु यह प्रक्रिया भी बहुत धीमी है, जसा कि निम्नलिखित आंकड़ोंसे मालूम पड़ता है :-

विदेश-नियमित फर्मोंमें नौकरी अधिक वेतन पानेवाला वर्ग				
रु. १०००-१११६	रु. १००० और अधिक			
भारतीय	अभारतीय	भारतीय	अभारतीय	
१९४७	२२२३	१६१६	१०४	५५४४
१९५०	४२३५	१२६३	१४०६	६५७१
१९५२	३६६७	१०३३	२२६०	७१०४
१९५४	७४६६	६५०	३३४६	७००५
१९५५	८१६६	१४८	३६६५	६५१०

ये आंकड़े धुलाबेमें डालनेवाले हैं, क्योंकि वेतन पर्याप्त आधार नहीं है। किसी भारतीय कार्यचारीको १००० रुपये या उससे भी अधिक मिल सकते हैं, लेकिन अन्य मर्तोंको भी जोषनेके उपरांत सम्भव है उसका स्तर, अधिकार क्षेत्र और कुछ अन्य आवश्यक विदेशी वर्मचारीके भी बराबर न हो। और कुछ पदचर्मोंमें तो अभारतीयोंके पास शीर्षस्थ स्थानोंके २/३ से भी अधिक है, जैसे बगानमें (५६.६ प्रतिशत), जूटमें (५६.६ प्रतिशत), बेकिंगमें (७५.१ प्रतिशत), व्यापारमें (६५.४ प्रतिशत), सामानकी दुकानें और यातायातमें (६६.३ प्रतिशत)। इस परिस्थितिको आगे पीछे ममाप्त करना ही पड़ेगा।

अन्य दशांश, भूमि समस्याके निराकरणकी आवश्यकताको रेखांकित करते रहेंगे, जिसे तिरफे चक्करी द्वारा या कर घटाकर हल नहीं किया जा सकता। यह समस्या तो भूमि सम्बन्धोंमें मौलिक परिवर्तन चाहती है; विशेष तौर पर ऐसे समय जब कि राज्यनिर्देशित औद्योगिक प्रसार हो रहा हो। और भूमिहीन कृषि मजदूरों तथा निर्धन और मध्यम विन्तीय कृषकोंके पास उत्पाधिकार रहने उनकी उम्मेदवा कौन कर सकता है? सरकारी तौर पर यह स्वीकार किया गया है कि सम्पूर्ण कृषि-योग्य क्षेत्रके १५-२० प्रतिशत भाग पर ६० प्रतिशत किसानोंका अधिकार है। जब

कि ५ प्रतिशतके पास ३४ प्रतिशत जमीन है (स्वयं उनके नाममें । यदि उनके सम्बंधियोंके नामकी ज़ेमानों जमीनको भी सम्मिलित किया जाय तो यह अनुगत बहुत अधिक हो जायगा ।)

१९५७ के अंन तक १०० करोड़ एकड़ भूमि एकत्र करनेका लक्ष्य रखनेवाले भूदान आंदोलनके नेता आचार्य विनोबा भावे, इस बात पर बल देते हुए बार बार कहते हैं कि, "भूमि तो केवल फ़ीक है । भूमिमें लोगोंकी विभुदा शान हो जाती है । इसके कारण शानविश्वास प्राप्त हो जाता है । इसमें नया विश्वास प्राप्त होगा है । यह हम विचारको बल प्रदान करती है कि जल और वायुके समान भूमिपर भी सबका अधिकार है और इसका सम्भोग विनिरण होना चाहिये ।" भूदान इस समस्याका उत्तर भले ही न हो, किन्तु इसका प्रतिपादन निश्चिन्ताने इस बातका सूचक है कि भूमिस्वामिनी न तो उन्हेवा की जा सकती है और न इस कार्यको स्पष्टिगित किया जा सकता है ।

केवल योजनाके सामने पड़नेवाले अराक स्पर्तोंमें शक्तिपूर्ण बनानेके लिये ही नहीं बरन देशके कमिक विद्यमानको मुनिश्चिन करनेके लिये भी राज्य द्वारा धीरे-धीरे करने कियाकेनका विस्तार करना भी निर्णित बात है । आज एक भाषायी क्षेत्र आर्थिक लाभोंके लिये दूसरेके साथ श्रितियोगता कर रहा है ।

कल बच्चे माल विरोध रूपसे ईधनकी सुलभताके आधार पर दक्षिण, उत्तर द्वारा उनतिके बड़े माग हथियानेके विरुद्ध भ्रमण चड़ेगा । और जब बहु-वैरीय परियोजनाओंसे उन्हादित होनेवाली सपूर्ण विजली प्राप्त होने लगेगी, तब सार्वजनिक क्षेत्र ही उसे प्रमुख रूपसे खरा खेनेकी परिस्थितियें हो जायगा ।

सममौर्गेके बावजूद भी यही मुख्य प्रतियाँ स्पष्ट दिखलाई पडती हैं । ये भारतीय प्रगतिका रूप निर्धारित करेंगी । इन परिवर्तनोंकी गति अनेक बालोंपर विशेष तौरसे अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति पर आश्रित है । अब धनीभूत होनेवाले शांतिपूर्ण सम्बंधोंके प्रसारसे भारतको सदायता मिलेगी और उसे समाजवादी दुनिशमे ऐसी सदायता सुनभ हो जायगी, जिसमें उमने कभी कल्पना भी न की थी ।

प्रचुरता की योजना

अनेक योजनाओंके अंदर होनेवाली आर्थिक प्रगतिके चरणोंका योजना आयोगने मोटे तौरपर उल्लेख किया है। महालनोबिसने ठीक ही कहा है कि योजना बनाते १०, २०, ३० या इसमें अधिक वर्षों तक राष्ट्रीय आर्थिक प्रगतिका स्पष्ट स्वरूप अपने सामने रखना चाहिये। निम्नलिखित तालिकामें प्रायोजित कार्यक्रम बतलाया गया है.—

आय एवं विनियोजनमें वृद्धि, १९६१-७६

(१९६२-६३ के मूल्योंके आधार पर)

प्र. योजना द्वि योजना त्रि योजना च. योजना प. योजना
(६१-६६) (६६-६९) (६९-७६) (६९-७९) (७९-७९)

अवधिके अंतमें राष्ट्रीय आय

(ह. करोड़ोंमें) १०,८०० १३,४८० १७,२६० २१,६८० २७,२७०

वास्तविक विनियोजनका योग

(ह. करोड़ोंमें) ३,१०० ६,२०० ८,६०० १४,८०० २०,७००

अवधिके अंतमें राष्ट्रीय आयका

विनियोजनमें प्रतिशत ७३ १०० १३७ १६० १७०

अवधिके अंतमें जनसंख्या

(लाखोंमें) ३,८४० ४०,८० ४३,४० ४६,४० ६०,००

विश्वमोन्दुख पूंजी, निर्माणका

समाप्तुपान १ ८८.१ २ ३१ २ ६२१ ३ ३६.१ ३.७०:१

अवधिके अंतमें प्रति व्यक्ति आय

(रुपयोंमें) २८१ ३३१ ३६६ ४६६ ६४६

संगठित प्रगतिशी यह सम्भावनाये हैं जो स्थानीय और विदेशी दोनों प्रकारके बड़े व्यवसायोंको भयभीत कर देती हैं। इसी कारण द्वितीय योजना पर उम विवाद होता है। यदि वायदा नहीं तो कमसे कम प्रचुरताके बीटाणु तो इसमें विद्यमान हैं ही।

यही बीयाणु थे, जिन्होंने प्रधानमंत्री नेहरूसे यह कहनेकी प्रेरणा दी, कि “कोई फौज किसी देश या स्थानके कोने-कोनेमें सैनिकोंको नियुक्त करके उस पर अधिकार नहीं करती। वह तो उसके समस्त युद्धोपयोगी स्थलों पर नियंत्रण प्राप्त करके अधिकार प्राप्त कर लेती है। इन युद्धोपयोगी स्थलोंमें ही फौज उस समस्त भूभाग पर नियंत्रण करती है। किसी पहाड़ी पर स्थापित की जानेवाली तोप फौजको समीपवर्ती क्षेत्र पर सकलतापूर्वक नियंत्रण करनेमें समर्थ बनाती है। ठीक इसी तरह हमें भी अपनी अर्थव्यवस्थाके सभी महत्वपूर्ण स्थलोंमें सभाजना है, जिसमें एक सर्वग्राही राष्ट्रीय योजनाके अंतर्गत निजी और सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रोंमें कार्य सुचारु रूपमें संचालित हो सके।

यह ठीक कहा गया है। जिन लोगोंने योजनाकी ओरसे इस ढरके कारणसे ओलें मूढ़ सी हैं कि वह उनके उलटे-सीधे कट्टर सिद्धांतोंको अभ्यवस्थित कर देगी, उन्हें इसकी सत्यता अधिकधिक स्पष्ट होनी आयी। भारत किसी अजनबी मार्ग पर कदम नहीं बढ़ रहा है, किन्तु वह शायद मानव जातिके इतिहासमें सबसे बड़े नादनीय युगकी शक्तियों द्वारा अभिभूत हो रहा है।

पूँजीवादका युग समाप्त हो रहा है। यद्यपि ऐसा करनेमें वह अनिच्छा दिखा रहा है। समाजवाद, संपूर्ण समाजका स्वीकृत मविष्य निर्धारित हो चुका है। भारत इन्हीं शक्तियोंसे प्रभावित हो रहा है। कभी वह आरव्यजनक स्पष्टताके साथ आगे बढ़ने लगता है। दूसरे अवसरोंपर विभ्रम और असम्यक्ता दिखाती है। किन्तु कैसे अप्रसर होना चाहिये इस प्रश्नका मन वैपरिव्य सालाब और अमलुपिकतासे उन्मुक्त समाजके निर्माणकी अनेच्छाको परिष्कार नहीं कर सकता।

टिप्पणी :- भारतीय योजनाविषयक अधिकतर सामग्री “इकोनोमिक विकली ऑफ़ बॉम्बे” से उद्धृत की गई है।

सौहाद्रता का प्रसार

किसी राष्ट्र या जाति के लिये यह सोचना कि वह केवल कुछ दे ही सकती है और उसे दोष संभारने कुछ लेनेकी आवश्यकता नहीं है, अविशेषपूर्ण है। यदि एक बार किसी राष्ट्र या जाति ने यह सोचना प्रारम्भ कर दिया, तो वह स्थिर होकर विठकने लगता है तथा अंतमें नष्ट हो जाता है।

—जवाहरलाल नेहरू

भारत के द्वितीय योजनागत कार्याक्रम करते समय स्वदेश और विदेश दोनों का राज-नैतिक वातावरण विन्ने आवश्यकजनक रूपमें बदला हुआ है। उनाव और सङ्घ-की प्रतिबन्धित करनेवाले पाँच वर्षों को प्रथम योजना-कालमें राष्ट्रीय प्रगतिमें भयंकर बाधा पड़े, अथ शीघ्रतापूर्वक भूतकालीन बात बनने ला रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे कहीं हो, अधिक सुविधापूर्वक सोच ले रहा है। हम यह देख चुके हैं कि यह प्रवृत्तियाँ कैसे विकसित हुई, किन्तु वर्तमान समयमें हम उनकी परिपूर्णताके दर्शन करते हैं। कुछ स्थलों पर किमंच दिखनाई पसती है जब कि अन्य स्थलों पर साहमपूर्ण झगड़ल। परन्तु निरविवाररूपसे व्यक्ति और राष्ट्र निरंतर एक दूसरेके समीप आ रहे हैं।

हम परिवर्तनको स्पष्ट शब्दोंमें समझनेके लिये हमें सिर्फ प्रतिदिन होनेवाली घटनाओं का ही सर्वेक्षण करना पड़ेगा। साम्राज्यवादी शक्तियों ने यह देख लिया है कि वे अब आगे निरविवार आनी कार्यप्रणाली स्वीकार करनेके लिये बैचकूट नहीं बना सकते। उन्हें कम्बोडियाको भी उनसे यह कहनेका साहस हो गया कि अपने हाथ उनकी गर्दनपरसे हटा लें। दूरस्थ आइसलैंड भी वामपक्षी सरकार चुनकर यह प्रतिज्ञा करने लगा कि उसके देशसे सभी विदेशी विज्ञान-स्थल हटा लिये जायें। सऊदी अरब भी अंतमें यह समझने लगा कि मद्रमूमिमें स्थित तेल, असीमित सुवर्णस्य प्रदायक है और उसे इसका उपयोग अपने बीरान देशकी

उन्नतिके लिये करना चाहिये, वही सुवर्ण जो अब तक संयुक्त राज्तीय डालारोंमें चमक पैदा करता रहा था। मिश्र भी साहसके साथ सार्वभौमताके साथ समझौता करनेवाली सहायताको हुकराम्य है और इसके स्थानपर प्रगौरात्मक कार्यवाही करता है। उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण पूर्वी एशियामें स्थित साम्राज्य लक्ष्मण रहे हैं। साखों व्यापक राष्ट्रीयता, गौरव और स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील है।

उसीही स्रोतमुद्धका अंत होता है, त्योही आणविक कूटनीति और उसके तरीकोंके प्रति अमेरिकावासियोंमें भी घृणा व्यक्त होने लगती है। समाजवादी दुनियाँ अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनोंके इरांन करती है। साम्यवादी पार्टियों अपनी शिक्ष और अपनी भूलोंका पुनरावलोकन प्रारम्भ कर गयी है। मानवीय इतिहासमें सम्भवतया सर्वाधिक विवादास्पद स्थिति युगका एक अपरिचित स्पष्टताके साथ पुनरावलोकन होने लगता है। साम्यवादी समाजको उन तुराइयोंमें उन्मुख करनेका रणनीतिपूर्ण अभियान प्रारम्भ हो जाता है, जिन्होंने अनेक कार्यक्षेत्रोंमें अब तक स्वतंत्र और निर्बाध विचारोंकी गति रुद्ध कर रखी थी।

‘कैमलिनके व्यक्तियों’ को प्राप्त करनेवाला किसी समयका रहस्य भी इट जाता है। वे अब सत्कारवासियोंसे मिलने निकल पड़ते हैं। चीनमें, पूरा जन्मी व्याप कई शोकको अब ऐसा युद्ध अपराधी नहीं बतलाते, जिसपर मुक्तमा चलना आवश्यक है। इसके विपरीत वे अपने ज्ञात राज्यों प्रत्यक्ष बातोंके लिये आमन्त्रित करते हैं। यह उत्तेजनपूर्ण समयके चिन्ह है क्योंकि भय समाप्त हो रहा है, विश्वास पुनर्जीवित हो उठ है।

बस्तुन सब कुछ ठीक नहीं है। पूर्वकालीन बसीयत मौजूद है, जो अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर रही है। अस्वास्थ्यी उत्तर अतलांतिक सबि सगठनके बंधनोंमें उन्मुख होनेका प्रयत्न करते समय भी माभीसी अलजीरियावासियोंके विरुद्ध एक ध्वरतापूर्ण युद्ध करनेमें जुटे हुए हैं। ब्रिटिश लोग यही कार्य कोनिया, साइप्रस और मलायामें कर रहे हैं। मोठा मिलनेपर अमेरिका भी बड़ा लड़ पट्टारने लगता है। फनी नेहरूको पूरा करने लगता है और कभी अपने विदुओंके गुणगान करने लगता है। और आणविक एवं उद्भवन अज्ञेयता अविश्वपूर्ण परीक्षण

सौ हाट ता फा प्रसार

जारी है। परिणामस्वरूप रेडियो सक्रियतासे बाधुमदलमो दूषित करके, हम भूमंडलपर जीवजगलके भविष्यके लिये सन्नस्त कर दिया गया है।

किन्तु हमारमें होनेवाले परिवर्तनको रोमा नहीं जा सकता। वे घनत्व और क्षेत्रमें बरते ही आर्येगे। हम बापको समझनेके लिये यह जानना आवश्यक है कि सोवियत संघीय साम्यवादी पार्टीकी २० वीं कांग्रेसमें क्या हुआ। यह बात भारतीय परिस्थितिसे यथेष्ट दूर भले ही मालूम पड़े, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। यह ऐसी घटना थी जो अगली अनेक दशाब्दियों तक भविष्यकी घटनाओंका रूप निर्धारित करती रहेगी।

मिकोयामें होनेवाले बीसवीं कांग्रेसके मुले अधिवेशनमें ओंकेक स्टालिनकी निन्दा और तदुपरान्त एक पुन अधिवेशनमें कुरुचेव द्वारा उनके अपराधोंको अनुमूचित करने पर, सत्तारभरके न निक साम्यवादी आंदोलनोंकी ही वरन् हम आंदोलनकी लक्ष्मण रेखाके बाहर स्टालिनके अधीन सोवियत संघकी आरचर्यजनक आर्थिक एवं सैनिक सफलताओंको देखकर उसकी प्रशंसा करनेवाले लाखों आदमियोंकी भी एक भारी धक्का-मुक्का लग्य।

जबमें लेवरेटी बेरियाको बंदी बनाया गया था, तभीसे यह स्पष्ट हो गया था कि कुछ न कुछ न्यूनता आवश्यक है। उस पर आरोपित अपराधमूचीमें अप्रत्यक्ष रूपसे स्टालिन भी आ जाते थे, क्योंकि उसकी मौनस्वीकृति निन्दा इतनी ज्यादाियों नहीं हो सकती थी। व्यक्तिवादकी जब आलोचना होने लगी तब यह धारणा विकसित हुई और आगे चलकर इसकी परिणति यूगोस्लावियाके टीटोके विपक्षी समस्त प्रकरणकी निन्दामें हुई।

साम्यवादी मिहान्तशास्त्रियोंने सोवियत नेताओं द्वारा अपनी भूल सुधारके साहसी ईशका स्वागत किया, क्योंकि शीत युद्धके तनावपूर्ण कक्षावरणमें ऐसी भूलोंका होना धासान था। किन्तु किसीको यह भान नहीं था कि आगे क्या होनेवाला है। फिर भी यह ज्ञात हो चुका है कि १९३३ में सोवियत संघका दौरा करते समय प्रधान मंत्री नेहरूको यह बात स्पष्ट रूपसे बतला दी गई थी कि स्टालिन-विषयक कल्पनाकी अस्वीकृतिके लिये कदम आयोजित हो रहे हैं और उनके नामसे प्रसिद्ध होनेवाले सदेहपूर्ण ढंगोंको समाप्त किया जायगा।

उदलज्य अभिलेखोंके अध्ययनमें यह पता चलता है कि सोवियत सघके नेताओंने कमिक पुनर्निधारण और पुन शिक्षाका निरचन किया था। वे स्यलिन विषयक कन्यनगर सम्मुख और नाकालिक आक्रमण नहीं करना चाहते थे, क्योंकि ऐसा करने पर स्यलिनके नामके साथ निष्ठ सम्बन्धिन सोवियत सघके निर्माणचलने पानन की जानेवाली नीतिको उपयुक्तताके विषयमें संदेह व्यक्त किये जानेकी सम्भावना थी।

१९५४ और १९५५ में विरोध रूपमें आर्थिक विरामके क्षेत्रमें प्रचारित किये जानेवाले नये सिद्धान्तोंसे असन्ध प्रमाणित करनेके लिये स्यलिनके सेठ उद्धृत किये जाते थे। कुछके प्रति तर्क स्वरूप स्यलिनके आदेशोंकी ओर ध्यान आकर्षित किया जाता था। दिसम्बर १९५५ तकमें स्यलिनके जम्होन्मर्गके अन्तर्गत नियमित शब्दोंमें उनकी सेवाओंके प्रति कृतज्ञता शक्ति की गई थी। कुछ महीनों पश्चात् होनेवाली बीमर्गी कमिमें एम कटुभयकी अभिव्यक्तिकी आकस्मिकताका अर्थ यही है कि साम्यवादी पार्श्वके आन्तरिक सघर्षमें प्रचारात्मक परिवर्तन हो गया था और पूर्ण सन्धकी माँगने यथेष्ट बल प्राप्त कर लिया था। किन्तु सिद्धान्तोंकी सीमाके अन्तर्गत काम करनेवाली पार्श्वमें, यदि वे सिद्धान्त साथ ही साथ किमी ऐसे व्यक्तिके नामने सम्बन्धित हों, जिसकी कटु आलोचना हो रही है, ऐसा परिवर्तन स्वाभाविक ही है।

तथ्योंकी माँग की जाती है और स्यलिनके सिद्धान्त और व्यवहारको शुद्ध करनेके प्रयत्नमें इनका विभिन्न प्रकारसे अर्थ लगाया जाता है। कुछ लोगोंका कहना है उन डिक्टेटरमें निष्ठ सम्बन्धिन होनेके कारण मोलोटोव और बगानोविच, आत्म रक्षणके हितार्थ इस आक्रमणको निष्क्रिय करेंगे, मित्रोवानका मत इसके पूर्णरूपेण विरुद्ध है, और बुलगायेन तथा सुरुचेव मन्थन स्थितिा प्रनिधिधिय करते हैं और यही जो स्यलिन सिद्धान्तोंने प्रभावित कार्यकर्ताओंका विचार है। अन्य व्यक्तियोंका कहना है कि नवीन शक्ति अर्थात् सुरुचेव, अपने मुत्तारवादी दृष्टिकोणके अतुल्य वस्तु-ओंसे परिचर्चित करनेके लिये, इस आक्रमणसे बच बचाकर दिखना रहे हैं, जिससे समानवादी राज्य निर्माण और उसे साम्यवादीमें परिवर्तित करने विषयक स्यलिन नीतिमें संदेह उत्पन्न हो जाय।

सी हा द ता का प्र सार

साथ ही ऐसा दावा करनेवाले लोगों ने भी कमी नहीं है, जो कहते हैं कि इस आक्रमण का लक्ष्य विशुद्ध रूप से स्यात्तिन के व्यक्तिगत गुणों की आलोचना है, कोई वास्तविक मुद्दा नहीं सोचा जा रहा है क्योंकि चौथी और पाँचवीं दशमियों में ऐसी विशेष परिस्थितियाँ विद्यमान थीं जिनके कारण पार्टी लोकतंत्र की अवहेलना सम्भव हो सकी। ऐसे भी तत्व विद्यमान हैं जो किसी परिवर्तन के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं करते। वे यह सिद्धान्त प्रेषित करते हैं कि लोगों को विश्वास दिलाने के लिये सोवियत नेताओं ने समार के सामने एक नया रूप उपस्थित करने का निश्चय किया है। जिनके लिये शीघ्र सहज रूप में स्यात्तिन के मृत्यु का आ रहा है। इसमें बहुत बड़ा सन्देह है, क्योंकि अभी पूर्णतया का भेद सुलझा नहीं है। विदेशों में स्थित साम्यवादी नेताओं की प्रतिक्रिया में यह सन्देह स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है। बीमवी कांग्रेस के समय सार्वजनिक रूप से होनेवाली स्यात्तिन विषयक परिशुद्धियों को उन्होंने स्वीकार कर लिया, किन्तु अब पुरस्चका गोपनीय प्रतिवेदन उन्हें भ्रम तो उनकी प्रतिक्रिया कोष और बढ़ातापूर्ण थी। उन्होंने यह दावा किया कि यह वचन स्यात्तिनवादी भावनेवादी व्याख्या नहीं है, उनका कहना था कि सोवियत साम्यवादियों ने इस परिवर्तन की प्रकृति में स्थित कारणों का स्पष्टीकरण करना चाहिये और प्रत्येक मन्त्रिपरिषद् को केवल येन और इसमें देखने की सुपरिचित और नैपथ्यपूर्ण प्रकृति को समझ कर देना चाहिये।

इसके तोग्तिरहीने पार्टी संगठन, सम्मिलित अपराध, एक सिद्धान्त के परिणामस्वरूप दूसरे में पहुँचना तथा सोवियत पार्टी को होनेवाली अपूर्व हानि-विषयक मौलिक प्रश्न खड़े किये। पास, जितेन और अमेरिकन में स्थित पार्टियों की विचारधारा की भी यही दिशा थी। यदि इस विषय में भारतीय पार्टी डिलमेल थी और वेदरूप में प्रकट सप्रदायवाद का दोषारोपण किया था, तो उसका कारण यही था कि उसका सैद्धांतिक स्तर सदैव से नीचा रहा था तथा परिवर्तन देशों के साम्यवादी-योगी तरह उसे विकसित पूँजीजीवियों के भारी वैदिक आक्रमण का कभी सामना नहीं करना पड़ा था।

अंततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि यदि भारतीय नेतृत्व में नहीं तो कमाने कम समार भर में विशेषरूप से चीन एवं अन्य समाजवादी राज्यों में जहाँ अनेक अंशों में

स्टालिनयुगकी भूलोंका आवर्तन हुआ था, साम्यवादी नीतिका पुनरावलोकन हो रहा है। विभिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किये जा रहे हैं, क्योंकि विरोधी समस्यार्थे एकमात्र 'सम्राज्यवादमे' आगे निकल जाती है। अंतर्राष्ट्रीय वादविषयक विचार, साम्यवादी पार्टियोंके पारस्परिक सम्बन्धका रूप, जनगणतन्त्र राज्योंमें विभिन्न वर्गोंकी स्थिति तथा मार्क्सवादसे अन्य सम्बंधित सिद्धान्तोंको लेकर भीषण तर्कवितर्क हो रहा है। इसका उत्तर आनानीसे नहीं मिल सकता। टीयेवादी यूगोस्लेविया भी इसका आदर्श प्रतिमान नहीं बन सकता। सम्भवतया भूलफालीन नीतियोंको सुधारनेमें अनेक अशुद्धियों हो जायेंगी, लेकिन इन कष्टोंके उपरान्त प्रकट होनेवाला समाजवाद अधिक स्वस्थ और शक्तिशाली होगा।

साम्यवादी पार्टी और उसके नेताओंका उपहान करना, जिनके मनोरमका साधन है ऐमे 'मैंने तुमसे यही कहा था' दलके लोगोंने कुप्रयत्न भी करणजन्म है। ये सम्राज्य के कुछ सुदूरतम मस्तिष्कोंको स्टालिनके मुन्नावेका शिकार हो जानेके कारण उनकी निन्दा करनेसे नहीं चूकते। उनका कहना है कि सोवियत कूटनीतिके हथारों पर चलनेवाले ऐमे लोग स्वयं गढ़में उतर चुके हैं और कभी अपनी प्रतिष्ठा पुन स्थापित नहीं कर सकेंगे।

यदि पहलेमे अधिक बड़े औराके लिये यह दोषारोपण स्वीकार्य भी हो, तो भी सत्य इसके पूर्ण भिन्न ही है। कोई भी साम्यवादी सोवियत संघकी प्रशंसा और आदर तथा गणना इस कारण नहीं करता कि यह किसी तरहका कपटी पंचम दलीय है, बरन इसलिये कि उसका विश्राम है कि स्वयं कम्युनिस्ट पार्टीका सगहन एवं उमकी परंपरा प्रचलन और स्वतंत्रताके दुरयोग के विरुद्ध एक मात्र बीमा है। अन्यत्र निष्ठावान नागरिकों द्वारा निर्मित जनतावी पार्टीमें स्वतंत्र निवारविमर्श और निष्पक्ष चुनावोंको सम्भवतया अवच्छेद नहीं किया जा सकता। दुरयोग अवश्य होगा, परन्तु अस्थाधी और उसी सोमा तक जिन सीमा तक कि पार्टीसदस्य उदासीन रहेंगे।

इसके अतिरिक्त पार्टी सगहन, अनुशासन एवं गोपनीयताके यह सिद्धान्त सत्य, क्रांति और निर्माणायक प्रयत्नोंकी परीक्षामें सरे उतर चुके हैं। यदि मुद्दमे और रोषन (पर) प्रक्रियामें चालू हुई तो उनके प्रति शोक प्रदर्शित किया गया,

सौ द्वा द्वा ता का प्र सार

किन्तु वह आवश्यक थे। इस प्रकार सार्वजनिक उन्नतिके हितमें व्यक्तिगत अवरोधों को दूर किया गया। और प्रगति नाटकीय, प्रेरणात्मक एवं प्रामाणिक आवश्यक रूपसे बढ़ी हुई थी।

इस नीतिके कुछ रूपोंने बहुतसे लोग अच्छी तरह नहीं समझ सके; जैसे प्रसिद्ध क्रांतिकारियोंका शारीरिक निस्कारण, सुपरिचित व्यक्तियोंका आरम्भिक अलोपन, भिन्न मन प्रदर्शित करनेका साहस करनेवालोंके प्रति अधिक संदेह और अविश्वास, कठोर आदर्श अमान्यतेके लिये कलात्मक प्रयत्नोंका गत्ता घोंटना, इतिहासके पुनर्लेखनकी प्रवृत्ति, और उन्ने उतरनेका प्रयत्न आदि विरवसाधन्यवादके सर्वव्यापक आक्रमणोंने समाजवादके गडको मुरझित करनेके लिये इन सभी बातों पर तथा इसके अतिरिक्त अनेक बातोंपर विचार किया गया।

यद्यपि सोवियत संघको इन प्रक्रियाओंने अनेक बहुमूल्य साधियोंको खो दिया, परंतु साम्यवादी आंदोलन फैलता गया और हर जगह लाखों आदमी इसे स्वीकार करते गये। समाजवादी दुनियामें साम्यवादके साइस और ईमानदारीपर विरवास प्रकट किया जाने लगा। सोव्येरी यह ह्द धारणा थी कि पूँजीजीवी समाचारपत्रोंमें जिन अपराधोंका उन्हें उत्तरदायी ठहराया गया था, उसमें उन्होंने भाग नहीं लिया होगा।

किन्तु उनका यह विश्वास गलत था। विवेकको त्याग दिया गया था। वास्तविकता यह थी कि सोवियत पार्टीसंगठन एक व्यक्तिके इशारेपर गलत या सही उसीके उद्देश्योंकी पूर्तिमें बराबर लगा हुआ था। अन्याचारोंने किसी समय निडर समझे जानेवाले व्यक्तियोंको भी शांत कर दिया था। प्रमुख प्रश्न यह है कि यह सब कैसे सम्भव हुआ।

पार्टीसंगठनके नियम लेनिनने बनाये थे। उनका यह विश्वास था कि सबसे अधिक अनुशासित और निष्ठावान राजनैतिक सतरी अर्थके रूपमें साम्यवादी पार्टीको संगठित किये बिना मजबूत राज्यकी स्थापना अशक्य है। उन्होंने 'प्रजातान्त्रिक केन्द्रोपवाद' का सिद्धान्त निष्कल, जिसके अनुसार सभी प्रवृत्तियोंपर पार्टीके अंदर ही तर्कविर्तर्क करके वैज्ञानिक एवं बुद्धिसम्मत नीति निर्धारित करनेकी आज्ञा थी,

किन्तु समीमे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे बहुमत द्वारा निर्धारित निर्णयों का इमानदारीमे पालन करें। पार्टीके विषय गोपनीय बनके जाते थे। भयंकर स्वयंके दरम्यान किसी राज्यको जीत कर वहाँ पर सत्ताके मजदूरोंको प्रेरणा देने योग्य समाजवादी टाचेको परिपुष्ट करते समय ऐसा करना जरूरी भी था। यही कारण है कि वहाँ लौहवत अनुशासन चालू था।

इतना होते हुए भी रानाजीके मोदके समय रैंडरुनी और प्लेखेनोव सरीखे अनेक नेताओंने लेनिनके पार्टी संगठन विषयक दृष्टिकोणके विरुद्ध चेतावनी देते हुए यह कहा कि इसका परिणाम एक व्यापक शासन होगा, किन्तु लेनिनके वाक्योंसे ही सार्यक समझ गया। पार्टीके अभ्यंतरिक जनतंत्रके वह स्वयं बहुत उत्साही अभिभावक थे और बहुमत द्वारा निर्णित नीतियोंके अनुस्यू आचरण करते समय सदैव विरोधी अल्पमतको अपने साथ ले लिया करते थे। जारशाहीका अंत हुआ। लेनिनकी पार्टीमे अपनी सार्यकता प्रमाणित कर दी थी।

क्रांतिके प्रथम वर्षोंने निर्बाध चोर्लीपूर्ण स्वातन्त्र्यके दौरान किये। यह सनत्त नवजाल मजदूर राज्य लगभग प्रत्येक क्षेत्रमें मनुष्यकी प्रगतिपर अप्रवर्ती परीक्षक बन गया। किन्तु लेनिन यह देखनेके लिये जीवित न रह पाये कि सत्ताहेतु सार्य करनेवाली पार्टीके लिये उन्होंने जो नियम और आचरण निर्धारित किये थे, वे राज्यके ऊपर पूर्ण अधिकार स्थापित करनेके उपरांत भी पार्टीके लिये ठाने ही उपयोगी हैं या नहीं। वे इसके लिये बहुत चिंतित थे, यह बात ३० वर्ष उपरांत लुथेन द्वारा उनके अंतिम मृत्युलेखको प्रकट करनेसे ज्ञात हुई है।

साम्यवादका विवेचन करते समय सोवियत साम्यवादी अब यह दावा करते हैं कि यह कार्य १९३४ में ही शरभ हो गया था। फिर भी १० साल से अधिक पूर्व लिखे लेनिनके मृत्युलेख एवं पत्रोंको डिगानेकी परना ही पार्टीके आंतरिक जनतंत्रके अन्तर्गत शरम्भ था। यह प्रतिलेख पार्टीके कार्यकर्ताओंको भी नहीं दितलाये गये थे। अतो चलकर उनके अस्तित्वके दावेकी भी झूठी बात कह कर उपेक्षा कर दी गई। यह तर्क किया जा सकता है कि किसी पार्टीके लिये मृतक नेताके आदेशोंका पालन करना आवश्यक नहीं है, किन्तु उनके दिगानेके प्रयत्नको तो अच्छा नहीं कहा जा सकता।

सौ दा द्र ता का प्रसार

उस समय क्या हुआ यह बात अब सर्वसाधारणकी जानकारीमें है। व्यक्तिगत रूपसे खालिनको दोषी ठहराना, यह दावा करना कि उनकी अप्रतिष्ठित शक्तियों चाह-ने ही पार्टीको बदनाम कर दिया था, यह सुझाव देना कि उन्हें जनता द्वारा प्रशस्ति नीतियोंके निर्धारक प्रकट करनेमें भूल हो गई थी (ऐसी भूल जिनके कारण वे भविष्यमें अपनी निर्द्वन्द्व स्थितिच प्रयोग स्वस्थ विरोधको व्यक्त करनेमें कर सकें), यह पवित्र आराध्य बनना कि यह बात भविष्यमें नहीं होगी, क्योंकि पार्टीके आंतरिक जनतंत्रकी पुनर्स्थापना हो चुकी है, वस्तुतः मार्क्सविषयक लेनिनवादी विचारोंका हास्यास्पद स्वरूप है।

अब यह स्वीकार किया जाता है कि सिद्धान्त और कार्यक्षेत्र ऐसा प्रक्षेपण केवल सोवियत सचमें ही नहीं बरन राजमत्त धारण करनेवाली अन्य पार्टियोंमें भी प्रकट हुआ था। इसके प्रतिरिध पूँजीवादी सभारमें सपर्यत अनेक साम्यवादी पार्टियोंके नाराका मूलधारण भी यही सप्रदायवाद था और हममें भारत भी सम्मिलित है। क्योंकि भारतीय साम्यवादी नेता कुछ भी कहें निन्तु वास्तविकता यह है कि भारतीय साम्यवादी पार्टीका इतिहास भी गुटसपर्य और वैयक्तिक भगवोंसे परिपूर्ण है। इन्होंने पार्टी जनतंत्रका मखौल कर रखा था तथा एक ओर मुंदर साइसी सदस्यता-को उशलीन एवं चिन्विन्न कर दिया था। परिस्थिति यही रूप है जिसने पूर्णतया बदनाम नेताओंको शक्तिराली बने रहनेमें सहायता दी है। ऐसी स्थितिमें यदि वे सोवियत सचके अनुभवसे उपयुक्त शिक्षा ग्रहण करनेका विशेष प्रयत्न नहीं करते तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

वस्तुस्थिति यह है कि जनतंत्र समाजवादी आत्मा है। अपने कार्यके प्रत्येक क्षेत्रमें साम्यवादी पार्टीको इस आदर्शके विधीर्ण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उन्हें नीतिके निर्धारण और बालन दोनोंमें सर्वसाधारणको पूर्ण रूपसे भाग लेनेके लिये प्रेरणाहित करना चाहिये। प्रारम्भमें आलोचना और स्व-आलोचना पर कोई रोक नहीं होनी चाहिये। उन्हें सदैव इस बात पर ओर डालना चाहिये कि पूँजीवादी जनतंत्रके विपरीत यहाँ पर सभी नागरिकोंको इस अधिकारका समान प्रयोग करनेका अवसर है। समाजवाद द्वारा उपदेशित आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता ऐसे आयुध हैं, जिनके द्वारा नवीन जनतंत्रका परिवर्धन एवं प्रसार होता है।

मौलिक संशोधनकी आवश्यकता

सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों में जो प्रयोग हुआ उसकी जड़े निकट पूर्वकालीन अवशेषों में ही नहीं खनी हैं, बरन कुछ सौंपूर्ण सिद्धान्तों में भी निहित हैं, जिनके आधार पर इस नये समाजवादी रचना हुई थी। महत्त्वपूर्ण स्थितियों में रहनेवाले लोगों को अब भी पूर्ववत् भारी मान दिया जाता है। अपने नाम के साथ सम्बंधित नीतियों की सफ़लता द्वारा उन्हें व्यक्तिपूजारी महत्त्व देनेवाली अविच्छिन्न जनता की वैयक्तिक स्वाभिमतिक प्राप्त हो जानी है। समुचित प्रणाली कल्पनात्मक भक्ति की अवस्थामें सफलता अविच्छिन्न दिखलाई नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त नीकरराही शासन की परंपरा, वैयक्तिक पंचद पर निर्भरता और गलतियों तथा भूलों को छिपाने की आवश्यकतासे उन शक्तियों को गति मिल जाती है, जिनका मत एक व्यक्तिकी या सामूहिक तान्त्रिकता में होता है।

साम्यवादियों को इन प्रतियोगियों बचने के लिये सदैव सतर्क किया गया है, किन्तु इन चेतावनियों से उपरोक्त ही क्या है, जब कि पारंपरिक सफ़लतामें तथा समाजवादी सोसाइटी की स्वतंत्रता विषयक धारणामें निरुत्तरवाद के बीज विद्यमान हैं।

यह कहना कि सम्यक्वाद और उसके अंगों को पूरी तरह से व्यक्त किया जा चुका है और भविष्यमें इसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी, समस्या की उद्घाटन करना है। मार्क्सवाद ऐसे योग्य व्यक्तियों से निर्माण जारी रखेगा जो व्यक्तिगत संघर्ष के समझौते को छोड़कर विचार होते हुए भी ऐसे विचारों को सफ़ल करने का अधिकार चाहेंगे, जिन्हें वे ठीक समझते हों। जनता का समर्थन प्राप्त होने पर उनके लिये अपने साथ मतभेद रखनेवाले समान योग्य व्यक्तियों के करना संश्लेषण बदलने के लिये तैयार । होने पर धन करना सरल कार्य होगा। यदि लेनिन ने विरोध के बावजूद भी अपने रहस्य अपने विचारों के समर्थक प्राप्त कर लिये तो इसका अर्थ यह नहीं कि स्थिति भी अपने ने निरंतर मन रखनेवाले व्यक्तियों के प्रति इतने ही सहनशील बने रहेंगे। तर्क द्वारा उन्हें शांत करने में असमर्थ होने पर स्थिति ने आतंकवाद सहित लिया। इसकी पुनरावृत्ति हो सकती है।

समाजवादी समाजवादी साम्यवादी पार्टियों अपने अंदर किसी बड़े या छोटे स्थिति के उदय को रोझने के लिये सस्था गत नियमों में मौलिक संशोधन की आवश्यकता समझते हैं। किन्तु संशोधन की यह प्रक्रिया निरिक्तरूप में घूमती है।

सौ हा दू ता का प्रसार

स्वतंत्रता के व्यक्त उत्कर्षनोंके सम्मम किया जा रहा है। मुकदमोंकी पवित्रता-को पुनः स्थापित किया जा रहा है। समाजवादी जननीय और उसके व्यवहार-विषयक सर्वोपरि धारणाओं पर उग्र विवाद हो रहा है। कुछ पार्टियोंकी गति दूसरोंकी अनेका अधिक तीव्र है, किन्तु मौलिक सिद्धान्तोंमें आन्तरिक संशोधनकी सम्भावना नहीं है। अनुभव द्वारा यह बीच विस्तार होने और नयी धारणाओंकी जन्म देगी।

क्या पूँजीजीवियोंके निर्वाचनों और समझौतोंके एक साथ रह करना उचित होगा अथवा उनमें कुछ स्वीकारात्मक गुण हैं, जिनकी रक्षा करके उन्हें विकसित किया जा सकता है? क्या साम्यवादी पार्टी राष्ट्रीय हितोंकी समस्याओं पर गुम रूपमें विवाद करके निश्चित करनेकी प्रणाली जारी रख कर पार्टीके बाहरवाली जनताके विपरीत प्रवृत्तियोंके स्वयं समझ कर निर्णय करनेके आधारसे कचिन करना जारी रख सकती है? क्या पार्टी सदस्यों सदैव किसी नीतिविषयक विरोधके जनताके सामने प्रकट करनेमें रोक रहनी चाहिये और क्या उसे अपने दृष्टिकोणको उस समय भी प्रचारित करनेकी स्वतंत्रता हो सकती है, जब कि बहुमतवा निर्णय हम सिद्धान्तके विरुद्ध हो? क्या समाजवादी वैधानिक न्यायविभागकी पूर्ण स्वतंत्रता आवश्यक समझनी है और यह कैसे प्राप्त की जा सकती है? क्या जनताके सम्बंधित मातृहिक संगठनोंके द्वारा ही अपने अनुमोदन और अनुमोदनके व्यक्त करना चाहिये और क्या किसी संगठनको ऐसे दृष्टिकोणको प्रचारित करनेका अधिकार है, जो निर्धारित नीतिके विरुद्ध हो? क्या लेनकी, क्लेमकी और ग्यबकीये यह धनधान्य आवश्यक है कि उन्हें क्या निखना या क्या प्रदर्शित करना चाहिये या लोगोंको उन्हें संरक्षण देनेकी स्वतंत्रता रहनी चाहिये? प्रसिद्ध व्यक्तिबोद्धा निर्मित समितियोंका शासन लोक-तांत्रिक कैसे हो सकता है जब कि समितियों स्व विहित स्थापना पोषक बन सकती हैं? नैतिकवादी अविश्वस्योंके शासनके रोक्नेके निषे अधिक, राजनैतिक और सामाजिक संगठनोंका विकेन्द्रीकरण किस सीमा तक होना चाहिये, जिनमें विभिन्न वैयक्तिक कार्यक्रमोंकी नीति विहित प्राप्त अनुभवोंके द्वारा निर्धारित की जा सके?

यह उन अनेक प्रश्नोंमेंसे कुछ हैं जिनपर विवाद हो रहा है। यह प्रश्न निरर्थक प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु वास्तवमें ऐसे नहीं हैं। हम ऐसे समारमें निराप करते हैं, जहाँ शक्ति आधिकारिक केन्द्रित करके विभिन्न दिशाणी न्यायोंके हाथमें

बायी जा रनी है। पूँजीजीवी छोटे प्रभावधरी व्यवहार प्रस्तुत करनेमें असमर्थ रहे हैं, क्योंकि पूँजीजीवी समाज मौलिक समानताओं अपरिचर करता है, जो प्रजापत्रवाद एक मात्र आधार है। अतएव समाजवादी राज्यके सम्मुख यही प्रमुख कार्य है।

कुछ लोगोंमें यह तर्क है कि राज्ययन्त्र और नीतिरक्षात्मक इतना अधिक विस्तार करनेवाली और जन्ममें ही स्वतन्त्रताको हिंसा द्वारा नष्ट करनेवाली व्यवस्थामें ऐसे कार्य संपादनकी सम्पत्ता करना भी बेकार है। वे इस बातमें भूल जाते हैं कि यदि पार्टीकी योजनाओंमें आगे भयंकर आर्थिक बाधाएँ बिजनात होना तो इतने शक्तिपूर्ण प्रयत्न सम्भव न हो सकते, जिनके द्वारा एक पिछड़ा हुआ समाजवादी देश कुछ दशान्दियोंमें ही आधुनिक औद्योगिक राज्य बन गया है।

सभी उपरान्त प्रमाणोंमें यह मालूम पड़ता है कि स्थितिमें हमोंने त्रिके पार्टीको पूर्ण निर्माणक शक्तिके रूपमें ही आग बर दिया। यह सच है कि विन्ती क्षेत्रोंमें राष्ट्रीय आन्दोलनका शरीरीक उत्प्रेदन हुआ, यहही सृष्टि पर प्रहार हुआ, पार्टीके बाहरी तन्त्रोंकी परेशानियों हुई और भय एवं संदेह चारों ओर व्याप्त था, किन्तु इन आनेकवादी प्रक्रियाओंमें जनताकी अनेक पार्टीकी अनिष्ट हानि उग्रनी पड़ी।

यदि ऐसा नहीं होता तो स्थितिमें मान संविधान जनताकी एकताका प्रतीक नहीं बन पाता और न लोगोंकी ऐसे सन्निवेश करनेके लिये विश्वास बिना जा सकता, जिन्हें विशेषी आलोचक भी बहुधापूर्ण एवं अहितोष मानते हैं। पुनः यदि वास्तविकता भिन्न होती तो सन्निपूर्ण परिणामोंमें निर्भय रहते हुए आत्मानोंके साथ स्थितिमें हटाना सम्भव होता।

स्वतन्त्र प्रवेश भी समाजवादी देशोंके अंदर नीतियोंको कार्यान्वयन करनेमें जनताके सामूहिक सहयोगकी पुष्टि करते हैं। इसी सहयोगके मनानातर कार्य पूँजीवादी समाजके प्रतिवादक नहीं दिखना सकते। इनके अतिरिक्त साम्राज्यवादी देशोंमें जैसा आनेक फैला होगा है और उसकी मुक्ताने समाजवादी देशोंका आनेक बहुत कम मौल्य पड़ेगा।

सौ हा द्र ता का प्र सा र

साम्राज्यवादको कायम रखनेके लिये बितने लाख आदमियोंको चुपचाप हनाल कर दिया गया ? ओटों पर स्वतंत्रता देने नारोंके साथ बितने हजार आदमियोंको श्राव भी पश्चिमी दूरस्थ प्रदेशोंके मैमिरो द्वारा मौतके घाट उतारा जा रहा है ?

साम्राज्यवादियोंको बेरिया-बिलारके साथ अंतिमरूपसे स्वदेश वापिस लौटानेमें पहले बितने हजार आदमियोंको अभी और नष्ट होना पड़ेगा ? यह प्रश्न पर्याप्त हैं। हम लाखों व्यक्तियोंकी तो मिनगी ही नहीं कर रहे हैं, जिन्हें उपनिवेशोंमें बीमारियों और अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों के कारण नष्ट होना पड़ा था जो नष्ट हो रहे हैं।

समाजवादी देशोंने सोरनमको फलने-फूलनेका आधार प्रस्तुत कर दिया है और समाजवादी स्वतंत्रताके क्षेत्रको विस्तीर्ण करनेवाला युग परिष्कृत होगा, जिसके फलस्वरूप जनमापारणमो प्रज्ञा और निर्माणात्मक प्रयत्नोंपरमे बंधन हटते जायेंगे। इस बात पर संदेह करनेवाले व्यक्तियोंको एक महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करना चाहिये, जिस पर अभी ध्यान नहीं दिया गया है। समाजवादमें आज प्रथम बार समारकी एक व्यवस्थाके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है, एक ऐसे समुदायके रूपमें जिसकी ओर मानवजाति अप्रसर हो रही है। दोष निरूपणके समस्त प्रयत्न भी इस तथ्यको नहीं छिपा सकते।

पूँजीवादकी अवनति हो रही है। वह अपने स्वयंके अंतर्विरोधोंमें डूबकर गया है। निर्धन व्यक्ति पूँजीका उत्पादन करते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत दरिद्रतामें ही उन्हें जीवन-यापन करना पड़ता है। प्रमुख रूपमें जन्म और उत्तराधिकार द्वारा धन प्राप्त करनेवाले अधिक धनवान होते आते हैं। जहाँ अंतर्विरोधोंमें ही मुक्तमन्य जा सकता, वहाँ तनावकी स्थिति पैदा हो जाती है। यद्यपि पूँजीवाद प्रत्येक संकटको दवानेके लिये समाजवादी विचारों द्वारा निर्धारित उपचारोंका प्रयोग कर रहा है, किन्तु फिर भी वे बढ़ते ही जायेंगे। संयुक्त राज्य अमेरिका कुछ भी रुढ़े पर वह भी इस दबावका अनुभव कर रहा है और यह दबाव बढ़ता ही जायगा।

अभी अधिक दिन नहीं हुए जब एक व्यंगचित्रमें समाजवादी प्रतिपादककी एक अजीब मक्कीके रूपमें निराशाओंका झर लादे दिखाया गया था। वह लम्बे

वालोंका, बिना हजामत सिधे सुरे हाथलवाला, विनित, अमराधी, कूर और उपयुक्त अवसरपर बड़ी किये जाने योग्य जानवर प्रतीय होता था। विरकी अधिकतर जनसंख्याकी समझमें अब ऐसी मूर्ति नहीं आ सकती। वे समाजवादी हैं और उन्हें इन मूर्तिके साथ कोई समानता नहीं दीज पड़नी। आजकल पूँजीवादके उपदेशगोष्ठे विचित्र प्राणी समझा जाता है। इतिहास गतिशील है। जीवनके मूल्य बदलते हैं। और सम्भव है, थोड़े दिनों पश्चात् ऐसे विचारकोंको डाकटरी विवेचन योग्य नमूने समझा जाने लगे।

वर्तमानकालक यह प्रसुत तथ्य है, ऐसा तथ्य जिसके कारण समाजवादी राज्यको सम्राटवाद, नौकरशाही और भ्रष्टाचारकी समस्याओंके साथ मन्त्रमुग्ध करनेमें सहायता मिलती है, क्योंकि उन्हें अब यह डर नहीं है कि पूँजीवादी विचारधाराको पुनर्जीवित करनेकी इच्छा रखनेवाले लोगों द्वारा इन क्षेत्रोंके परीक्षणोंका उनके विरुद्ध उपयोग किया जा सकता है। अंतिम विवेचनासे यह पता चलता है कि अनेक छोटे-बड़े देशोंमें समाजवादका आस्तित्व तथा भारत सहित देशोंमें नया समाजवादी प्रयोग इन बातोंकी एक नई गारंटी है कि संकुचन दृष्टिकोण, गलतियोंको दूर करनेकी अनिच्छा, कूर और अविज्ञानिक दृष्टिकोण सर्वत्र नहीं बना रह सकता। क्या सोवियत संघके दुःखपूर्ण भयंकर और कूर अनुभवोंका अन्य समाजवादी सरकारों द्वारा शिक्षा ग्रहण करनेके उद्देश्यसे यथेष्ट ध्यानपूर्वक अध्ययन नहीं हो रहा है? यह भावना और सोवियत नेताओंकी स्वीकृत आलोचना ऐसी बातें हैं, जिनमें उनके अनुभवोंकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

लेनिनकी शिक्षाओंकी और प्रतिगमन, जिनका अर्थ अविधायपूर्ण वर्तमान कामकी पार्टियोंमें एक वीरके स्थानपर दूसरेकी प्रतिष्ठा लगाया जाता है, साम्यवादी विचार और व्यवहारके मूल सिद्धान्तोंकी और वापसीरा सूचक है। लेनिनका पुनर्विचार करते समय, यदि उन्हें अनावश्यक रूपसे उद्धृत करनेका अपरिष्कृत ढंग आनाया जाता है, तो यह मान्य पड़ेगा कि इन व्यक्तिमत्त्वप्रवृत्तिका कारण लेनिनके विचारोंकी पहिलेमें पूर्णतः भिन्न युगमें गमन दुर्लभ है। स्वयं लेनिनवादके मूलमें पहुँचकर साम्यवादी प्रणालिके प्रति मानसवादी दृष्टिकोणके पुनर्निर्धारणका और इसके उपरान्त उनमें संशोधन करके निर्माणक सुधार

सौ दा द्र ता का प्रसार

करनेका एकमात्र विवेकपूर्ण मार्ग है। यदि समष्टि-विपक्ष दोषपूर्ण विचारोंको स्थापित करनेके लिये लेनिनको उद्धृत किया जाता है, तो इस बातको सहन नहीं किया जा सकता। इसकी उपमा स्वीकार्य होनेके लिये स्थापितको उद्धृत करनेमें ही जा सकती है।

स्पष्ट भारतीय नेहरूने इस बार भी इस ऐतिहासिक विकासको समझनेकी प्रवृत्ति दिखाई है। बीमारी बेमिमाके निर्णय समारकी समस्याओंपर क्या प्रभाव डाल सकते हैं, इस बातको अच्छी तरह समझनेके परचात नेहरूने सोवियत नेताओंके साहसी कार्यमें समर्थन प्राप्त करनेके लिये राजनैतिक स्तर एक निश्चयात्मक अंतर्राष्ट्रीय अभियान आरम्भ कर दिया है।

वे राष्ट्रमंडलके राजनीतिज्ञोंमें इस अभियानको सफलतापूर्वक चला रहे हैं और उन्हें यह पान माननेपर विवश कर रहे हैं कि सोवियत मारस्थाको 'उदार' बनानेके लिये महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय कदम उठाये गये हैं। यह स्थिति संयुक्त राज्य अमेरिकाके विरुद्ध है। वे सभी लोगोंने इस विषयपर बातचीत कर रहे हैं तथा उन पर सोवियत सपके प्रति अपना दृष्टिकोण बदलनेके लिये जोर डाल रहे हैं।

सोवियत सच तथा सौदा समाजवादी ससारमें होनेवाली यह प्रगति नेहरूने उन देशोंके तथा भारतके मध्यस्थित अन्धन गम्भीर मनभेदोंको दूर करनेके प्रयत्नोंका प्रतिनिधित्व करनी मालूम पड़ती है। उनका विचार सदैव बही रहा है कि साम्यवादके हग ही घुरे हैं अर्थात् अपेक्षित 'लक्ष्य' को प्राप्त करनेके वे 'तरीके' जिनरी विवेकपूर्ण युक्तयुक्तता वे नहीं बताला सकते। नेहरूके विचारोंमें अब भारी परिवर्तन हो गया है। अब वे अपने देशके करोड़ों व्यक्तियोंके ही नहीं बरन समार भरके उन करोड़ों व्यक्तियोंके भी प्रतिनिधि हैं, जो विश्वमें समाजवादी युग लानेके लिये किमी दिन साम्यवादियोंमें संयुक्त हो जायेंगे।

इस समय भी जब कि यह पक्षियों लिखी जा रही है, अब तक विरोधी समके जानेवाले वामपक्षियों और साम्यवादी पार्टियोंमें अर्थात् अधिकजग कट्टर राष्ट्रवादी समझौतेकी बात-चीत जारी है। सभी देशोंमें यह मामूलाव्य दरय है। प्रभाव और शक्तिसे पूर्ण ऐसे भी अनेक आदमी हो मफने हैं, जो इन प्रवृत्तियोंका विरोध करेंगे,

सौ ह्यद्र ता का ना रा 'पंचशील'

क्योंकि वे इसमें अपने वर्गयुक्त समाजके लिये एक खतरा देखते हैं, किन्तु इस सौहार्दताका प्रचार होता ही जायगा ।

'पंचशील' ये दो भारतीय शब्द जिन्हें नेहरू-नू घोषणाके ममत्र उद्देशके साथ निरर्थक बहकर टाल दिया गया था, आज सौहार्दताका नारा बन गये हैं । वही दो शब्द मदैवके लिये अन्तर्राष्ट्रीय वचनावली शब्दावलीमें सम्मिलित कर लिये गये हैं । हमें यह देखना चाहिये कि वे समाजकी इनने मार्थक क्यों दीखते हैं ।

पंचशील क्यों ?

जलने चंगारोंकी एक बँझार आई, जिसमें कण्डोंका एक और अस्थियाँ भिँकी हुई थी। धुँएँ थीर विलक्षण लफटोंने उनकी आमाको हरा दिया। आकाश गर्मकी आलके समान धूमिल हो रहा था।

—कानीशम

कृपावली मनुष्योंमें हजारों वर्ष पहले रहनेवाले पूर्वकालीन मनुष्योंके सामने अगम या पेहली छानर लिमर करने विचार व्यक्त करना सीखनेमें पहले भी, सदैव यही प्रमुख प्रश्न रहा होगा कि क्या वे अपने माथियोंके साथ शान्तिपूर्वक रहकर जीवन-यापन कर सकते हैं ?

अनेकों शताब्दियोंमें तद्विपरक तर्कों और अनुमानोंकी गूँज रही है। पूर्व-कालीन अनुभवोंके आधारपर अधिकतर दार्शनिक और इतिहासकार इस निराशापूर्ण निर्णयपर पहुँचे हैं कि मनुष्यकी प्रकृति ही उसे अन्यायकारी बननेपर विवश करती है। दूसरे लोगोंने अधिक आशापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया, किन्तु उनकी सट्या कम ही और वे यह हद विस्वास भी उगम न कर सके, क्योंकि भूल और बर्ननाम कालीन प्रमाण उनके दृष्टिकोणसे निरर्थक सिद्ध करते थे।

भिन्न भिन्न ऐतरेनिक व्यवस्थावाने देशोंके शान्तिपूर्ण सहस्रसन्निवका प्रश्न तो दरअन्तर अभी उभ्र नहीं था। इनका प्रमुख कारण यह था कि थोड़ेसे अक्षमोंकी झोंककर माथ-माथ रहनेवाले अनेक सगठित मनुष्योंकी सामाजिक व्यवस्थामें सदैव लगभग समानता रही। स्वयं कृषकों, युवान-कारियों, कुलीन तंत्रियों और माथियोंके अनेक समुदाय बने और मिश्रित। फिर पूँजीवाद आया और उनके परिवर्धित रूपके सामने अधिकतर विचारोंके कारण पुगनी व्यवस्थाओंमें घुटने टेकने पड़े। प्रथम पूँजीवादी राज्य १७ वीं शताब्दीके परमार सामन्तवादी राज्योंके माथ बनार और कच्चे मानके निम्ने युद्ध करने लगे। आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दीमें विश्वको परस्पर

विभाजित करनेके प्रयत्नसे लेकर उनमें आत्ममें युद्ध हुए। इसमें एशिया और अफ्रीकाके सामंतवादी राज्योपर प्रभुत्व स्थापित करना अंतर्निहित था, क्योंकि यह स्थान पहले अन्न और कच्चे मालके माग्न थे। यह मतलब लूट थी और साथ ही साम्राज्यवादी सुपथ उदय था।

इस संपूर्ण अतीतमें कभी कभी शान्ति भी शासन रहा, किन्तु इस शांतिमें प्रकृति और मनुष्य के मध्य दौलतों पर नियंत्रण प्राप्त करनेके पूर्व ‘विध्वंसन’ या ‘सोपान लेने’ के अनुभव थे। आखिर जिनमें सहस्रसंख्यक कहते हैं, यह समझ तो उन दिनों विचारके लिये भी नहीं थी। सम्भवतया आधुनिक दृष्टिकोण से सनातन वैदिककालके प्रारंभ पर ही लोगोंमें आत्म केंद्रित था।

किन्तु समाजवादी आलोचकोंके प्रचार और समुक्त सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक नामक मजदूरोंके प्रथम राज्यके अभ्युदयके साथ ही इस परिस्थितिमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। अपने विस्तृत साम्राज्योपर अभिर्भाव पूर्वीवादी राज्योंने मन्त्रवादके अभ्युदयमें अपने अभ्योमित लाभके माग्नके लिये एक मजदूर उत्तरेके दर्रा लिये।

तथा छोटे-मोटे पारस्परिक अन्तर्गत शक्तियों द्वारा शासन करके, अंतर्गतोंको मिटाकर साम्राज्यवादियोंने मजदूर राज्यको नष्ट करनेका प्रयत्न किया, जिनमें से समाजवादी भी नामूरता केन्द्र मसम्भने थे। इनके विरुद्ध समाजवादने सर्वप्रकारोंको औपनिवेशिक और पूर्वीवादी दास्यत्वमें मुक्ति दिलानेके लिये निरंतरताके साथ अपना लक्ष्य ‘साम्राज्यवादका अंत’ घोषित कर दिया।

दो निदान, जिनमें एक पुरानी और लूटने वाली थी तथा दूसरी नई और ओपन थी, परस्पर टकरानेके लिये आने लगे थे। परंपरागत रूप जो समाज उत्पन्न हुआ उसके समस्त विश्व प्रभावित हो गया। अंगरेज, तीगरे और चलीसवें बर्षोंका इतिहास भी इसी भावी संघर्षकी कहानी बतलाता है। यद्यपि संघर्ष अन्न तक जारी है। सहस्रसंख्यकके द्वारा इसीके अन्तर्गतजनता प्रयत्न हो रहा है।

यह कैसे सम्भव हुआ जब कि ये दोनों निदान अन्न ही एक दूसरेके विरुद्ध संघर्षरत हैं? यह बात आगामीने समझी जा सकती है। भविष्यमें युद्धोंकी स्थानीयकरण करने या किसी अन्य कारणोंसे लोकित करनेकी वस्तु नहीं

पंच शील क्यों ?

समझ जा सगना । आणविक और उद्‌जन राजाओंके विनाशके साथ युद्धका रूप ही परिवर्तित हो गया है ।

आणविक और उद्‌जन युद्ध कहीं भी हो, विन्तु वह ममस्त समारको रेडियो सक्रियताके परिणामस्वरूप होनेवाले कष्टोंसे आच्छादित कर देगा । समाचारपत्र प्रतिदिन हमें यह बतलाते हैं, कि क्या हो सकता है । बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि तत्स्थ नगर विन्तु अन्य स्थानपर होनेवाले आणविक युद्ध द्वारा नेस्तनाबूद होनेमें सब सकते हैं, विन्तु रेडियो सक्रियता सभी विपत्ते शिकार तो हो ही जायेंगे, जिनके पूर्ण प्रभाव अभी विज्ञान हमें नहीं बतला सका है ।

दूरे राज्योंमें, सर्वनाशो अथ प्रत्येक जीवन मानवके लिये चिन्ताका कारण बन गये हैं, क्योंकि वे राष्ट्रों और सिद्धान्तोंका अन्तर नहीं समझते । इन मध्य शताब्दीका यह महत्वपूर्ण तथ्य है ।

आइये, उन थोड़ी-सी बातोंपर विचार कर लें, जिनपर स्वयं वैज्ञानिक सहमत हैं । अधिकतर लोगोंने यही विचार है कि आणविक और उद्‌जन आयुधोंके अब तक जो १०० छोटे-मोटे परीक्षण सोवियत संघ, प्रगत महात्माग और संयुक्त राज्य अमेरिकामें हुए हैं, उन्होंने सन्तुल समारको भयंकर रेडियो सक्रियतासे आच्छादित कर दिया है । मानवजाति और वनस्पति जीवनपर उनके प्रभावका अनुमान लगानेमें अभी अनेक दशाब्द्यों लगेयेंगे । सम्भवतया अमेरिका महाद्वीप सबसे अधिक अरक्षित है, क्योंकि प्रशान्त महासागरीय द्वीपोंके लिये अरक्षित भयंकर विस्फोटोंके अतिरिक्त यहीं पर अधिकतर परीक्षणालम्बक विस्फोट हुए हैं । अब यह धारणा बल प्राप्त करती जा रही है कि उन्होंने समस्त जीव-जगतको बड़ा भारी नुकसान पहुँचाया होगा । ऐसा अनुमान जिसे प्रारम्भमें खोजना सरल नहीं है ।

इसकी शिक्षा स्पष्ट है । जीवधारियोंको मौसमी एवं अन्य परिस्थितियोंमें होनेवाले परिवर्तनके अनुसूच बननेमें हजारों वर्ष लग गये । यदि सूर्यके प्रकाश तथा जल एवं वायुकी अंतर्वस्तुके अन्यत नाजुक अनुत्पन्नमें कुछ हलचल होती है, तो उनके ऊपर आश्रित जीवों पर उनका असर पड़ना अनिवार्य है । एक बार हलचल होनेके पश्चात् कोई आसानीसे इस बातकी भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि आगे क्या होगा । वैदिक परिवर्तन होंगे जिन पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं है ।

कुछ वैज्ञानिक जलवायु में सभी स्थानों पर स्पष्ट रूप से परिवर्तित होनेवाले परिवर्तनों को इंगित कर रहे हैं। यह परिवर्तन सम्भवतया मनुष्य निर्मित दैत्याकार विस्फोटों के परिणाम स्वरूप हुए हों, जिनके विषय में कहते हैं कि वे ऊपरी वायुमंडल में हलचल पैदा कर सकते हैं।

इस तनाव में सामान्य कभी आने के बावजूद भी आपाधिक और टपटप नभिकीय अनुसंधान के ऊपर गोपनीयता का आवरण पड़ा हुआ है। इन पर भी उद्घ्वन कम विस्फोटों के विषय में अब कुछ तथ्य उपलब्ध हो गये हैं। हम जानते हैं कि इन विस्फोटों पर कार्य करने वाले वैज्ञानिक उनकी भीषण शक्तों देखकर स्तब्ध रह गये हैं। सोवियत के एक अंतरिक्षी विस्फोट के दरम्यान सूर्य के अंतरांग के बराबर गर्मी उत्पन्न हो जाती है। इस सिद्धि की सम्भावना पर कुछ वर्षों पहले किसी को विश्वास न होता।

आणविक वैज्ञानिकों ने गणना करके अब यह दृष्टिकोण बना लिया है कि एक ही स्थल पर बारबार विस्फोट सम्भवतया इतनी अधिक रेडियो-सक्रियता उत्पन्न कर सकते हैं कि शायद पृथ्वी पर जीवन रहना भी असम्भव हो जाय। यह भी सच है कि इन सिद्धान्तों का समान योग्य वैज्ञानिक ही खंडन अथवा परिष्कार कर रहे हैं, किन्तु सभी लोग इस बात में सहमत हैं कि हम लोग ऐसे अन्तर्गोले खेलना नहीं सह सकते, जिसकी शक्ति अभी तक न तो अच्छी तरह समझा जा सकी हो और न उसकी गणना ही की जा सकी हो।

इस कारण मौलिक रूप से यह बात समझना अत्यंत आवश्यक है कि इन दिनों समार जिन सघर्षों में देख रहा है, वह उन लोगों के बीच में है, जो व्यापक अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को विचार-विमर्श करके तय करना चाहते हैं तथा दूसरे लोग जो इसका फैसला युद्धमय तरीके से करना चाहते हैं। अब यह सघर्ष साम्यवाद और साम्यवाद विरोधियों के सघर्ष नहीं है। समार के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन आणविक युद्ध के परिणामों की अच्छी तरह समझने के कारण सम्भव हो सका है। वस्तुतः साम्यवाद के कट्टर विरोधी भी शांति प्रयत्नों में सम्मिलित हो रहे हैं अथवा उन्हें सम्मिलित होने की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। २० वर्ष पहले यह बात अविश्वस्य सम्भव नहीं हो सकना था।

पंचशील क्यों ?

द्वितीय विश्वयुद्ध के आणविक सस्त्रों के संचुक्र राज्य अमेरिका ही एकाधिकार था, उस समय बंदूकबाजी में प्रमत्त रहनेवाले एडमिरल और जनरल भी, जो युद्ध के द्वारा साम्यवादियों को नष्ट करने पर तुले हुए थे, इन नये प्रत्यावर्तक शस्त्रों के प्रयोग से किफाई रहे थे। अब यह परिस्थिति और भी अधिक उन्नत गई है, क्योंकि ऐसा कोई एकाधिकार रोप नहीं रह गया है तथा सोवियत विज्ञान ने केवल इन्हीं पर दक्षता प्राप्त नहीं कर ली है, बल्कि आणविक अनुसंधान में भी संसार में आगे निकल गये हैं। स्वतंत्र प्रथम उद्घाटन समारोह विस्फोट किया है, एक ऐसा राष्ट्र जिसकी विस्फोटक शक्ति अनेकों लाख टन टी० एन० टी० के बराबर है तथा जिसमें हिरोशिमा और नागसाकी को हिला देनेवाली आणविक शक्तियों को संचुक्रित कर दिया गया है।

इस कारण सभी लोग अब यह बात अच्छी तरह समझ गये हैं कि साम्यवाद का वैश्ववाद से निर्भीक आतंकिक आणविक आनंदान द्वारा विजय प्राप्त नहीं की जा सकती तथा इन दोनों सिद्धांतों के समर्थकों का सहअस्तित्व आवश्यक है, क्योंकि इस समय हम वास्तवी कोई सम्भावना नहीं कि इनमें से कोई भी इस पृथ्वी को छोड़कर सूर्य में किसी अन्य नक्षत्र पर निवास करने चला जाय इन दोनों के साथ साथ एक दूसरे के पार्श्व में रहते हुए लोगों को यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि कौन-सी व्यवस्था उनके भविष्य का निर्माण करेगी।

इन बातों की स्वीकारणा ही निरंतर विस्तृत होनेवाली शांति की भावनाओं का आधार है, जिसने युद्ध के इच्छुकों को पूरी तरह एकाकी बनाने का बीड़ा उड़ा लिया है। भारत ने इस भावना को विस्तीर्ण करने और उसे शक्तिपूर्ण बनाने का भारी प्रयत्न किया है। संयुक्तराज्य अमेरिका के उच्चतम स्तरों में भी यह दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है। महादलों के निर्णय के लिये युद्ध का टप लगाने के यह प्रथम चिन्ह हैं।

मगरे अब भी हैं और हजारों। संयुक्तराज्य अमेरिका द्वारा जो साम्राज्यवाद का एकमात्र आधार रह गया है, इसमें प्रवेष्टा नागरिकों के साथ पोषण किया जाता है, इस परिवर्तन को जिसने अमेरिका तथा उसके पृष्ठपोषक अन्य प्राचीन तर साम्राज्यवादों के पारस्परिक तोड़ सस्त्रों और विधेयों को आच्छादित कर रखा है। समाजवादी समारोहों सुन करने के प्रयत्न निष्क्रिय बना देते हैं।

इस मुद्दाके साथ-साथ प्रशासनिक उदारताने न केवल साम्राज्यवादी शक्तियोंके पारस्परिक तनावको अधिक उत्तेजित कर रहा है, बल्कि कमालुमार स्वतंत्रता और मार्क्सवादिवादके दर्शन करनेवाले एशिया और अफ्रीकाके पूर्ववासीय उपनिवेशोंकी भी स्थितिमें अधिक सुदृढ़ कर दिया है। साम्राज्यवादी दवावके मामले में अब अपने आपकी शक्ति नहीं पाते हैं। अब उनको मथाभिभूत नहीं किया जा सकता। इन क्षेत्रों और आजारोंको साम्राज्यवादी दुनियोंके भाग बननेमें बचाने के लिये साम्राज्यवादको महत्वपूर्ण हथियारोंका प्रयोग करके देखना चाहिये।

भूभागोंपर शारीरिक अधिकार आजकल लाभप्रद ढंग नहीं रह गया है, जिसके द्वारा साम्राज्यवाद मज्जि प्राप्त कर सकता। भूकालमें इसने लाभ प्राप्त हुआ था किन्तु अब वषोले दलित किया जानेवाला जनसमूह इसे सहन नहीं कर सकता। हिन्द चीन, मलाया, फीलिया और उत्तरी अफ्रीकाकी घटनाओंका साक्षात्कार कीजिये। यह सब उपनिवेशोंमें काममें लाये जानेवाले लोमोंके दुःसाहसिक कार्य हैं, जिनकी सम्पन्नता निश्चित है।

अब साम्राज्यवाद सरकारोंको पथभ्रष्ट करनेका पक्का रचना है, उनकी इच्छाका पालन करनेके लिये तैयार देशोंपर बातोंकी वर्षा की जाती है। प्राथमिक रूपसे ऐसे कूटनीतिज्ञोंकी खोज होती है जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करनेके लिये तैयार हों। उसके उपरान्त ऐसे व्यक्ति अपने देशकी सरकार बेचनेमें सहायता करते हैं। इस प्रकार जनताके मुलावेमें हालनेका प्रयत्न किया जाता है तथा सिंगेनेरी और क्याग-वार्ड-रोक सरीखे लोमोंको “स्वतंत्रताके कारण” में अपने आपकी उत्तर्जित कर देनेवाले जनप्रिय नेताओंके रूपमें प्रदर्शित किया जाता है। यह प्रक्रिया सस्ती है और कभी कभी प्रभावशाली प्रमाणित होती है, किन्तु फिर भी यह साम्राज्यवादी व्यवस्थामें परिष्कार सद्य (भारी अनुपातिक अनरका सद्य) का समाधान नहीं कर पाती।

पूर्ववासीय उपनिवेशोंके लोकोंके चालियोंको स्वतंत्रता, प्रजातन्त्र और प्रगतिके मानवतात्मक रूपोंमें कोई आकर्षण नहीं है। उन्हें अब, रोजगार चाहिये और चाहिये उन्हें सुख। साम्राज्यवाद सहायता प्रस्तुत करता है, किन्तु ऐसी सहायता

पंचशील क्यों ?

नहीं ज़िम्मे पिड़नी हुई अर्थव्यवस्थामें परिवर्तन हो सके, भारी उद्योग स्थापित हो अथवा इन क्षेत्रोंमें स्वावलम्बी बननेमें सहायता मिले ।

इसके बदलेमें जो वस्तु प्रस्तुत की जाती है वह है रीतिरूढ़ सहायता, जो सहायता नहीं, बल्कि पूर्व अप्रयोजित साधनोंके ऊपर भारस्वरूप है । बुद्धक विमानों और टेक्नोसो निर्मूल्य सेना भले ही यात्रापूर्वक प्रणीत हो, किन्तु उनकी देखभाल कीज करेगा ? इन कार्यमें भारी व्यय होता है और पूर्वसलीन औपनिवेशिक समारके किसी भी देशके पास इतने साधन नहीं हैं कि इन की जानेवाली सहायताकी परेश भी कर सकें ।

स्वभावतः साम्राज्यवाद एशिया और अफ्रीका शान्तियोंकी अपेक्षित सहायता प्रस्तुत करना असमर्थ समझता है । ऐसी सहायताके द्वारा पश्चिमके हाथसे उसके एकाधिकारी बाजार विकल जायेंगे और फिर ऐसा वैजया क्षेत्र बचेगा, जिसका उद्बोधन हो सके । फिर साम्राज्यवाद जिसके ऊपर धनी और शक्तिपूर्ण बन सकेगा ?

इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादमें प्राप्त होनेवाली सहायता निजी क्षेत्रोंमें अर्थात् एकाधिकारियोंके संगठनोंसे आती है । वे ऋण स्वरूप ऐसा धन देते हैं, जिसमें उनका सामान, यत्न और उनकी जानकारी विक्रय की जा सके । और वे विनियोजनकी सुरक्षा, लाभकारी भ्याजकी दर तथा अधिकतर पक्षपातपूर्ण व्यवहारकी अपेक्षा करते हैं । ध्यानमें देखने पर यही मालूम पड़ता है कि इन शर्तोंका अर्थ राष्ट्रीय सार्वभौमिकताका उत्कर्ष है, जिसे सड़नेके लिये नवस्वतंत्र जनता तैयार नहीं है ।

यह परिस्थिति ऐसे समय विद्यमान है जब कि समाजवादी सत्ता, विरोध तौर पर सोवियतसंघ पिछले देशों द्वारा अपेक्षित राष्ट्र निर्माणी सहायता देनेकी स्थितिमें है । यह ऐसी सहायता है जो बिना किसी उपयुक्त पारस्परिक लाभकी शतावर प्राप्त हो जाती है । पुनः यह ऐसी सहायता है जिसकी तब तक संकटों गुना बढ़नेकी आशा है । जब तक कि बुद्ध नहीं होगा और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सद्बलित्वके पंच मिश्रानों द्वारा नियंत्रित होते रहते हैं ।

साम्राज्यवादके लिये यह सम्भावना अत्यंत भयावह है । यदि पंचशीलका आधिपत्य रहा तथा समाजवादी समारकी वर्तमान गतिमें प्रगति होती रही, तो वह निश्चय

शीत युद्ध की नीति में परिवर्तन

भविष्यमें ही पिछड़े देशोंकी आर्थिक उन्नतिके लिये अपेक्षित साधनोंको प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो सकेगा। क्या साम्राज्यवाद आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रमें होनेवाले इस संघर्षमें बचकर जीवित रह सकता है ?

संयुक्त राज्यका परराष्ट्र विभाग इनका उत्तर इंदनेमें प्रकटगोल है। जनवरी १९४६ में व्लेसने अपने देशके राष्ट्रप्रीन प्रतिनिवि-मंडल द्वारा उनके सामने प्रस्तुत किये हुए एक वक्तव्यको प्रकाशित किया था। उसमें कुछ स्पष्ट बातें कही गई थीं। उसमें लिखा था कि "वर्तमानकाल किसी दिन इतिहासमें साम्यवाद और स्वतंत्रताके मध्य होनेवाले संघर्षके महत्वपूर्ण परिवर्तन बिंदुके रूपमें मान्यता प्राप्त कर सकेगा। यह स्पष्ट रूपसे शीतयुद्धकी नीतिमें परिवर्तन प्रतीत होता है, जिसके अंदर आर्थिक और सामाजिक समस्यायें सम्मिश्रित हो गई हैं... इन नई परिस्थितियोंमें सोवियत राष्ट्रसत्ताका प्रभाव देखा है। हम यह जानते थे कि सोवियत संघ संसारके दूसरे भागोंमें सैनिक तथा राजनैतिक अवरोधोंको प्रस्तुत करनेको आज हेतु आर्थिक और सामाजिक साधनोंका प्रयोग कर रहा है। हमने उदाहरण भारत, मिस्र और बर्माके देले जा सकते हैं। ... हम अर्थव्यवस्था देशोंकी आर्थिक उन्नतिके क्षेत्रमें प्रतियोगिता कर रहे हैं, क्योंकि यह क्षेत्र प्रतियोगिता पूर्ण है। इस संघर्षमें हार उठनी ही भयंकर हो सकती है जिसकी शम्बीकरणकी दृष्टिमें हार।"

यह उन लोगोंकी स्वीकारोक्ति है जिन्होंने ५०० खरब डॉलर मूल्यकी विदेशी सहायता कुलाई १९४५ से जून १९५५ तक अपनी नीतिको प्रतिष्ठित करनेके लिये व्यय की है और फिर भी अब यह सोचते हैं कि कहीं हार न जायें। अजीब होते हुए भी यह बात सच है। इसकी व्याख्या हम तथ्यमें विद्यमान है कि युद्धोत्तरकालीन सहायता और कुराका लगभग एकतिहाई भाग आर्थिकके स्तरपर सैनिक या तथा श्रमैतिक सहायता और कुराका लगभग ३५ भाग पश्चिमी यूरोप और जापानके के विकसित देशोंको भेजा गया है।

अनुमान किया जाता है कि पिछड़े क्षेत्रोंमें दी जानेवाली वास्तविक सहायता लगभग १० खरब डॉलर वार्षिक है तथा सोवियत संघ इस राशिकी प्रतियोगिता बड़ी सरलतासे कर सकता है।

पंचशील क्यों ?

जहाँ तक प्रविधिक सहायता का प्रश्न है, सोवियत संघ की स्थिति अधिक सुविधाजनक है, १९५२ में सोवियत संघ और संयुक्त राज्य दोनों में ३०,००० इंजीनियर स्नातक बने थे। किन्तु १९५५ में संयुक्त राज्य में २३,००० स्नातक बने जब कि सोवियत संघ में बननेवाले स्नातकों की संख्या १५,००० हो गई।

शिक्षा के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रिय जगत् में यह बात समझ हो सकी, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा लिये जानेवाले एक अन्य सर्वेक्षण में हुआ। इसमें यह मालूम पड़ा कि जून १९५५ में माध्यमिक स्कूलों द्वारा स्नातक बनाये जानेवाले दस लाख सोवियत विद्यार्थियों में से प्रत्येकने ५ वर्ष भौतिकशास्त्र, १ वर्ष नक्षत्रशास्त्र, ४ वर्ष रसायनशास्त्र, ५ वर्ष जीवविज्ञान, १० वर्ष रेखांकित, शीतगणित और त्रिकोणमिति सहित गणित का अध्ययन किया था, जब कि "इस संख्या के लगभग एक तिहाई से भी कम अमेरिकन ठीक शान्तिओं में निकलनेवाले स्नातकों में अधिक से अधिक १ वर्ष रसायनशास्त्र पढ़ा था।" यह आंकड़े इस बात के सूचक हैं कि मानेवाले वर्षों में जब पिछड़े क्षेत्र अपनी सहायता के लिये प्रविधिकों की खोज करते हों, तब क्या आशा की जा सकती है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाने अब इस बात का अनुभव करना आरम्भ कर दिया है कि एशिया और अफ्रीका में की जानेवाली सोवियत सहायता की उम्मेद नहीं की जा सकती। इस बात का पता सोवियत संघ की आलू छठी पंचवर्षीय योजना पर होनेवाली अलोचनाओं से लगता है। १९ जनवरी, १९५६ को प्रभावशाली पत्र "न्यूयार्क टाइम्स" में "मास्को में सेलेज शीप के महत्वपूर्ण सपादकीय क्षेत्रों में यह व्यक्त किया गया था कि आर्थिक प्रतियोगिता अब अर्धविवर्तित देशों की जानेवाली सहायता के प्रश्न से भी आगे बढ़ गई है —

"अपनी छठी पंचवर्षीय योजना में मास्को यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है कि उनकी सर्वांशरी आर्थिक व्यवस्था स्वतंत्र अर्थव्यवस्था को उत्पन्न कर सकती है। नयी योजना यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न करती है कि "ऐतिहासिक समय के न्यूनतम भाग में शक्तिपूर्ण आर्थिक प्रतियोगिता करते समय सोवियत संघ अनेक विकसित पूँजीवादी देशों में विशेष तौर पर संयुक्त राज्य में होनेवाले प्रतिव्यक्ति

उत्पादनसे आगे बढ़ जाना चाहता है। मसाले भरके अविकसित देशोंमें बसने वाले करोड़ों व्यक्तियोंके मामले मारने यह प्रदर्शित करना चाहता है कि उनकी व्यवस्था न्यूनतम समयमें समृद्धिशाली भविष्य निर्माण कर डालनेका विश्वास दिला सकती है। सोवियत संघ सरकारको समझनेके उपरान्त हमारे आर्थिक जीवनके प्रतिनिधियोंको यह जानना चाहिये कि यहाँ पर स्वष्ट्रहमे निरंतर होनेवाली तीव्र प्रगति ही हमका एकमात्र उत्तर है।”

पूँजीवादीका स्वर भय और घबराहटके कारण निरिचत रूपसे कापने लगा है, क्योंकि मैनिफेस्टो पर आधारित साम्राज्यवादी देशोंकी अर्थव्यवस्थाके लिये शान्तिका अर्थ खतरा है। उनकी अभिरूढ़ि अशाम्भविक है, क्योंकि यदि उन्हें भोजन स्वरूप युद्ध नहीं मिलते तो उनसे मिटना पड़ेगा।

हम नाशकी सीमाएँ रेखाओंको युद्धके पावों, धीरे धीरे पर विराम करनेवाली कूटनीतिके संचालनसे धूमिल बनानेका प्रयत्न हो रहा है। किन्तु वाशिंगटनके रणनीतिज्ञ पंचशील युगके एक अन्य महत्वपूर्ण पहलूकी औरसे बेखबर हैं, जिसका सुन्दर आधार इस तथ्यमें निहित है कि सैनिक टेकनीकी नवीनतम प्रगतिके कारण समुक्त राष्ट्रके युद्धास्त्र उपयोग ही निरर्थक हो जायेंगे, जिनपर उनकी समृद्धि निर्माण हुआ है।

इन विषयसे सम्बन्धित कुछ आधुनिक प्रतिवेदनों पर विचार कीजिये, समुक्त राष्ट्रके कुछ प्रसिद्ध पीजी आलोचकोंको यह विश्वास हो गया है कि समाजवादी देशोंके सैनिकव्ययमें भारी कमीकी घोषणाका कारण आणविक युगमें किया जानेवाला संशोधनोंके गहनमें परिवर्तन है। वे हमें बतलाते हैं कि सोवियत संघ एवं उसके साथियों ने ऐसे नये हथियार तैयार कर बाने हैं, जिन्हें इतनी विराट् बाहिनीकी आवश्यकता नहीं है। ‘प्रक्षेपास्त्र युद्ध’ शब्द इस नई रणनीति एवं उसके दायोंकी व्याख्याके लिये प्रयुक्त किया जाता है।

सोवियत संघने हम बातचीत यद्यपि सरकारी पृष्ठ नहीं की है, किन्तु ब्रिटेनमें होनेवाली सीमांतमय यात्राके दरम्यान सुरचेवमी तत्वाविषयक ठक महत्वपूर्ण है। ब्रिटिश समुद्री बेड़ेके प्रचुरतम नाविक अफ़ग़ानिस्तान सम्बन्धित करते हुए

पंच शील क्यों ?

उन्होंने कहा था कि उनकी सरकार आधुनिकीय कूजर बेचनेके लिये तैयार है, क्योंकि अब उनकी स्थिति यानी चादक पोतोंके बराबर रह गई है।

यह तर्कमय बात है कि आणविक शक्ति युद्ध सम्बंधी हृदिप्रहा विचारोंको अस्तव्यस्त कर बालेगी, किन्तु हमने भी महत्वपूर्ण बात यह है कि समाजवादी मेनामोने निकाले जानेवाले लाखों सैनिक बेकारोंकी सूर्या नहीं बनयेंगे, वरन उत्पादक कार्योंमें अग्रता स्थापन प्रदूषण करके समाजवादी समारको एशिया और अफ्रीकाकी सहायताके लिये अधिक नई शक्ति प्रदान करेंगे। इस परिवर्तनको समाजवादी व्यवस्थामें बहुत अधिक प्रयोगमें आनेवाली स्वचालन सरीखी नवीन प्रौद्योगिक टेक्निकोंसे सम्बन्धित करनेपर हम यह पाते हैं कि अर्धविकसित क्षेत्रोंको सहायता देनेकी सम्भावना कितनी अधिक है।

ऐसी सहायता देना सोवियत नीति का मूलमंत्र है, जिसे प्रोलेटेरियन अंतर्राष्ट्रीयवादकी सला दी जाती है। लेनिनने समझाया भी था कि अपनी अंतर्राष्ट्रीयवादने राष्ट्रोंकी समानताकी औपचारिक स्वीकृतिसे भी कुछ अधिक की आवश्यकता है। समानताके सिद्धांतमें शक्तिपूर्ण राष्ट्रों द्वारा शक्तिहीन राष्ट्रोंकी आर्थिक और सांस्कृतिक विकासके लिए-अभावग्रामी सहायता भी सहित है। आजकल समाजवादी दुनियामें इसी धारणाको अधिक प्रचारित किया जा रहा है। बहूँकि जनममात्रसे यह कहा जाता है कि एशिया और अफ्रीकाकी सहायता करना उनका कर्तव्य है। यह ऐसा दृष्टिकोण है जिसे समझनेकी आशा पूँजीवादी समार कभी नहीं कर सकता।

निष्कर्ष रूपमें पंचशील का अर्थ यह है कि लुधेवका 'मित्रताकी प्रतिव्येगता' का नारा अब अंतर्राष्ट्रीय कार्यमूलों पर पहुँच गया है। इस प्रतिव्येगताके दो ढंग हैं-सोवियत ढंग और अमेरिकन ढंग। एशिया और अफ्रीकामें सोवियत ढंगकेही समर्थन और पक्षपात प्राप्त करनेकी आशा की जा सकती है।

इसका कारण ईदने के लिये अधिक दूर नहीं जाना पड़ेगा। सोवियत का राष्ट्रहित ज्ञानिमें, विश्वको परस्पर विरोधी क्रियाओंमें विभाजित न होनेकी बातपर जोर बालनेमें तथा इतिहास द्वारा यह निर्णीत करने में निहित है कि कौन-सी व्यवस्था अन्यपर विजयी होती है। पूँजीवादी समारके लिये हिनो के ऐसे सदुकीकरणको रोकना लगभग असम्भव होगा।

यह बात उस समय अवेज्ञावृत्त अधिक सम्भव है जब पंचशीलका बनावरण पूँजीवादी समाजको पंशुकारी मंदीकी संभावनामें संश्रुत कर रहा हो। निजी उद्योगोंवाली अर्थव्यवस्थाके लिये उत्पादनकी अभिवृद्धि और मंदीके अनुभव नये नहीं हैं। और आवश्यक पूँजीवादी देश प्रमुखतया बालर भूमिमें घटनेवाली घटनाओं पर आश्रित हैं।

सभी लोग इस बातसे सहमत हैं कि यह अभिवृद्धि सदैव नहीं रह सकती। आयुष्योंकी दीर्घको रोकना ही पड़ेगा। इसमें आत्मनाशके बीज विद्यमान हैं। संयुक्त राज्यके सरकारी मूत्र भी 'समर्थता' और निराशावादके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली मजसारी (मंदी) प्रवृत्तियोंकी बात कहते हैं और जनताको बड़ी सरलतामें स्मरण दिलाते हैं कि "उत्पादन और कृषिमें समय-समय पर असंतुलन होना निश्चित है।"

दूसरे शब्दोंमें सहसा वृद्धिकी बमर मंदी द्वारा पूरी हो जाती है।

जब यह बात मान ली गई है कि संयुक्तराज्य अमेरिकामें अभिवृद्धि उपस्थित करनेवाले बार बारण अर्थात् सैनिक व्यय, गृहनिर्माण, भारी उद्योगोंके यंत्रोंपर परिवर्तन तथा मोटरों और रेजिटरोंका विक्री हेतु उत्पादन, अपना बरम बिंदु पारकर चुके हैं। इंधन, नीकालवन, नीकानिर्माण तथा अन्य पुगने उद्योगोंमें पहलेसे ही अवसरता आ गई है। यदि युद्ध नहीं होता तो यह पूर्व विरहित पूर्ण अभिवृद्धि कैसे जारी रह सकती है ?

पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाके द्विगुण तर्कोंको बदलनेके लिये संयुक्त राजकी त्वराशीय और पराशीय नीतिमें महत्वपूर्ण परिवर्तनोंको करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। इन दिनों कोई वास्तविक शक्ति इस सक्षम प्रतिक्रिया और उन्मुख नहीं प्रतीत होगी। रिपब्लिकन पार्टीकी पराजय और डेमोक्रेटिक पार्टी द्वारा शक्तिग्रहणके कारण आक्रामक रूपमें भले ही बर्मी आ जाय, किन्तु रूजवेल्टीय मार्गको अवरोधहीन नहीं किया जा सकता। संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके निवासी जिस जंगलमें फँस रहे हैं, उसमेंसे निकलनेका मार्ग केवल इसी मोर्चे द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

पंच शील क्यों ?

आज कल आणविक और प्रक्षेपक शस्त्रों की भीषण वास्तविकता समस्त राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय नीतियों पर अपना भारी प्रभाव डाल रही है। किसी आंदोलन को चलाने का प्रयत्न करना अथवा इन नई शक्तियों के पूर्ण महत्व को समझे बिना परिस्थितियों का विवेचन करना निरर्थक ही कहा जा सकता है।

वस्तुतः अब तक आदर्श समझे जानेवाले मूल्यों और धारणाओं पर आणविक युग का पूर्ण प्रभाव समझने में अभी कुछ समय लगेगा। यह वह युग है जिसमें पहली बार मनुष्य के सामने जीवन की परिस्थितियों में पूर्णतया बदलने या विज्ञान और सभ्यता द्वारा शताब्दियों में कमिक रूप से निर्मित सभी वस्तुओं की पूर्णतया नष्ट करने का विकल्प रखा गया है।

विज्ञान अंत में उस बिंदु पर पहुँच गया है जहाँ वह ऐतिहासिक प्रक्रिया का रूप निर्धारित करने के लिये तैयार है और उन प्रक्रियाओं के प्रेरक सामाजिक समूहों को करीब करीब नियंत्रित करेगा। इसे समझने के लिये हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं है।

आणविक शक्ति उपयोग के तकनीकी प्रश्नों की खे लीजिये। उपयोग का ढंग कुछ कठिन नहीं है। विज्ञान ने इन समस्या का उत्तर पहले से ही खोज लिया है और जो उत्तर अब भी अस्पष्ट हैं, वे व्यापक रूप से स्पष्ट हो जायेंगे। प्राविधिकों को अब यह प्रश्न सनसता कर रहा है कि आणविक शक्ति निर्माण के परचात बचनेवाले रेडियो सक्रिय वर्ज्य पदार्थ का निर्वर्तन किस प्रकार किया जाय।

यह वर्ज्य पदार्थ लगभग २०० वर्ष तक रेडियो सक्रिय रहता है। उसके निर्वर्तन के अनेक मार्ग सुझाये गये हैं। कुछ लोग विरोध दृष्टि में रखकर समुद्र के अधिकतम गहरे भागों में इसे डुबोने का इस आशय से विचार कर रहे हैं कि वे दृष्टे शायद वर्ज्य पदार्थ के रेडियो सक्रिय रहने तक न गल सकें। अन्य लोग ऐसे दिव्यों में दूरस्थ शून्य के अन्दर आग सफाई की बात सुझाते हैं।

उसके निर्वर्तन की नैसी भी योजना बनाई जाय, किन्तु एक विरोध निर्वर्ण निश्चल जा सकता है। किसी निजी समूह को आणविक शक्ति बनाने या उसे व्यवहृत करने का कार्य नहीं सौंपा जा सकता, क्योंकि वे उसका साक्ष्य

मूल्य घटाने और समान सस्तरमें जीवनको खतरा उपस्थित करनेवाली रेडियो सक्रिय वस्तुके निर्वाहके लिये आवश्यक अत्यंत खर्चीली व्यवस्थाने लाभ प्राप्त करनेका प्रयत्न करेंगे ।

उन्मुक्त व्यवसायका “लाभ” सदैव मुख्य श्रेष्ठ रहा है और आणविक शक्ति लाभ उठानेके लिये प्रयुक्त की जानेवाली वस्तु नहीं है । इस कारण राज्यको विवरा होकर प्रत्येक क्षेत्रमें आणविक प्रगतिका नेतृत्व करने और उसे स्वयं नियंत्रित करनेके लिये विवरा होना पड़ेगा, यह ऐसी धारणाही है जो स्वाभाविक रूपसे पूँजीवादको रोकेगी और फलस्वरूप समाजके टोंचेको प्रभावित करेगी ।

हमारे जीवनकी प्रत्येक छोटी-सी छोटी बातके प्रभावित करनेवाली समस्याका यह केवल एक ही पहलू है । यदि पंचशील द्वारा युद्ध अवैध घोषित हो गया तो संसारकी शांतिपूर्ण प्रगतिमें तीव्रताके लानेके लिये अधिकाधिक आणविक शक्ति प्रयोगमें लाई जा सकेगी और उसके उपयोगपर होनेवाला आवश्यक नियंत्रण अधिकाधिक क्षेत्रोंको यह विश्वास दिलाता जायगा कि व्यक्तिगत लाभ कमानेके बहुत बड़े स्वार्थी मार्गको अपनानेवाला पूँजीवाद अब सामयिक नहीं रह गया है ।

ऐसी सुन्दर नीचोंपर निर्मित आत्मनिरुचाने ही संसार युद्ध द्वारा अनभावित जीवनकी सम्भावनाकी कल्पना कर सकता है । फिर भी यह कहना करना कि शांति हमने पा ली है, निरर्थक है । एक गलत प्रयत्न, एक विवेकहीन कार्य हमें पुनः युद्धकी कगार पर ढकेल सकता है । आजकल सतर्क रहनेकी सबसे अधिक आवश्यकता है ।

शत्रुता और कटुता उत्पन्न करनेके लिये खुले और अविकसित तरीकोंसे काममें लानेकी अब बहुत कम आशा है । अधिक सूक्ष्म और गुप्त रणनीतियाँ खोजकर निकाली जायेंगी । इन तरीकोंने हर स्थानपर दीखनेवाली शांति की विकसशील और एकीकृत भावनाओंमें असुलव्यस्तता और उत्तमन पैदा करनेका प्रयत्न किया जायगा । वास्तवमें हम ऐसे समयमें प्रविष्ट हो रहे हैं, जिसे भूटनीतिक सम्बन्धोंका सर्वाधिक मातृक अवसर कहा जा सकता है ।

एक ओर पूँजीवादी समाज है और दूसरी ओर समाजवाद । लाखों व्यक्तियोंने चुनाव कर लिया है और लाखों व्यक्तियोंको अभी यह करना शेष है । विन्दु

पंच शील क्यों ?

मानवजातिके भारी बहुमतकी यह दृष्टि है कि यह चुनाव शाक्तिके बालावरणमें करना चाहिये, जहाँ एक व्यवस्था दूसरीकी प्रतियोगिता कर सके, जहाँ किसी अन्य प्रकारकी 'निवशता' के स्थानपर पूँजीवादी और समाजवादी प्रयत्नोंके परिणाम ही अपना अपना पक्ष समर्थन करेंगे ।

साम्राज्यवादी शक्तियों सम्भवतया इन हरके कारण पंचशील पर हस्ताक्षर न करेंगी कि वही उस अवस्थामें उन्हें अपने उपनिवेशोंको खाली करना न पड़ जाय और हमारे भूभागमें स्थित युद्धस्थलोंको छोड़कर आणविक और प्रक्षेपक शक्तिके असीमित साधनोंपर निर्मित शाक्तिके स्वस्थ तर्कोंका सामना न करना पड़े निन्तु वे कुछ भी करें, उन्हें यह ज्ञात है कि स्वयं उनके साथी इन दुःसाहसिक क्रियाकलापोंमें डर गये हैं और उन्हें भी शान्ति की आवश्यकता है ।

यह ऐसी भावना है जो विभाजक रेषोंको तोड़ कर हम नक्शे पर स्थित लोगोंकी एकताके सूत्रमें बाँधती हुई निरंतर बढ़ती रहेगी ।

राजनेतिक शतरंज

मुझे असत्यसे सत्यकी ओर ले चलिये,
मुझे संघर्षरसे प्रकम्पकी ओर ले चलिये,
मुझे मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले चलिये ।

—उपनिषद्

स्वतंत्रताके १० वें वर्षमें प्रवेश करते समय भारत अपनी आंतरिक नीतियों और विदेशी सम्बंधोंमें होनेवाले अनेक परिवर्तनोंके दर्शन कर सकता है। उसकी स्थिति इतनी सरलतासे और लगभग अच्युत रूपसे सुरक्षित और परिदलित हुई है कि वर्तमान समस्याओंका अध्ययन करनेवाले अनेक योग्य विद्वान् भी उसके कारणोंका अच्छी तरह पता लगा न सके या समझनेमें असफल रहे हैं। अनेकों बार उन्होंने अपने अनुमानोंको स्वीकृत तथ्योंके पूर्णतया विपरीत पाया है।

फिर भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और जवाहरलाल नेहरूकी स्थिति समझना अत्यंत आवश्यक है। मन्वत् इतनी अधिक केंद्री हुई है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर किसी कार्यको आरम्भके लिये एक मात्र नेहरूका ही आसरा देखना पड़ता है। उन्होंने कांग्रेसकी वर्तमान विचारधाराको सबसे अधिक प्रभावित किया है और ऐसा करनेमें अपने देशवासियोंकी स्वस्थतम भावनाओंका प्रतिनिधित्व किया है।

राजनैतिक सुधारमें उन्होंने अपने विरोधीमें भी अधिक नीतिज्ञानका परिचय देकर उनकी प्रतिद्विधापूर्ण प्रशंसा प्राप्त की है।

विरव-समस्याओंके वर्तमान प्रमुख तत्व 'पंचशील' के प्रतिपादक और सह निर्धारक तथा पिछड़े गरीबीसे संप्रस्त प्रदेशोंकी श्रेष्ठ आत्माके रूपमें आगमन के अपने दमके समाजवादका प्रचार करते हैं, जिसके बारेमें उनका दावा है कि वह भारतका रूप ही परिवर्तित कर देगा।

पूर्व अध्यायोंमें हमने कांग्रेसकी नीतिके क्रमिक निष्क्रमण तथा किम प्रकार विदेशी और परेलू राजियों द्वारा उसका रूप निर्धारित हुआ, इन बातोंका अच्छी तरह सर्वेक्षण

राजनैतिक शतरंज

किया है। अब उन तत्त्वोंमें पारस्परिक सम्बंध स्थापित करना आवश्यक है। इसके अभावमें सम्भावित प्रगति विषयक भविष्यवाणी करना या भारतको आगे बढ़ानेवाली आवश्यकताओंके लिये सार्वजनिक समर्थन प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकेगा।

यह स्पष्ट है कि वर्तमान युगमें कोई अकेला व्यक्ति इतिहासचक्र निर्माण नहीं कर सकता। जो व्यक्ति परिस्थितिको तत्काल समझ सकते हैं और जिन्हें बहुसंख्यक जनताका समर्थन प्राप्त है, वे ऐतिहासिक प्रक्रियाको अच्छाई या बुराईकी तरफ किसी अंश तक ही प्रभावित कर सकते हैं। स्वहितरत संपर्कशील वर्ग ही, जो कभी समझौता करता है और कभी दुराग्रह करता है, प्रगतिरत रूप निर्धारित कर सकता है। वे योग्य व्यक्तिको भी अपने पक्षमें लेनेका प्रयत्न करते हैं। इसी प्रभूमिके आधारपर नेहरू और उनके द्वारा नेतृत्व प्राप्त पार्टीको समझना आवश्यक है।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस जीवन तन्त्र पर अर्थात् भारतीय समाजमें कौण्डी स्थितिके विवेचन पर, कोई विरोध ध्यान नहीं दिया गया। भूतकालमें नोतिष्णापूर्ण सीमित प्रयत्नोंके स्पष्टीकरणहेतु सामान्य घनबल सूत्रोंका प्रयोग किया गया है जो तत्त्विक वाच्य कल्पना है। भारतवासियोंको भी कभी इस बातकी शिका नहीं दी गई कि प्रत्येक कर्मकी क्या विशिष्ट स्थिति है, उन्हें किन संपदोंका सामना करना पड़ता है और उन आकृता संपदोंको निष्क्रिय बनानेकी उनमें कितनी क्षमता है। जब तक यह नहीं होता, भारतकी विदेशी नीतिके परिवर्तनोंको अथवा देशकी आन्तरिक आर्थिक प्रगतिको अच्छी तरह समझना असंभव है। इन दिशामें अग्रसर होनेसे पहले यह आवश्यक है कि १९४७ में सत्ता हस्तान्तरण कालमें अब तककी घटनाओंका सर्वेक्षण करनेके पश्चात् जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उन पर सचित्त विचार कर लिया जाय।

सत्ता हस्तान्तरण तक राष्ट्रीय आन्दोलन एवं उसके विस्तारकी प्रमुख एवं महत्वपूर्ण बात यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादमें होनेवाले इस सचकेका नेतृत्व सामूहिक रूपसे पूँजीजीवियोंके हाथमें था। समस्त औपनिवेशिक पूँजीजीवियोंमें यही लोग सर्वाधिक विकसित थे और उन्होंने जनताको अपने साथ लेकर अंतमें सत्ता प्राप्त कर ली।

इस कारण यह बात आगानुकूल ही थी कि १९४६-४७ में आजाद हिंद फौज और रावल भारतीय नौसेनाके अभूतपूर्व स्वदेशाभिमान की प्रदर्शनके परिणाम-

संघर्ष शीर्षस्थ बिन्दुपर पहुँचनेवाले विद्रोहको देखकर भारतीय पूँजीजीवी और ब्रिटिश साम्राज्यवादी दोनों भयभीत हो गये। उन दोनोंके हित वैधानिक सत्ता हस्तांतरणमें संयुक्त थे।

यदि जनताका नेतृत्व साम्यवादी पार्टी ग्रहण करे तो किसानों-मजदूरोंके हाथमें संयुक्त रूपसे रहा होता, तो एक पूर्णतया भिन्न और उन्मूलक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते। तथापि मजदूर और किसान देशके विभाजनका अवरोध करनेकी परिस्थितिमें नहीं थे। वे उसके असहाय साक्षी और शिकार बने हुए थे।

इस संकटकालमें तथा इनसे पहले भी राजामहाराजाओं और तालुकेदारोंका वर्ग व्यवहारसे साम्राज्यवादके प्रति अपनी भिन्नता प्रदर्शित कर रहा था। सामुदायिक दंगोंके अवसर पर यह वर्ग सक्रिय रूपसे इस सीमा तक मीनतानुकूलता दिखाने लगा कि उसकी स्थिति अधिक उत्तेजक स्वरूप हो गई। नये पूँजीजीवी शासकोंको स्थान भ्रष्ट करनेके पक्षमें उनके लिये ऐसा करना सम्भव हो सका। इस वर्गका इन सामुदायिक दंगोंमें दिया गया सहयोग पुनः सत्ता प्राप्त करनेका अंतिम प्रयत्न था।

यद्यपि यह सच है कि देश-विभाजनमें पूर्व पूँजीजीवियोंके एक महत्वपूर्ण भागने भी सामुदायिक संघर्षकी ज्वालाको प्रज्वलित करनेका प्रयत्न किया था, किन्तु एतदर्थ आयोजित दंगोंका उद्देश्य मुस्लिमलीगसे संघर्ष करते समय अस्थायी लाभ प्राप्त करनेका एक अलग प्राप्त करना था। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने नेताओंके बादमें दंगोंकी धर्मनिरपेक्षता समाप्तिके लिये, प्रशान्तीय धर्मनिरपेक्षताको प्रतिष्ठित करनेके लिये तथा अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी गारंटीके लिये प्रशान्तीय कुशलतापूर्वक कार्य किया। फलस्वरूप सामंतवादी तत्व तथा उनके सार्वजनिक भिन्न अर्थात् हिन्दू परिषद, सच, महासभा आदि एक दूसरेमें पृथक् हो गये। गांधीजीको इस संघर्षमें अपना स्वयंका बलिदान करना पड़ा।

पाकिस्तानका नक्शा पूर्ण भिन्न था। वहाँ पर सामंतवादी नेताओंने निर्बल पूँजीजीवी तत्वोंकी अपने साथ लेकर प्रशासन पर अधिकार कर लिया। उन्होंने पाकिस्तानको काफ़ीसे पूर्णतया मुक्त करनेके लिये दंगोंको और लूटमारको प्रेरणा दी। इस कृष्णीनेने 'जेहाद' के नामपर समस्त मुस्लिम जनताको अंधा

राजनैतिक शतरंज

बनाकर सगठित कर दिया। साथ ही धनी हिन्दू विस्थापित निष्क्रमणके श्रवसापर घनेको लाख एकर उपजाऊ भूमि और बहुमूल्य जायदाद छोड़कर भागे, जिसका बाव लगाया जा सकता था।

हमके अतिरिक्त कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद आदि रियासतोंके नरेशोंकी सदेहास्यद जीव भी मनोरंजक थी। वे भारतीय प्रगतिवा विरोध हम आरासे कर रहे थे कि जिससे वे अपनी विशिष्ट परिस्थिति द्वारा भारत और पाकिस्तानकी शानुताका लाभ उठा सकें। जब इन सामन्ती गढ़ोंपर भारतने अधिकार कर लिया, तब इन नरेशोंकी शक्ति पूर्णतया भंग हो गई।

सरदार पटेलने अपनी विलयन योजना द्वारा रियासती भारतकी शक्तिक्रिया कर बाली। कांग्रेस पार्टीय दक्षिणी पार्वक अतिरिक्त नेताके रूपमें उन्होंने वैधानिकताके साथ देशी राजवाओंको समाप्त करके "एक पंच दो काज" कर लिये। प्रथमतः उन्होंने राजवाओंके अंदर सार्वजनिक सुपर्वकी सम्भवताकी समाप्त कर दिया। दूसरे उन्होंने सतिपूर्ति स्वरूप रामकोंकी मड़ी मारी पेंशन (ग्रिबी पर्व) दे दी, जो किसी न किसी दिन पूँजीजीवी व्यापारिक प्रतिष्ठानोंके कोषोंको भरने बाली थी।

राजनैतिक अधिकारोंमें वंचित होकर अनेक दल नरेशोंने वित्तीय गठबंधनोंका सहारा दटना और अधिकतर भारतीय एवं विदेशी पूँजीको सरोजित करनेमें बीमके बत्ताल बननेमें सफल हुए। कुछ नरेश अब भी कांग्रेस प्रशासन विरोधी जनताके असंतोषका लाभ उठाकर उनका तल्लत पल्लट अपना राजनैतिक प्रभाव स्थापित करनेके स्वप्न देख रहे थे। पश्चिम और मध्यभारतमें उनके बलवाये गये। इन तर्कोंका शुभावके अवसरपर कांग्रेसके विरुद्ध प्रयोग करना था। हम तरह जनताकी यह सुभाषा गया कि ऐसी परिस्थितिमें उनके राजनैतिक सीमाशोधन करवानेके लिये नरेशोंका ही विश्वास किया जा सकता है।

पूँजीजीवियोंकी शक्तिका अधिक सुर्वेकरण उस समय हुआ, जब कि सपूर्ण भारतके लिये एक सविधान अपनाया गया, जिसमें एक अन्य सामतवादो आधार अर्थान् जमीनदारियोंको नष्ट करनेकी दिशामें बंदम उल्लेख गये। पुन सतिपूर्ति की गई। इस धन द्वारा जमीनदार भी पूँजीवादी कृषक बन गये और व्यवसायी ससारसे लाभकारी सम्बंधते करने लगे।

इसके अन्तर्गत इन मुद्दोंको बर्न मॉन्टालोके बर्न-सम्बन्धोंपर यह प्रभाव पड़ा कि ऐसे धनी किसानोंकी सहायता बंद गई, जो प्रतिवर्ष कुछ बचत कर सकते तथा साथ ही संपूर्ण कृषक समाजके कुछ बोझ किसी खेतीदार तक कम हो गये। पूँजीजीवियोंकी अधिक प्राप्तीएँ समर्थन प्राप्त करनेका मंदिर बना रहा है, क्योंकि वे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि भौमिक सृष्टिको अभी शान करना शेष है।

गणतन्त्रकी वस्तुस्थितोंके परन्तु पूँजीजीवी सामूहिक रूपसे पूर्ण राजनैतिक सत्ताका उपभोग कर रहे हैं, यद्यपि भारतमें लम्बी विदेशी पूँजीके साथ जो प्रमुखतया ब्रिटिश पूँजी है, आर्थिक सत्ताका हिस्सा बँटनेपर उन्हें विवश होना पड़ना है। इस परिस्थितिमें दो अंतर्विरोध होने स्वसिद्ध हैं।

प्रथमतः सामूहिक रूपसे पूँजीजीवियोंकी और ब्रिटिश निहित स्वार्थोंमें स्पष्ट संघर्ष हो रहा है। भारतीय व्यवसायको इन दिनों भी आन्तरिक अर्थव्यवस्थाके महत्वपूर्ण खंडोंपर व्याप्त रहनेवाले ब्रिटिश व्यवसायके साथ प्रतियोगिता करनी पड़नी है। जैसे जैसे विदेशी पूँजी यह प्रवर्तित करती है कि उनकी रुचि भारतमें अधिकतम अधिक धन खींचनेमें है और देशके वास्तविक विकासमें महत्त्वपूर्ण करनेके निम्न तैयार नहीं है, वैसे ही वेने यह उभाव बढ्ता है।

द्वितीय, इसी अंतर्विरोध पर एक अन्य अंतर्विरोध आधारित है। वह है, प्रत्येक "व्यावसायिक दैने" में दक्षिण रहनेवाले अन्तर्गत भारतीय बड़े पूँजीजीवियों और अपने आर्थिक क्षेत्रोंमें जमे बहुसंख्यक मध्यम पूँजीजीवियोंके लक्ष्योंमें संघर्ष। क्योंकि यह शोग टाटा-विष्णू आदि बाहरी लोगोंकी अंतर्गत दक्षिणजीने प्रसन्न नहीं हैं और स्वयं अपने लिये लाभके एकाग्र योजना निर्माण करना चाहते हैं। वे उस स्थितिकी प्राप्तिके लिये संघर्षरत हैं, जिस पर आवश्यकत आन्तर्गत भारतीय बड़े पूँजीजीवियों और उनके विदेशी सहयोगियोंका अधिकार है।

और साम्राज्यवादने नि स्वार्थ सहायकार्य अग्रस्त होने पर अर प्रशासनकी आर्थिक विकास कर्तव्य नैतृत्व करने पर विवश होना पड़ना है, जब यह क्षेत्रीय मध्यम पूँजीजीवी, किसी विशेष क्षेत्रमें न आनेवाले टाटा-विष्णूओंमें संघर्ष करनेके लिये आरम्भिक बदन स्वरूप इन देशकी आर्थिक पुनर्रचनाकी मौल

राजनैतिक शतरंज

यह सक्रिय समर्थन करने लगते हैं। आर्थिक विकास हेतु एक सार्वजनिक क्षेत्र घोषित किया जाता है, क्योंकि वह बड़े एकाधिकारियों की शक्ति पर आक्रमण करता है तथा अपने अपने क्षेत्र को विकसित करने के लिये एक प्रतिष्ठित मध्यम उद्योगियों के प्रयत्न में उन्हें सहायता देने का विश्वास दिलाता है। यह सभी अच्छी लाभदायक राजनीति है।

इतना लेखा जोखा पर्याप्त है। अब इस आंतरिक संघर्ष में निहित भारतीय पूँजीजीवियों की समस्याओं पर भी विचार करना चाहिये। भारतीय प्रगति का यह अभूतपूर्व क्षण है।

इन दोनों दलों के सही लक्ष्यों को ध्यान में रखना चाहिये। अखिल भारतीय बड़े पूँजीजीवी जो किसी विशेष क्षेत्र में सीमित न हों, उनकी कार्यवाहियों समस्त देश में फैली रहती हैं। वे ऐसे क्षेत्रों में भी दखल देते हैं जो सामान्यतया बहुत महत्वहीन प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने निजी 'बर्कों' भी नियंत्रण करते हैं और अभी थोड़े दिनों पहले तक बीमा समवायों को भी संचालित करते थे, जिसकी ४० प्रतिशत पूँजी उन्हें उपलब्ध रहती थी। इस वर्ग का निर्माण प्रमुख रूप से मारवाड़ी व्यापारिक प्रतिष्ठानों द्वारा हुआ है, किन्तु दादा और बम्बई के गुजरातियों से भी कुछ अन्य लोग भी इसमें सम्मिलित हैं। इन दोनों की पूँजी भी ऐसे क्षेत्रों में लगी हुई है, जिन पर उनका कोई नियंत्रण नहीं है। वह बड़े व्यवसायी विदेशी पूँजी से संयुक्त हैं और विदेशी व्यवसायियों के लाभकारी संगठनों का सदैव लाभ उठाया है। वे कंघिस पार्टी के शक्तिपूर्ण दक्षिणी पार्षदों के सदैव पृष्ठपोषक रहे हैं।

क्षेत्रीय मध्यम पूँजीजीवी नेकल अपने भाषिक क्षेत्रों में ही कार्यरत रहते हैं। अहमदाबाद के सनूदिराली गुजराती एवं नियंत्रकों के समान छोटे से दल के अतिरिक्त इन समूहों के पूँजीजीवियों की प्रगति बहुत सीमित रही है। सामान्यतया उन्हें शक्तिशाली मारवाड़ी पंथों की सरक्षितता का अल्प लाभ प्राप्त है। वे भारत के मारवाड़ियों को और बम्बई नगर के गुजराती और पारसियों को देश के किसी विशेष क्षेत्र में संयुक्त नहीं समझते।

जब इनके पास अपना कार्य करनेके लिये धन होता है, तब अहमदाबादके गुजरातियोंकी तरह तल भी खतन रहते हैं। इनका भविष्य विदेशी स्वार्थोंके साथ समझौता करनेमें निहित नहीं है, क्योंकि वह शायद ही कभी उन्हें प्राप्त होता हो। उनका भविष्य तो इस उपमहाद्वीपके सम विकासमें तथा उनके निजी क्षेत्रोंके मौलिक उद्योगोंकी उन्नतिमें निहित है, जिसमें वे इन पर अधिकार कर सकें और अन्य आर्थिक उद्योगोंको विकसित कर सकें।

पूँजीजीवियोंके बड़े और मध्यम, दोनों वर्ग साम्राज्यवादसे बहुतपूर्वक प्राप्त की गई स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये हठ प्रतिष्ठ हैं, क्योंकि अन्य कोई स्थिति अपनानेमें वह स्थिति उनके वर्ग हितोंके लिये सकट स्वरूप हो जायगी। दोनों इस बातमें सहमत हैं। विश्व पूँजीवादी विकासकी इस विताम्बित स्थितिमें राज्यकी सहायताके बिना भारतके आर्थिक पुनर्निर्माणका कार्य वै सम्भव नहीं कर सकते।

और यहीपर कठिनाई है। एक ओर बड़े पूँजीजीवी समस्त देशके लिये एक शक्तिशाली केन्द्रीय प्रशासन चाहते हैं, जिसमें उन्हें पैसा और आर्थिक प्रगतिकी सम्भावनाओंको हस्तगत करने तथा उसे उपबोधित करनेका अवसर मिल जाय। जब कि दूसरी ओर मध्यम पूँजीजीवी अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये भाषिक राज्यों और उनकी सयोजक कड़ीके रूपमें केन्द्रीय प्रशासन चाहते हैं, जिससे उनकी आवश्यकता पूरी हो सके। वे चाहते हैं कि राज्य स्वयं राष्ट्र निर्मात्री प्रायोजनाओंका प्रहसन करे, क्योंकि बड़े पूँजीजीवियोंकी शक्तिको सीमित रखकर प्रायोजनाओंको विभिन्न क्षेत्रोंमें आवंटित करनेकी उनकी गुहार सुनवानेका यही एक मात्र मार्ग है। इसका अर्थ अन्य उद्योगोंके विकास हेतु अधिक इस्पात, सीमेंट, कोयला और दूसरे मौलिक पदार्थ प्रस्तुत करना है।

यद्यपि बीजस रीट पर दक्षिण एशियोंका नियन्त्रण कायम है, जो बड़े पूँजीजीवियोंका फल समर्थन करते हैं और जो “विभाजन” प्रवृत्तियोंके विरुद्ध गारंटीस्वरूप एक शक्तिशाली एकात्मक राज्यकी कल्पना करते हैं, तथापि उन्मूलकवादी नेहरूने रूपमें क्षेत्रीय मध्यम पूँजीजीवियोंको बड़े पूँजीजीवियों पर दबाव डालनेवाला एक आदर्श उत्तेजक प्रस्तुत हो गया है।

उनकी विशाल जनप्रियता, उनकी आश्चर्यजनक राजनैतिक दक्षता, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितिके परिवर्तनकी पूरी तरह समझनेकी उनकी योग्यता तथा प्रजातांत्रिक भारतीय समाजवाद प्राप्त करनेके उनके विचार जो जानबूझकर अनुभूत अवसरों पर व्यस्त रह गये होते हैं, उन्हें इन तत्वोंका पूर्ण प्रबल बना देती है।

नेहरू हम वहाँके कोई समीच उपकरण नहीं हैं, वरन एक ऐसे प्रतीकात्मक प्रभाव-शाली पुण्य हैं, जिनका आविर्भाव इतिहासमें समय-समयपर होता ही रहता है। अपने विचार और व्यवहारमें वह निरिधत रूपमें क्षेत्रीय हितोंमें आगे हैं। वे अधिक विलून क्षेत्रीय विचारों और आकांक्षाओंको व्यक्त करते हैं, किन्तु वे क्षेत्रीय मध्यम पूँजीजीवीके स्वयंके अत्यंत अनिवार्य अंग हैं।

इस बातसे दो प्रश्न पैदा होते हैं। प्रथम तो यह कि कांग्रेस वरके प्रधान तत्व उन स्वयंसेवा प्रतिनिधित्व क्यों नहीं करते, अर्थात् वह आते हैं। द्वितीय तत्त्व कि पूँजीजीवियोंके यह दोनों वर्ग स्वेच्छपूर्वक समाजवादके विचारोंका समर्थन कैसे करते हैं?

प्रथम प्रश्नको ले लीजिये। कुछ स्थानोंमें अनुत्तरदायी रूपमें कांग्रेसकी गुजराती निहित स्वार्थोंके अधिकरण स्वरूप बनलानेकी प्रथा रही है। इसमें एक भिन्न निष्कर्ष प्राप्त होता है अर्थात् यह कि वहाँ पूँजीजीवी गुजराती हैं। वास्तविकता यह है कि कांग्रेस संगठन पर प्राथमिक रूपमें गणकी पार्टीके राजनैतिक हित व्याप्त हैं। अर्थात् उत्तर प्रदेश और बिहार नामक उस विलून हिन्दी-भाषी क्षेत्रको जिमने अपनेको राजाधियोंमें इस उपमहाद्वीपको प्रभावित और नियंत्रित करनेका प्रयत्न किया है।

इस राजनैतिक विचारधारा वाले लोगोंके साथ गुजरात और तमिलनाडु वाले भी संयुक्त हैं। क्षेत्रीय पूँजीजीवियोंमें यह वर्ग सर्वाधिक चिन्मित और आत्मनिर्भर हैं। यह लोग बड़ी भिन्नताके साथ ही भाषावादी भावनाओं का समर्थन करते हैं, क्योंकि उन्होंने केवल अपने क्षेत्रोंमें नहीं, वरन अन्य क्षेत्रोंमें भी शक्ति का आनन्द उठाया है। तमिलनाडुका आंध्र और केरलपर नियंत्रण था। गुजरात महाराष्ट्रको नियंत्रित कर रहा था। स्पष्टतया सीमाओंका पुनर्गठन उनके हितोंमें इतनी आकर्षक वस्तु नहीं थी।

अथ समाजवादी नागोंको सरलतापूर्वक अपनानेका दूसरा प्रश्न आता है। पिछले दस वर्षोंमें कमिश्नरों सहकारी सर्वतंत्र, कल्याणकारी राज्य, निश्चित अर्थव्यवस्था समाजवादी ढंग और आजकल समाजवादी समाज आदि अनेक राजनैतिक छिटकोण कमरा अपनाये हैं। किन्तु उसने सदैव यही कहा है कि इन मिथ्यानोंका वह सामान्यमें कुछ भिन्न अर्थ ग्रहण करती है और आजकल भी वह यही कह रही है। नेहरूके शब्दोंमें 'हम अपने निजी हण्डो ही काम करना पसंद करते हैं।'

इन परिस्थितियों का तात्पर्य यह है कि निरवकाश पूँजीवादी विकासको देखते हुए भारतीय पूँजीजीवीयोंने राजनैतिक शक्ति सघेष्ट विलम्बमें प्राप्त की है। इस कारण उन्हें राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाको विकसित और नियंत्रित करनेके लिये किसी सीमा तक राज्यका सहभागी होना स्वीकार करना पड़ा। इस कार्यभागको स्वीकार करनेके विषयमें हमने बड़े और मध्यम दोनों वर्गोंके छिटकोणोंके धनतों पर विचार कर लिया है, किन्तु दोनों ही वर्ग समाजवादके अस्पष्ट सूत्रके अंदर गम्भीर पूँजीवादके केन्द्रीय तन्त्रको सम्मिलित करनेके लिये तैयार थे। क्या अनेक पूँजीवादी देशोंने कुशल आर्थिक प्रयत्न देते उद्योगोंके सार्वजनिक क्षेत्र स्थापित नहीं किये हैं?

भारतमें भी पहले यही सोचा गया था कि बूँदी ऐसे कदम लेने जरूरी है। इसलिए उन्हें राजनैतिक रूपमें अपनाना चाहिये। जनताको यह बतलाना चाहिये कि कमिश्नर समाजवादकी समर्थक है। ऐसा करनेसे वामपक्षियोंका दौंव उनके हाथमें आ जाएगा।

जहाँ एक ओर यह हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर भारतीय समाजवादके अभूतपूर्व रूपको समझानेके लिये सघेष्ट प्रयत्न किये गये। उसे प्रजातान्त्रिक बनाना था। इसे केवल उन्हीं क्षेत्रोंमें लागू करना था, जहाँ निजी प्रयत्न अपेक्षित कार्य पूरा न कर सकें। किसी भी वर्गके हितोंका बलिदान किये बिना ही उसे प्राप्त करना था। बंदरगाह और सैद्धांतिकता नापसंद थी। ऐसे विचारोंने ही समाजवादको 'समाजवादी' बना दिया तथा अतीत आम्नाके विरुद्ध क्षेत्रोंसे भी समर्थन प्रदान करवा दिया।

राजनैतिक शृंखला

यदि भारतीय जनता की उन्मूलनवादी आवश्यकताओं को प्रतिभाषित करना अनिवार्य न होता, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि समाजवादी ढाँचे के विषयमें कभी चर्चा भी न होती। अवादी समाजवाद का स्वर क्या उसी समय कैसा नहीं उभरा गया था, जब ब्रिटिशों के आघातों के पुनरावर्ति हार की सम्भावना देखने लगी थी। एक बार इस नारे को उठाने के परवान् प्रत्यावर्तन लगभग सम्भव-सा ही प्रतीत होने लगा।

कम से कम पूँजीजीवी तो ऐसे प्रत्यावर्तन के लिये तैयार नहीं थे। समाजवादी बातचीतसे प्राप्त होनेवाला तीन राजनैतिक लाभ, पर्याप्त चर्चित करते थे। जनमत का सामान्य उन्मूलनवादी रूप देखने लगा था, किन्तु ब्रिटिशों को यह पूरा विश्वास था कि वह इन उन्मूलनवादियों पर अपनी पकड़ कायम रख सकती है।

अब अवादी समाजवादियों द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकालमें अधिक तीव्रतर होने लगे, तब पूँजीजीवियों के मध्य फूट पड़ना आरम्भ हो गया। यद्यपि बड़े पूँजीजीवी तत्त्वोंने लोगों के सामने अपना भय पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं किया था किन्तु विनामोक्षस्य सार्वजनिक क्षेत्र के बारेमें पुनः फिर सोचने लगे थे। उनका यह आकस्मिक उम समय आरम्भ हुआ, जब उन्हें यह विश्वास होने लगा कि समाजवादी देशों के साथ प्रशान्तिक स्तर पर निर्णय देनेवाला मरझों के बीच होनेवाला व्यवहार देश के आर्थिक जीवनमें सार्वजनिक क्षेत्र की प्रमुखता प्रदान कर देगा।

किंतु अब अकसर निकल गया था। इन विचारों ने अब पकड़ ली थी, इसके अतिरिक्त मध्यम पूँजीजीवी सार्वजनिक क्षेत्र को तब तक समर्थित करने के लिये तैयार थे, जब तक कि वह उनके अधिकारों का ही हनन न करने लगे। किन्तु आज भी यह कहना उचित नहीं होगा कि पूँजीजीवियों का कोई भी वर्ग समाजवाद शब्द का वास्तविक अर्थ अच्छी तरह समझता है। समाजवादविषयक उनकी समझ आज भी लगभग उतनी ही है, जितनी अवादी ब्रिटिशों के अवसर पर थी।

फिर भी इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रिटिशों का समाजवाद भ्रष्टाचारी नहीं है। बृहत् क्षेत्रीय राज्य पूँजीवाद को स्वीकार करके एक पिछड़े देशमें लागू करने के तत्त्व का ही

केवल एक ही परिणाम निश्चित है अर्थात् वास्तविक समाजवादके मार्गको प्रशस्त करना । पिछड़ी अर्थव्यवस्थाके तर्क हो इस परिवर्तनके लिये विवश कर देंगे ।

उदाहरणार्थ भारतीय राज्य पूँजीवादको निरामित पूँजीवादी देशोंके तटस्थ व्यक्तियोंके समान समझना मूर्खताकी बात होगी । ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिकामें राज्य-पूँजीवाद निजी स्वत्वाधिकारोंमें विद्यमान होता है । उन देशोंकी व्यवस्थाको प्रशस्त विशेषता यह है कि वह स्वदेशी और विदेशी सभी लोगोंको उद्बोधन करती है । वहाँ राज्यपूँजीवाद साम्राज्यवादी और प्रसारवादी लक्ष्योंकी साधना करता है तथा शक्ति-शाली और पूर्ण विकसित एकाधिकारी हितोंकी सहायता देता है ।

भारत तथा भारत समीचे अन्य अर्द्धविकसित देशोंकी परिस्थिति पूर्णतया भिन्न है । यहाँ पर सार्वजनिक क्षेत्रमें सम्मिलित होनेवाला राज्यपूँजीवाद तीव्र आर्थिक विकास सम्भव बनाना है और ऐसा करते समय साम्राज्यवादियों और उनमें सहयोगियोंकी आर्थिक परबकी टोला करके राष्ट्रीय स्वतन्त्रताको आश्रय देती है । इसलिये भारतीय प्रवृत्तियोंको देखकर विदेशी पूँजीवादी कुछ तरह आतंकित होना अकारण नहीं है, क्योंकि भारत निश्चय ही अपने आर्थिक प्रगतिके हितार्थ उनकी पूँजी हस्तगत करनेका प्रयत्न रख सकता है ।

फिर वर्तमान समयमें जब पिछड़े देशोंकी सरकारें आर्थिक उन्नति का नेतृत्व करने लगती हैं, तो उनकी भद्रयत्नाका एक मात्र आधार समाजवादी संसार रह जाता है । पूँजीवादी व्यवस्था समाजवादकी ओर उन्मुख देशोंके अंदर किसी नये कार्यको हाथमें लेना भयानक समझते हैं । समाजवादी संसारकी ओर पिछड़े देशोंका ऐसा रुझान, राज्यपूँजीवादकी प्रगति का अन्त बनानेमें सहायता देता है ।

इन सब बातोंका यह अर्थ नहीं है कि वैंसेनपाटी या पूँजीजीवियोंके मध्यम वर्ग इन सब बातों पर विचार कर लिया है । वे श्वभ भी राजनैतिक प्रक्रियाके नियमोंका उल्लंघन करनेकी आशा करते हैं । किन्तु उन्हें द्वितीय योजनाकालमें ज्ञात हो जायगा कि ऐसा होना सम्भव नहीं है । उक्त समय कुछ लोग इन नीतियोंका पालन करेंगे, जब कि अन्य लोग इनके साथ विरोधाभास करेंगे ।

राजनैतिक शतरंज

बड़े और मध्यम पूँजीजीवी वर्गोंके पारस्परिक तथा उनके द्वारा अपनाये जानेवाले दृष्टिकोण-सद्वर्धनमें इस विवेचनाको बल प्राप्त होगा है।

भारतीय एकाधिकारियोंके हित साम्राज्यवादी अंतर्राष्ट्रीय पूँजीके साथ अनेक प्रकारमें संयुक्त हैं। वे राष्ट्रीय स्वतंत्रताके मूल्य पर तो नहीं बरन जिम प्रकार कोई धनिया एक विक्रेताका दूसरेके विरुद्ध उपयोग करता है, उन्ही तरह गठबंधनोंको अधिक सुन्द बनानेके लिये विरुद्धी समस्याओंमें इस देशकी महत्वपूर्ण स्थितिका लाभ उठावेंगे।

किन्तु अपने अपने अधिक क्षेत्रके शक्तिधारी मध्यम पूँजीजीवी इनका सब नहीं करेंगे। साम्राज्यवादी गठबंधनका कार्य बड़े एकाधिपतियोंको नई शक्ति प्रदान करना है। यह विकास मध्यम वर्गके हितमें नहीं है। किन्तु साथ ही मध्यम पूँजीजीवी साम्राज्यवादके संपूर्णतया सम्बंध विच्छेद करनेमें भिन्नकते हैं। यह वे तभी कर सकते हैं, जब ■ वे अपने आपको मजदूर वर्गके हितोंके साथ संयुक्त कर लें और चीनके समान नये प्रकारकी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था अपना देनेके लिये तैयार हों। इस विषयमें उन्होंने अभी सोचा भी नहीं है, क्योंकि सकट अभी इनका गन्भीर नहीं है, जो उन्हें ऐसा करनेपर विवश करे। किसी भी समय ऐसे परिवर्तनोंकी कल्पना करना बहुत बड़ी बात होगी।

साम्राज्यवादके प्रति इस दृष्टिकोण अपनानेके कारण पूँजीजीवियोंके मध्यम और उच्च दोनों वर्गोंको किसी सीमा तक समान क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। राष्ट्रमंडलीय स्तरकारी रक्षा की जाती है, किन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यौद्धिक दलमें और साम्राज्यवादी दलमें अपने आपको धल्य करनेके परन्तु राष्ट्रमंडलसे भी कृपक होनेका विचार सामने आने लगा है। विदेशी व्यवसायकी शक्ति समाप्त करने, एशिया और अफ्रीकामें एक शान्ति क्षेत्रका निर्माण करने तथा समाजवादी सगारों को सम्मिलित करते हुए एक व्यापारका क्षेत्र निर्माण करनेकी आवश्यकताके फल स्वरूप यह विचार उत्पन्न हुआ है।

बड़े अखिल भारतीय पूँजीजीवी ऐसे भयप्रद परिवर्तनोंके विरुद्ध हैं। वे नेहरूको भयंकर सकटके समान समझते हैं। तटस्थता तो ठीक थी, किन्तु स्पष्ट

स्वतंत्रता, समाजवादी समारसे व्यापार, वार्शियनका स्पष्ट प्रतिपात तथा अनरौप्रीय सम्बन्धोंके निष्ठातस्वरूप पंचशीलका निरुत्तर प्रतिपादन पचानेके लिये बहुत भागे पड़ेगा। बड़े पूँजीजीवी बुद्ध कलसी ही उपज थोड़े ही हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इन नीतियोंका देशकी आतंरिक प्रगृहियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

पीठ पीछे चाहे किनको भी आलोचना की जाय, आर्थिक योजनाओंका मरुत घटाया जाय, उन्मुक्त गेष्टियों उलम्फनके बीज बोयें, किन्तु इनमेंसे कोई भी बड़े उद्योगपतियोंके निजी मयोंकी सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा किये जानेवाले अधिकरणसे रक्षा नहीं कर सकते। यदि हम बेचल द्वितीय योजनाके प्रति अपनाये जानेवाले सार्वजनिक स्वागतकी दृष्टिसे ही देखें, तो यह वास्तविकता नहीं दिखलाई पड़ेगी। यह स्वागत तो स्वाभाविक है। एकाधिकासी तत्व विकासशील अर्थम्यवस्थासे यथेष्ट लाभ प्राप्त करनेकी सम्भावना देखते हैं। सम्भव है मध्यमवर्ग सार्वजनिक क्षेत्रीय नवीन आयोजनाओंके अंदर विकसित होनेवाले लघु उद्योगोंकी उन्नत करनेके लिये तत्काल ही धन प्राप्त न कर सके और इस कारण सदैवके समान अपने बड़े भाइयोंका आसरा लाने।

पुनः राष्ट्रीय औद्योगिक विकासनिगमकी निधि बड़े पूँजीजीवी हस्तगत करना चाहते हैं। अन्य वित्तीय निगमोंकी भी ऐसे अनधिकृत दखलने बचनेके लिये भारी सवर्ष करना पड़ेगा। वित्तीय निगम नियमक वैद्वान्तिक विरोध तो प्रारम्भ हो गया है। इन समय विश्व बैंक निर्देशित औद्योगिक ऋण और विनियोजन निगम तथा राष्ट्रीय औद्योगिक विकासनिगम पर नियंत्रण स्थापित करनेमें एकाधिपति सकल हो गये हैं, किन्तु राज्योंमें प्रतिआक्रमण आरम्भ हो गया है। उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल दोनों प्रदेशोंमें बंघिसपाटीय नेताओंकी गम्भीर आलोचनाका सामना करना पड़ रहा है, क्योंकि उन्होंने निवि नियतन कार्यके पर्यवेक्षणकी विद्वला और जालान-को आता दे दी है। द्वितीय योजनाके अग्रसर होनेके साथ ही साथ यह प्रतिआक्रमण भी फैलेगा।

हमारे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति सन्तुलित भविष्यसे आगेकी ओर देखे तो पूर्णरूपेण भिन्न सम्भावनायें सामने आती हैं। जैसे ही मध्यम पूँजीजीवियोंने अपने सज्जमको समाप्त किया, वे राज्योंकी अपनी सदेह-रहित प्रभाव-

राजनैतिक शतरंज

राष्ट्रीय स्थितिके सहारे वित्तीय निगमोंकी निधि पर एकाधिकार प्राप्त करनेके लिये कृतसंकल्प हो जायेंगे। साथ ही केन्द्रीय सरकार द्वारा लाइसेंस देनेमें तथा इसी प्रकारकी अन्य सुविधाओंके विषयमें बड़े पूँजीजीवियोंके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहारकी वर्तमान व्यवस्थाको समाप्त करनेके लिये कदम उठाये जायेंगे।

जब मध्यम वर्ग देखेगा कि सार्वजनिक क्षेत्रीय इस्पात आदि मौलिक उद्योगोंके कारखाने टाटा आदि निजी कारखानोंकी अपेक्षा अधिक उत्पादन कर रहे हैं, तब उन्हें अधिक विरक्त हो जायगा, क्योंकि एक बार ऐसा होनेके पश्चात् उनके विद्वान्नी अधिक सम्भावना होगी।

इसके अनिरीक्त बड़े-बड़े निजी उद्यमी अपनी शक्ति खो देंगे। उदाहरणार्थ उस समय सरकारसे यह आशय नहीं की जा सकती कि वे टाटाको इस्पातका मूल्य अधिक ऊँचा कायम रखनेके लिये सरकारी सहायता दें, जब कि वे स्वयं इस पदार्थका अधिक भाग उत्पादन कर रहे हों। टाटा तथा अन्य लोग इन खतरोंसे परिचित हैं। और इसी कारण वे विश्ववैक ऋणको मध्यस्थतासे उत्पादन बढ़ाना चाहते हैं। किन्तु उनके लिये यह हारनेवाला मध्यम है।

तथापि यह निष्कर्ष अभी प्राप्त नहीं हो सके हैं। समस्त देशमें अभी निरारा और विरक्ततासे पूरी लघु उद्योगपतियों और व्यवसायियोंका राज्य है, जो बड़े पूँजीजीवियोंके समान शक्ति और प्रभावनीय प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं और जो अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके निबटनेके लिये सैन तैयार करनेमें अधिक व्यस्त होते जा रहे हैं। वे लाभोंके अन्तर आधारभूतस्तर दृढ़कर आगामी वर्षोंको स्वयं अपना ही बनाना चाहते हैं, ऐसे वर्ष जिनमें वे बड़े पूँजीजीवियोंसे वित्तीय अत्यन्तमें मुक्त हो सकें।

यहाँ एक चेतावनी आवश्यक है। संपूर्ण भारतीय निहित स्वार्थोंके अत्यन्त उल्लंघन और कपटतासे पूर्ण व्यवहारोंकी देवनेपर यह मालूम पड़ेगा कि अखिल भारतीय बड़े पूँजीजीवियोंका एक छोटा वर्ग अक्सर मिलने पर क्षेत्रीय मध्यम पूँजीजीवियों या अन्य लोगोंकी नीतियोंसे फीका कर सकता है। कुछ बड़े पूँजीजीवी विदेशी पूँजीसे निकट सम्बन्धित नहीं हैं और न उनका व्यवसाय संपूर्ण उप महाद्वीप पर फैलाही है।

उन्होंने किसी विशेष क्षेत्र में गहरे व्यवसायिक सम्बन्ध विकसित कर लिये हैं और विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्रों में भी निरंतर प्रगति की सम्भावनाएँ देखते हैं। इनके विरुद्ध कुछ मध्यम तन्त्र विदेशी प्रतिष्ठानों में आतंक है। वे इस ढंग में अनुर्द्धित फैले हैं कि जिससे वे बड़े पूँजीजीवियों के छोटे सहकर्ता बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक ऐसा भी भाग है, जो अपने वर्ग के साथ चलते हुए भी मुख्य प्रगतिवादी अस्थायी विरोधी है, उसे देखकर निश्चिन्ता है एवं सभ्रम में पड़ जाता है।

यह युगांतरकारी चिन्ह है। पूँजीजीवियों के इन दोनों दलों का पारस्परिक सम्पर्क और तनाव अधिकाधिक स्पष्ट होता आ रहा है और समय व्यतीत होने के साथ ही साथ तीव्र होता जायगा। संपूर्ण भारत में अपना व्यवसाय करने वाले पूँजीजीवी क्षेत्रीय पूँजीजीवियों की प्रगतिवादी रोकने के लिये अधिक उद्दत्तापूर्वक प्रयत्न करेंगे। फिर एक स्थिति ऐसी भी आयेगी जब उनके सामने सख्त उपस्थित हो जायगा। उस समय इन कठिनाइयों पर विचार पाने के लिये वे कुछ भी करने से न चूकेंगे।

इस बात की पूरी पूरी सम्भावना है कि बड़े एकाधिपतियों के अनिरोधक और भ्रष्टाचारी तत्त्व अपनी कार्यवाहियों को साम्राज्यवादी पद्धतियों और प्रतिक्रियाओं में अधिकाधिक संयुक्त करते जायेंगे तथा समाजवादी पार्श्वों का सामना करने के लिये हिन्दू महासभा तथा अन्य तानाशाही उदारवादी (रिवाजवादी) दलों का अधिकाधिक सहारा लेंगे। यह भी सम्भव है कि पूँजीजीवियों के भेदभाव दबने पर स्वयं कांग्रेस के विरोधी दलों के बीचों बीच सौई पड़ जाय।

भारतीय राजनैतिक शतरंज की एक प्रमुख दृष्टि विशेषता अर्थात् सरकारी नीति की द्विकिचिदाहट, सरकारी सिद्धान्त एवं व्यवहार की अनेक प्रतिकूलताएँ पूँजीजीवियों के द्विकिचिदाहट, तथा आन्तरिक शक्तिसन्तुलन का झुकाव एवं सघर्ष प्रदर्शित करते हैं। आज की अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि मजदूरों और किसानों पर आधारित स्वदेशाभिमान की प्रगतिशील एवं प्रगतिवादी तत्त्व पूँजीजीवियों अथवा कांग्रेस पार्टी में होने वाले इस सघर्ष की सक्रिय और स्वाभिमानी रूप से मध्यस्थता करें।

भूतकाल में इस कार्य की बुरी तरह उपेक्षा की गई है। किन्तु अब आगे आने वाले भविष्य में इसकी यह उपेक्षा जारी नहीं रह सकती।

सार्वजनीन एकता

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। जब तक मुझमें शक्ति है, मैं हार नहीं हो सकता, कोई अस्त्र इस इच्छाको काट नहीं सकता, कोई भस्म इसे जला नहीं सकती, कोई जल इसे भिगा नहीं सकता और न कोई वायु इसे सुखा सकती है।

— बाल गंगाधर तिलक

काँग्रेस पार्टीकी समस्याओंमें हस्तक्षेप करना कठिन है क्योंकि इन कार्यके लिये बड़ी भारी समझदारी और पर्याप्त नमनशीलताकी आवश्यकता है। स्वतन्त्रता-संग्रामकी कहानी भी इसी चाल पर और चलती है।

काँग्रेस सामान्य पूँजीजीवी पार्टीके समान नहीं है, यह ऐसा संगठन है, जिसकी परंपरामें अभी स्वदेशाभिमान विद्यमान है। इस संगठनने अपनी नीतिके ऊपर से धनी भारतीयोंका नियंत्रण इटानेके लिये भारी प्रयत्न किया है। भूतकालमें, प्रमुखतया महात्मा गांधीके प्रभावके कारण, इस पार्टीने अनजाने में निरुद्ध स्वर्ण कायम (क़त्ला तथा अपने कार्यकर्ताओं और नेताओं पर पर्याप्त साक्ष्य और समर्पणकी भावना कायम रखनेके लिये जोर दिया।

और चूंकि यह पार्टी सभी राष्ट्रीय स्वदेशाभिमानियों के लिये सम्मेलनके रूपमें विकसित हुई थी, इस कारण आवश्यकतानुसार अपने विरोधियोंकी नीतियोंको पूर्णतया अस्वीकारनेमें कोई कठिनाई अनुभव नहीं करती। इस कूटनीतिक चतुराईके साथ अनेकों बार प्रयोग किया गया है। देशमें व्याप्त असंतोष और निराशाके भावग्रह भी सुसंगठित राजनैतिक संस्थाके रूपमें काँग्रेस को ऐसा एकमात्र राष्ट्रीय संगठन है, जिसमें राजनैतिक सत्ताशोका सामना करनेकी क्षमता है।

यह सलकारें क्या हैं ?

हमने हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनोंकी स्थिति पर विचार कर लिया है। देशके विभाजनके अनुगामी महीनोंमें यह भय था कि वही वे संगठन महत्वपूर्ण राज-

नैतिक शक्ति नृबन जाये । किन्तु सांप्रदायिक दंगेके अवसरपर उनकी उतेजक भावोदगी उनके राजनीति-विषयक उद्धारवादी मिथ्या, जनताके समुच्च अवस्थित प्रमुख आर्थिक प्रश्नोंकी गंभीरतापूर्ण हल करनेकी उनकी अस्वीकृति तथा उनके एक साथी द्वाप महामा गांधीकी दलाने वास्तविकताके सत्ताके लिये क्षय करनेवाले सांप्रदायिक गठबंधनकी सम्भावनाको ही पूरी तरह मसाम कर दिया ।

किन्तु महामा और उनके साथियोंने राजनैतिक जीवनमें सिर्फ छोटे समयके लिये ही पलायन किया है । भारतमें सांप्रदायवाद अब भी अनेक स्पर्षों फैला हुआ है । जैसा कि पहले बतलाया गया है, कांग्रेसके आंतरिक सूर्यके तीव्रतर होनेके साथ ही माय हम बात की पूरीपूरी सम्भावना है कि वही कांग्रेस पार्टीके अस्तुष्ट अन्धबिंदु दक्षिणपथी तथा निक्षेपक्या भारतीय समाजवादके आक्रमणके सामने प्रत्याधर्नित होनेवाले मारवाची एकधिपतियोंके मित्रमूल्य महासभा पुनर्जीविन न हो गया ।

अन तथा अन्य प्रकारकी सहायताके लिये महामा अब भी इन तत्त्वोंका आग्रह ताकती है । वर्तमान समयमें भी महामाके दुर्बोधतावादमें और कांग्रेसके अरर विद्यमान यदाकदा पुरपोलमदास टहन और सपूर्णनद सरीखे व्यक्तियोंकी अभिभूत करनेमें समर्थ नेहरूकी शक्तिको उल्लंघननेवाने अनेक गुरोंके विचारोंमें बयोट समानता है ।

कांग्रेसमें विरोधी सूर्यके तीव्रतर होनेके प्रत्येक अवसर पर महामा और उसके साथी आग्रहें कूद पड़ते हैं । गोवा तथा राजपुर्गोटनके प्रश्नोंकी लेकर सांप्रदायिकों प्रमुख आक्रमणकी विचारपूर्वक नेहरूके विरुद्ध स्थानान्तरित करनेके उद्देशसे कामपथियोंके साथ हो गये । उन्होंने ऐसी स्थिति उस समय अपनाई । सामान्य धारण यह थी कि वे शक्तिपूर्ण, संगठित, हिन्दुभारतके समर्थक हैं । वे कामपथियोंके आक्रमणकी भी सदैव लक्ष्य-भूत करनेमें इस कारण सफल हो गये, क्योंकि पहलेने ही दुधियामें पडे कामपथियोंको उल्लंघनमें उन्हें कुछ कठिनाई बड़ी हुई ।

सांप्रदायिकी और साम्यवादी दोनों ही सामान्यरूपमें नेहरू की कटु आलोचना करते हैं और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय नीतिके सभी स्वीकारात्मक पहलू आलोचना के विषय बन जाते हैं । साम्यवादी इस उद्घाटनमें सम्मिलित तो नहीं होते, किन्तु

सार्वजनिकता

वे उन क्षेत्रों पर विद्यमान रहते हैं, जिन पर गोवाके सम्बंधमें पंचशीलका उपहास होना हो, जहाँ समाजवादी उपायोंकी अपर्याप्तताके कारण नहीं, बल्कि इस कारण धमियाँ उठाई जाती हैं कि यह कॉमिन्सको पीटनेका उपयोगी ढाँचा है। प्रत्येक तथाकथित समुक्त मोर्चे पर साम्यवादियोंका स्वर सम्प्रदायवादियोंके स्वरके नीचे गूँज जाता है।

बसुन विभिन्न हिन्दू साम्प्रदायिक समूहों द्वारा प्रचारित नीतियों में अंतर है। दवाहरणार्थ जनसमूह मौके पर विमान आंदोलनोंका नेतृत्व करनेका प्रयत्न हाथमें लेनेके लिये तैयार रहता है। इन विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा धामपधियोंके नामपर शक्ति प्राप्त करने तथा बुद्धिहीन लोगोंको धमकानेके लिये राजनैतिक जात फँकनेकी आशा की जाती है। जब कार्यका अवसर आता है तो सम्प्रदायवादी एक संगठित दलके रूपमें एक आवाजसे कार्य करनेके लिये तैयार रहते हैं।

जब तक भारतीय जीवनका मुष्ट सामाजिक पुनर्गठन नहीं होता, तब तक हिन्दू सम्प्रदायवाद मंदिर इस देशमें भारी सफ्टस्वरूप रहेगा। साम्प्रदायिक नेताओं द्वारा साम्राज्यवादके अभिकर्ता उत्तेजक स्वरूप कार्य करनेकी सानुकूलताके कारण यह सफ्ट और भी अधिक बढ जाता है। नेहरू द्वारा इस दिशामें बारबार दी जानेवाली चेतावनी निराकार नहीं है।

फिर प्रजा समाजवादी पार्टी भी है। यह पार्टी दक्षिणपंथी समाजवादियों और प्रजाओं अर्थात् कॉमिन्समें अखण्ड होकर अलग होनेवालों या उन्मूलनवादियों का एक अजीब मध्यपथ है। इस पार्टीमें अनेक आदरणीय व्यक्तियोंकी निष्ठा प्राप्त है और इसके कार्यकर्त्तार्योंमें ऐसे सक्रियतावादी हैं, जो सभी प्रतिमानोंके अनुसार सुंदर राजनैतिक वर्गमें शामिल लिये जा सकते हैं। समाजवादी दल इस पार्टीकी प्रमुख शक्ति है।

इस पार्टी पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। कारण यह है कि यद्यपि इसे दृष्टेय समर्थन प्राप्त है, किन्तु इसमें शक्ति कितनी हुई है और इसकी घोषित नीतियोंमें स्पष्टरूपमें असमर्थता और असश्रुता दिखलाई पड़ती है। इस पार्टीकी स्थिति समझनेके लिये इसकी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपान करना आवश्यक प्रतीत होता है।

१९४८ तक समाजवादी पार्टी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अंदर रहकर एक सर्वांगीण इकाईके रूपमें कार्य करती थी। वहाँ एक ओर साम्यवादी १९४२ के अंदर कांग्रेसमें निकाल दिये गये, वहाँ समाजवादियोंने नागिक अधिवेशनके पश्चात् अपने आपमें कांग्रेससे बिलग कर लिया। इस नई पार्टीकी रचनाके कारण डूँडना बटिन है। सम्मेलनमें अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए जयप्रकाश नारायणने निम्नलिखित बात कही थी —“..... सोवियतमें विश्वास रखनेवाले तथा देश और राज्यके प्रति निष्ठावान, जनप्रिय विरोधी दलकी अनुपस्थितिपर परिणाम निश्चित रूपमें सर्वहारावादको प्रोत्साहन देना है।”

वास्तविकता यह है कि १९४८ के अन्दर बी. टी. रणदिवेके नेतृत्वमें साम्यवादी पार्टी अवैध परिस्थितियोंमें कार्यरत थी और दुःसाहसिक नीति द्वारा सरकारको उलटनेका प्रयत्न कर रही थी। देश विभाजनके उत्तरगामी वर्षोंमें देशके अन्दर व्याप्त असंतोषने साथ इस तथ्यने मिलकर समाजवादके नेताओंको यह सोचनेके लिये प्रोत्साहित किया कि उनकी पार्टी एक स्वतंत्र, वैध, विरोधी दलके रूपमें कार्य कर सकेगी। इनके अनिरक्त यह भी सोचा गया कि इन विरोधी कार्यवाहियोंके द्वारा असंतुष्ट तब साम्यवादकी ओर जानेसे रोके जा सकेंगे। समाजवादी सर्वैव साम्यवादके चर शत्रु रहे हैं। तीनों वर्षोंमें वामपंथी एकताके दुर्भाग्यपूर्ण प्रयत्नने उन्हें अपने समर्थकोंके एक बड़े भागसे वंचित कर दिया था। साम्यवादियोंने समाजवादियोंको अपने अंदर विलीन कर लिया। और “जन-समामके” अवसर पर निश्चित रूपमें यह कटुता अधिक बढ़ गई।

पूर्णतया साम्यवाद विरोधी स्वतंत्र समाजवादी पार्टीकी रचनाका तत्कालीन परिणाम सार्वजनिक संगठनमें फूट और दुष्प्रभावकी कार्यवाहियोंको निष्क्रिय करना हुआ। वाममार्गियोंके सभी दलों द्वारा परस्पर विरोधी कार्योंपर परिणाम यह निकला कि देशकी सर्वाधिक संगठित ट्रेड यूनियन ‘ऑल इंडिया रेल्वेमेन्स फेडरेशन’ भी निर्वल हो गई। यह सपने कांग्रेसको सृष्टिने लिये जारी रहा तथा उन्होंने वाम मार्गियों द्वारा कामगारों और किसानोंमें उत्पन्न की गई उदासीनता और प्रचारभ्रष्टताका लाभ उठाकर अपना सार्वजनिक संगठन मजबूत कर डाला।

सार्वजनिकता

जहाँ एक ओर साम्यवादी पार्टीने अपनी शक्तिका सञ्चित कार्यवाहियोंमें अपज्यय दिया, वहीं समाजवादियोंने महत्वपूर्ण समस्याओं पर स्पष्ट स्थिति ग्रहण न करके अपनी बरबादी की। असोक मेहता और सममनोहर लोहियाके समान शोषण नेता तो वर्गसंघर्षके अस्तित्वको ही आखीर करने लगे। १९४६ में पटनाके अंदर होनेवाले पार्टीके सत्रमें अधिवेशनमें असोक मेहताने कहा कि "उम देशमें जहाँ 'लोकतन्त्र' विद्यमान हो, वर्गसंघर्षको कोई विरोध आवश्यकता नहीं है।" लोहियाने भी लगभग इसी प्रकारकी बातें की।

इन्में भी अधिक आश्चर्यजनक बात विश्वममस्या सम्बंधी समाजवादियोंकी स्थिति थी। १९४० में मद्रास अधिवेशनके अंदर कयप्रकाश नारायण बोल उठे कि "अमेरिकामें 'न्यू डील' के अंदर कल्याणकारी राजकी दिशामें जो प्रगति प्रारम्भ की गई थी, वह अभी निर्विरोध जागी है।" लोहियाने 'संघर्ष'में प्रशस्ति देने के लिए एक लेखमें लिखा, "मैं अमेरिकामें यह बनसाना चाहता हूँ .. भारतमें उसके सर्वोत्तम निज समाजवादी हूँ।" और असोक मेहता विश्वासपूर्वक यह घोषित कर उठे कि "अमेरिकामें दैनिक तैयारियोंके ऊपर पूरा दबाव भी जीवन-स्तरकी गिरावटमें असफल हो जाता है।"

समाजवादी नेताओंकी साम्यवादविरोधी विचारधाराने उन्हें नेहरूकी विदेशी नीति और राष्ट्रीय निरुध्वयता प्रतिपादनके प्रयत्नोंके विरोधी बनाने पर विवश कर दिया। चीनकी मित्रता दुर्भाग्यपूर्ण समझी गई और शीत युद्ध पर प्रभाव डालने वाली नटस्थताकी भी आलोचना होने लगी। समाजवादियोंने सक्रिय रूपसे नेहरू और नटस्थताकी अपने आक्रमणका सक्षय बनानेवाले अमेरिका प्रेरित ट्रूट यूनिपन और बुद्धिजीवी संगठनोंका समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया।

ऐसे दुर्बोध दृष्टिकोणों और कार्यवाहियोंके परिणाम स्वरूप समाजवादी पार्टीके अंदर विद्यमान वामपक्षी दलने विद्रोह कर दिया जिसमें अछूता आसक्तियोंके समान प्रमुख नेता भी सम्मिलित थे। अन्य चुनावोंके निकट आनेके साथ साथ यह खाई अधिक चौड़ी होती गई। इस समय सभी प्रकारकी विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रगट होने लगीं।

तथापि चुनावोंके लिये पार्टीने इस आशाके साथ तैयारी की कि वह कमसे कम ८०० विधान सभाई और १०० लोक सभाई सीटों पर अधिकार प्राप्त कर लेंगे। उनका प्रचार एक मजाक रहा। उन्हें दोनों स्थानों पर क्रमशः १२६ और १२ सीटोंने मनुष्ट होना पड़ा और साथही विरोधी नेनाका पद अवैधताके पस्वान इन्ही दिनों प्रगट होनेवाली साम्यवादी पार्टीके लिये छोटना पड़ा।

पूर्वजालीन अभ्यासका सर्वसमन परिणाम कृपक मजदूर प्रजा पार्टीके साथ असंगत सम्मिलन हुआ, जो कॉम्रेसी विदोहियों द्वारा निर्मित पार्टी थी। प्रजाममानवाद जिने अनेक नेनाओंने लोकनजी समाजवादकी सजा दी थी, इस सजाधकी दूर करनेमें असमर्थ रहा। वस्तुतः समाजवादके साथ गांधी दर्शनके योगने इस गणवद्धकी अधिक उत्तमा दिया। आगामी वर्षोंमें यह पार्टी उपहासास्पद बन गई। राजनैतिक उपदेशक इन पार्टी द्वारा निखलाए जानेवाले समाजवादको देखकर आश्चर्य-चकित थे। यूरोपीय और एशियायी समाजवादियों सहित समस्त समार द्वारा प्रशंसित वेदक की विदेशी नीतिवा प्रजा समाजवादी उपद्राम करते थे। विकासशाल सार्वजनिक सेनको एकाधिपति दिनों पर कृत्यराधान करनेवाला नहीं माना गया, बल्कि उसे सर्वहारी एवं व्त्तरराही सचष्टके समान समझा गया। इसके अतिरिक्त प्रजा ममानवादियोंके ‘लोकनाश्रिक गवेषणा दल’ और ‘स्वतंत्र एशिया समिति’ सरीखे समुदायोंके साथ अधिनाधिक स्पर्षके पलन्वरूप ने राष्ट्रीय जीववकी मुख्य धाराओंमें दूर पड़ते गये।

पार्टी कार्यकर्त्ताओंका बचा भारी दल ‘समाजवाद ठन्मुख’ कॉम्रेसकी ओर अथवा साम्यवादकी ओर अपसर होने लगा। अन्य लोग अपने सज्जन द्वारा निष्क्रिय हो गये। जयप्रकाश नारायण भूदानके अंदर अपने समाजवादकी भी भूल गये। अशोक मेहता और लोहिया साम्यवादी राजविषयक प्रलापने अपनी शक्तिका अरन्धय करने लगे।

अगला परिवर्तन उनमें द्तर पड़ना थी। लोहियाने ‘सुरक्षा वाल्व’ के रूपमें एक नई समाजवादी पार्टीकी रचना कर खाली और वर्गसचर्चमें अपना विश्वास प्रतिष्ठित किया। मधु लिमयेने पुनर्मूल्यांकन प्रारम्भ कर दिया। जिनेने फलस्वरूप ने अशोक

सार्ध जन एकता

मेहताके प्रतिष्ठित नेतृत्वके साथ अभिव्यक्तिक संपर्षमें आते गये । प्रजापार्टीवाले कॉंग्रेस छोड़ने पर स्वयं आन्ध्रयान्त्रिक थे ।

आज जब द्वितीय आम चुनाव होने जा रहे हैं । समाजवादी और प्रजापार्टीवाले यह नहीं समझ पाते कि उन्हें क्या करना चाहिये । पिछले चुनावके परिणामोंने उन्हें निराशान्तरूपमें यह बतला दिया कि साम्यवादी मोर्चेके उम्मीदवारोंका विरोध करके तथा इस प्रकार बामपक्षी मतोंको विभ्रजित करके पार्टीको किसी प्रकारका लाभ नहीं पहुँचना । यही कारण है कि वे आजकल कॉंग्रेसको हरानेके लिये विरोधी दलोंके साथ चुनाव समझौते करना चाहते हैं ।

इन प्रस्तावित समझौतोंके ऊपर आजकल परमाग्रह बढ़ा हो रही है, किन्तु इस पर विचार करनेसे पहले साम्यवादी पार्टीकी स्थितिको समझना आवश्यक है, क्योंकि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । मिन और सतु दोनों ही स्वीकार करते हैं कि कॉंग्रेस सत्ताके लिये यही सर्वोच्च भोषण हलभार है ।

अनेक भयंकर और भारी गलतियों के बावजूद भी साम्यवादी पार्टी की शक्ति बढ़ती जा रही है । दक्षिणके कुछ भागोंमें, उदाहरणार्थ, केरल और आंध्रमें इस पार्टीको दृष्टेष्ट शक्ति प्राप्त हो चुकी है । बंगालके अंदर कॉंग्रेसकी सगणनाओ असत्य प्रमाणित करती हुई यह पार्टी निरंतर अग्रसर हो रही है । महाराष्ट्रके अंदर भी प्रमुख शक्ति होनेकी सम्भावना है । यह उस पार्टीके खास मोर्चे है, किन्तु देशके अन्य भागोंमें भी इसके समर्थक चारों ओर फैले हुए हैं ।

यद्यपि उन्नत साम्यवादी पार्टीकी ओर सदैव मार्ग प्रदर्शितार्थ उन्मुख होती है, तथापि उन्हें एक ऐसे नेतृत्वका सामना करना पड़ता है, जो उनकी समस्याओ ठीक तरह नहीं समझ पाता । बारबार एक पूरा पूरा प्रदेश कार्यवाई करता है किन्तु उन्हें गहन नीतियोंके परिणामस्वरूप सभ्रमके साथ क्रयवर्तित होनेके लिये विवश होना पड़ता है । तेलंगाना, आंध्र, गोवा तथा राज्य पुनर्गठन-विषयक कुछ मामलोंमें यही कहानी बारबार दुहराई गई है । संसदके अंदर भी साम्यवादी प्रवक्ता अपना चिन्ह छोड़नेमें अक्षमल हुए हैं ।

साम्यवादी पार्टी का अवरोधित विकास

ऐसा क्यों होता है ? पार्टीके अंदर अनेक निस्वार्थी, निष्ठावान और बुद्धिमान अछूट कार्यकर्त्ता विद्यमान हैं। उनका इतिहास अनेक निराशापूर्ण परिस्थितियोंमें साहस और धीरताके प्रदर्शनमें परिपूर्ण है। ऊपरी तौरसे पार्टीके अवरोधित विकासका कोई स्पष्ट कारण नहीं दिखलाई पड़ता। फिर भी इनका कुछ कारण तो होना ही चाहिये।

पार्टीके विनाशित जनममें भारी गलतियोंके पावबंद भी नेताओंके अनुराग मंडलके अपरिवर्तित रहने में, वास्तविक अध्ययनकी आवश्यकताकी उपेक्षामें और त्रुटिपूर्ण संगठन विचार तरीकेके अयोग्यता करनेमें दुरोक्त परिणामकी बुझी विद्यमान है। इन समस्त कारणोंके अधिक प्रभावशाली होनेका कारण यही है कि उन्हें कांग्रेस पार्टीके कुशल नेताओंका सामना करना पड़ता है, जो इस विषयमें न तो चिंतित हो हैं और न गिरफ्त।

भारतके अंदर साम्यवादी पार्टीकी नींव यूरोप और एशियाकी इन्हीं पार्टियोंके निर्माणके बहुत दिनों बाद तीसरे बंधोंमें रखी गई। इसका कारण मजदूर वर्गकी अल्पसंख्यकता नहीं थी। चीन सरीखे सिद्धे देशमें भी नागरिक और सैनिक दोनों ही क्षेत्रोंमें साम्यवादी भीमके बंधोंमें ही राष्ट्रीय शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हो चुके थे। छोटेसे हिन्देशियाके सम्बंधमें भी यही वस्तुस्थिति थी। फिर भारतमें मार्क्सवादी कार्यवाइयोंके इतने विशिष्ट आरम्भका क्या कारण था ?

अन्य औपनिवेशिक देशोंमें भारत दो मुख्य बातोंमें भिन्न था। प्रथम बात तो यह थी कि ब्रिटिश साम्रज्य गँवों और नव विकसित नगरोंके बीच एक ऐसी सांस्कृतिक और सामाजिक खाई बनानेमें सफल हो गये जिसका चीन या दक्षिण पूर्वी एशियायी देशोंमें अस्तित्व ही न था।

भारत और चीनके पारस्परिक अनुरोध कारण अन्य बातोंके साथ-साथ औपनिवेशिक उद्बोधनके पृथक पृथक तरीके बनाना भी था। भारतमें ब्रिटेनकासो देशके भीमारी प्रदेशों तक प्रविष्ट होकर नगरों और रेलोंकी महायन्त्रसे प्रशामनिक ढाँचेको सुन्दर कर सके। संपूर्ण देशमें उन्होंने नगरोंको आत्मत भारतीय जीवनका लगभग केन्द्र ही बना जाला। चीनके अंदर विदेशी शक्तियोंने अपनी कार्यवाहियों तटीय

सार्थ ज नी न प क ता

प्रदेशमें सीमित रखकर देशके भीतरी भागोंकी सम्पत्तिके उद्घोहनका साधन बंदर-गाहोंको बनाया । इस कारण चीनके विस्तृत आंतरिक प्रदेशके सामंती जीवन पर भारतकी तरह विशेष प्रभाव नहीं पड़ा ।

इस अंतर का दूसरा कारण अनेक साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा उद्घोहित होनेके बवजूद भी इनकी पारस्परिक प्रतिद्वंद्विताका स्वयं उत्पन्न चीन द्वारा किसी अंश तक अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा थी । भारतमें ऐसी बात सम्भव न हो सकी, क्योंकि इस देशमें ब्रिटेनवासियोंकी पकड़ मुरब्ब थी, जिमने उसे अंतर्राष्ट्रीयधारासे दूर फेंक दिया । साथ ही साथ उन लोगोंने भारतीय विचारधाराको पुनर्गठित करनेकी नीति भी अपनाई । इस नीतिको प्रमुख उपासक मेकासे था । वह भारतीयोंको इस प्रकार शिक्षित करना चाहता था, जिमसे वे पूरे अंग्रेज बन जायें । इस नीति द्वारा अपेष्ट लाभ प्राप्त होनेकी आशा थी ।

साथ ही ब्रिटेनके अधीन रहकर भारतने चीनकी अपेक्षा अधिक तेजीसे तरकीबी थी, जिसका उद्घोहन अनेक परस्पर विरोधी शक्तियों कर रही थी । परिणामस्वरूप भारतमें अपेक्षाकृत, विवक्षित और व्याप्त स्थानीय पूँजीजीवियोंका उदय हुआ । यह वर्ग ब्रिटिश ढंग पर शिक्षित व्यवसायियोंके नेतृत्वमें अन्य औपनिवेशिक पूँजीजीवियोंकी अपेक्षा अधिक विवक्षित हो गया । आश्चर्य यह है कि दोनों विश्वयुद्धोंमें प्राप्त होनेवाले लाभोंके परिणामस्वरूप इस वर्गकी उन्नति हुई और इस प्रकार इन्होंने अपने विदेशी शासकोंके अनेकों राजनैतिक सिद्धांतोंको अपना लिया ।

चीनमें देशके आंतरिक विस्तृत भागपर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करनेवाली कोई केन्द्रीय शक्त नहीं थी । यह संपूर्ण विस्तृत प्रदेश निरवयात्मक रूपसे धीन्द्रिक सरदारोंके प्रभावमें था । भारतमें परिस्थिति भिन्न होनेके कारण नगरोंकी जनसंख्या प्रत्येक प्रकारकी कार्यवाहियों के केन्द्रस्थल बन गई । किन्तु अंग्रेजी पदे लिखे न्योदित पूँजीजीवियोंके अधीन ' नियंत्रित प्रगति ' पर सदैव जोर डाला जाता था ।

परिणामस्वरूप दोनों देशोंमें साम्यवादके रूपमें भी विभिन्नता आ गई । चीनी साम्यवादियोंकी प्रसिद्ध सम्झौता यात्रा उस देशमें केन्द्रीय शक्तकी अनुपस्थितिके कारण ही सम्भव हो सकी । भारतमें तदनुरूप प्रगतिकी आशा करना मूर्खतापूर्ण

था। यहाँ पर दिल्ली सरकार अपनी शक्तियों केन्द्रित करके ऐसे विद्रोही प्रयत्नों से निवृत्त कर सकती थी। १८२७ के विद्रोहमें अंग्रेजोंने तथ्यपूर्ण शिक्षा ग्रहण ली थी।

यद्यपि आत्मरक्षा और हिंसा जारी रही, किन्तु शत्रुओंके प्रतिबंधनने तथा उन्हें काममें लानेके लिये सुगठित होनेकी असम्भावनाने भारतीय राष्ट्रीयताको सर्वांगी रूपसे अपनी विशिष्ट प्रणाली अपनातेपर विवश कर दिया। प्रारम्भिक अवस्थामें नगर और गाँवोंके बीचकी खाईको दृष्टिगत रखते हुए इनका रूप निर्धारित हुआ था। नगरोंके अंदर प्रेरणा देनेवाला जोन स्टुडेंट मिल, हसो और धामस पिये सरीके व्यक्तियोंको संचारधाराने, दृष्टिगस्त अग्रगण्यताको गोंवोंका स्पर्श भी नहीं किया था। इन्हीं नगरोंके अंदर वर्तमान शान्तिपूर्ण आरम्भमें गोंवों तथा राजनैतिक कार्यवाहीमें उनकी कार्यक्षमता विषयक किसी प्रकारकी वास्तविक चिन्ता किये बिना ही भारतीय देशभक्तोंने अपने कार्यकलाप प्रारम्भ कर दिये।

अंग्रेजी सविधानवादी उलमनें जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कार्यों पर ध्यान थी और जिन्होंने बाल गंगाधर तिलक, साखरपतराय आदिके क्रांतिकारी उन्मादको 'अतिवादी' कह कर अस्वीकार कर दिया था, वास्तवमें मध्यम वर्गीय राजनैतिक कार्यवाहीमें सार्वजनिक समर्थनकी उपेक्षाकर परिणाम था। अंग्रेजोंने सौदेबाजी करनी थी, उनसे समझौता करना था। यहाँ तक कि ब्रिटिश मुकुटका भी आदर करना था। ऐसा करनेके उपरान्त यह विश्वास किया जाता था कि स्वराज प्राप्त हो सकेगा।

प्रथम विश्वयुद्धके अवसर पर भारतीय राष्ट्रवादके निर्माणकालमें अंग्रेजोंका विरोध करनेके लिये केवल आत्मरक्षादियोंने कमर बसी। परन्तु देशमें व्याप्त गद-बड़ और निराशाको दूर करनेके लिये नवीन क्रांतिकारियोंको आवश्यकता थी। मध्यम वर्गीय युवकोंमें इनका आकर्षण होना चाहिये था, किन्तु प्रौढ़ोंके समान ही युवकोंमें भी ग्रामों और नगरोंके बीचकी खाई सघेष्ट चीजें थी, जिसका पाटना कठिन दीख पड़ता था। विदेशी बोली, पश्चिमी पोशाक, विदेशी शासकोंकी नकल और स्वतंत्रताके स्वप्नमेव प्राप्त होनेकी आशासे सुविकसित बुद्धिमानोंको जनताके साथ

सार्वजनिकता

संयुक्त होनेमें बंचित कर दिया। 'काले साइव' या 'बोग' (पश्चिमी रंगमें रंगे बैसी मध्यों) के उपहासास्पद रूपदर्शनके लिये अधिक दूर जानैकी आवश्यकता नहीं।

चीन एवं अन्य उपनिवेशों में यद्यपि इसी तरहके दृष्टिकोण दिखाई पड़ते थे, किन्तु वहाँ पर उनका प्रभाव भारतके समान नहीं था। जिन समय भारतीय राष्ट्रवादी ब्रिटिश मुकुटके प्रति अपनी स्वामिभक्तिका परिचय दे रहे थे, चीनमें मन-यान-सेनके साइखे नेतृत्वमें वहाँकी जनता विद्रोह कर उठी थी।

तथापि भारतके अंदर विद्यमान साई भी चीनमें पड़नेवाली थी। गांधीजी मंचपर उपस्थित हुये। उन्होंने सविधानवादी अस्थिराज से इस सपर्यंक उद्गार जन आंदोलनकी मुक्त भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। ऐसा करते समय उन्हें नगरीकी कुत्रिम श्रेष्ठताकी भावनाको दूर करनेकी आवश्यकता महसूस हुई। उन्होंने गाँवोंको अपने कार्यका आधार बनाकर सर्वसाधारण पर प्रभाव डालनेवाली समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया।

चंपारन और बारदोलीके किसानोंके मध्य सत्याग्रही परीक्षा हुई। डाढ़ी यात्राके समय साधारण नमक ही सपर्यंक प्रतीक बन गया। और इस प्रकार सफलताके अधिक संकलनाकी और यह सपर्यंक अप्रमत्त होता गया। थोड़े ही समयमें गांधीजी अगर तिरासी मध्यम वर्गीय देशभक्तोंके दृष्टिकोणको बदलनेमें सफल हो गये। स्वयं अपने तथा अपने अनुयायियोंके लिये मद्य और आचारके कठोर नियम निर्धारण द्वारा वे इस साईके पड़ावकी अधिक शक्तिशाली बना कर भारतके करोड़ों लोगोंकी अपार शक्ति उन्मुक्त कर सके।

करोड़ों लोग उनके चरण-चिन्होंका अनुसरण करने लगे। वे उनमें सभी तरहके सलोचन गुणोंका वाग वनलाते थे। उनके कटुताम शत्रु विस्मय बंभिल भी यह नहीं जानते थे कि 'अर्धनग्न पत्नी' कहते समय वे गांधीजीकी समस्त उपमहा-द्वीपकी प्रेरणा प्रदायक शक्तिका वास्तविक भेद प्रकट करते हैं।

वे लगभग नग्न रहते थे। वे इस देशमें सबसे अधिक विनीत प्रणीत होते थे। लाखों व्यक्ति ओठों पर उनके नामका उच्चारण करते हुए ब्रिटिश आतंकका सामना

करते थे। किन्तु बोलशेविक क्रान्तिसे प्रभावित कम्युनिस्ट वर्गीय युवकोंने उनके लगेनी-वादी रूपमें पुराना वास्तवी और प्रयाण या उदारवादके दर्शन निचे। यद्यपि बाली-सबे बरोंमें साम्यवादी नेता पी० सी० जोशीने सम्भवतया प्रथम बार उन्हें 'राष्ट्रियता' की सजा दी थी, किन्तु उन लोगोंको तो उनमें उपरोक्त रूपके ही दर्शन हो रहे हैं। वे राजनीतिमें विद्वान चाहते थे, जब कि गांधीजी समराज्यकी बात करते थे। कम्युनिस्टों देशको वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी पहचान भी अधिक अस्तर भी, किन्तु केवल सिद्धान्त-रूपमें ही नहीं, जय तक उसे जनताका समर्थन प्राप्त न हो।

माकर्सवादी विचारक भारतके राजनैतिक समर्थन पर बीसवें बरोंमें ध्याये, जब कि स्वतंत्रता संग्राम पर कम्युनिस्ट वर्गीय नियंत्रण था, जो गांधीजीके सत्याग्रहके नये तरीकेसे प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। उन्होंने गांधीजीके व्यापारण प्रभावका विवेचन करनेकी प्रयत्न नहीं किया, बल्कि यत्रत इस दृष्टिकोणको स्वीकार कर लिया कि जब तक मजदूरोंको स्वतंत्रता संपर्क नैतृत्व करनेके निचे संगठित नहीं किया जाता, तब तक यह विचार केवल कल्पना मान बना रहेगा। उन्होंने मजदूरोंको संगठित करना प्रारम्भ कर दिया किन्तु दशद्विधोंके औद्योगिक दृष्टिकोणमें प्रतिबन्धित होकर अपने प्रयत्नोंको प्रमुख रूपसे नगरोंमें ही सीमित रखा। यही नागरिक केन्द्र भावधर्मके धर्मेको क्यों तक उनके मोर्चे रहे।

प्रारम्भिक मार्क्सवादियोंने कमिनि पार्टी पर कुछ प्रभाव डाला, इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सक्ता। किन्तु इस प्रभावका उनके स्वयंके हितमें संगठन नहीं हुआ। किसानोंके प्रश्न पर उन्होंने कभी गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया। निरुद्धेद समस्त वानमर्दियोंने वामीय संग्राम और रिवासनोंमें कमिनिस्टके समर्थन बनानेमें योग दिया किन्तु केवल गांधीजीके अनुगमियोंके ही रूपमें रहे, जो बरोंके प्रयत्न स्वरूप वैदिक धर्म भावनप्रकार रूपमें किसानोंके अधिक निष्ठ था गये थे।

चीनमें कमिनिस्टोंके वाक्पुद् भी जनताके नेता कपेष्ट कुशल थे। वहीं बीसवें बरोंमें ही माइल्-लुंग शानिपूर्वक किसानोंकी समस्याका अध्ययन करके जातीय सफलताकी कुंजी हूँद रहे थे, जिसे कुछ दिनों पश्चात उन्होंने और साम्यवादी पार्टीने आगे बढ़ाया। भारतमें नवनिर्मित साम्यवादी पार्टी नगरी तक सीमित रहनेकी

सार्थ ज नी न ए क ता

बीमारीमें ही कष्ट पानी रह्यो। भारतीय परिस्थितिमें हमी अनुभव लागू करनेमें यह बड़ा अपरिष्कृत देय था।

इस परिस्थितिमें सभानेके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया। तथापि कालीसबं बरोंमें इस गलतीको छोड़ना कठिन हो गया, क्योंकि परिस्थितिवश पाटने किमानोंकी समस्याको अपने हाथमें ले लिया था। धीरे धीरे 'जनसुषर्प' की भूलोंके पात्रभूद् भी आनीष मोर्चेका विराम हुआ। मयमें अधिक शक्तिराही रूप सेलगानामें प्रकट हुआ।

किन्तु यह कहानी अत्यन्तही थी। परिस्थितिने कबड बढ़ाई। बी. ई. रणविषेके नये नेतृत्वने उपेक्षाके साथ कृपक मोर्चोंको एक और फेंक कर नगरोंके सगटन पर पुनः जोर डाला और अनेक अनुद्द वर्गगत मिद्दार्तोंको प्रथय दिया। इसका अर्थ यह निकलता था कि साम्प्रदायी और व्याक्तिगत रूपसे नगरोंमें शहीद् होकर लोगोंको कालिनी मेरुज दे सकते थे। इसी तरहकी कुछ भावनाओंने भारतके पुराने कालिगारी यह मयं ये और कार्यकर्ता भी यह अनुभव करते थे कि कहीं कुछ गलती हो गई है। योके ही दिनों परचाल उन्हें माउ-स्ने-मुग की गलतियोंका पाठ ऐसे समय मुजनेको मिला जब चीनी कालि सफलताके द्वार सफलता रही थी।

परिणाम यह हुआ कि दिनोंदिन विकसित होनेवाली किमान सभाओंको अपनी मील मरनेके लिये छोड़ दिया गया। यदि किमान आंदोलन चलाये गये तो उसके कारण नगरों तथा वहीं सीमित मजदूर वर्गके जरिये राजनैतिक उन्नतिको थोपनेके लिये अपनाई जानेवाली एक अस्थाई बाल थी। इस उलमनके कारण साम्प्रदायिक "जनपाटी" का उदय रुक गया तथा उसका नेतृत्व एक छोटे और परिवर्तनविरोधी दलके हाथमें आ गया, जिनके मिद्दान और विवेचना सदैव परिस्थितिकी आवश्यकताओंमें कम रहती थी।

अहाँ कहीं आधुनी तरह प्राणीण क्षेत्रोंके आर्थिक समुत्पत्ति मुलमनेका प्रयत्न किया गया, कृपक, यौद्धिक क्षेत्र तीव्रतापूर्वक विकसित हुए, बाहे नगरवासी मजदूरोंके सगटन सखी विचारोंको पूरी तरह प्रतिष्ठित करनेके कारण उनकी अग्रिम प्रगति रुक गई हो।

सार्वजनिक संगठनों का अंत

ग्रामीण मजदूरोंके संगठन बनानेकी आवश्यकता पर जोर डालना ठीक था, लेकिन इतने सीमित रूपमें नहीं जिससे किसानोंकी एकता ही नष्ट हो गई। इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप आधुनिक ग्रामीण क्षेत्रोंमें भी कोअरेस शक्तिशाली बनी रही।

फिर भी जब कभी मजदूर और किसान संगठनोंकी स्थिति और समुचित प्रगति हुई है, साम्यवादी पार्टीने अपनी शक्ति प्रदर्शित की है। एण्गोला और युक्तिने अनेक गलतियों करनेके बावजूद भी वे ऐसा करनेमें सफल हो सके हैं। १९६२ और १९८० के मध्य यह बात विशेष तौरपर मन्व्य थी। ग्रामीण और नागरिक दोनों ही क्षेत्रोंमें जनसंगठनोंका अविभाज्य हुआ। मजदूर, किसान, युवक, मध्यम वर्गीय कर्मचारी और यहाँ तक कि पूँजीजीवी वर्ग भी सक्रिय हो उठे। उन दिनों नन्ही-सी साम्यवादी पार्टीकी सदस्यता भी ४००० से बढ़कर १००,००० तक पहुँच गई। यह शक्ति इतनी अधिक थी कि उसने राष्ट्रीय राजनैतिक, सामाजिक और सामुदायिक समस्याओंपर अपना बिन्दु व्यक्त कर दिया।

आवकल चारों ओर उदासोन्मा और संप्रभु व्याप्त है। वास्तविक महत्त्व खोने तथा किमान सभाओंके दुर्बल होकर निर-विनर होनेके फलस्वरूप सार्वजनिक संगठनोंका अन्त हो गया। जहाँ वहाँ वे अब भी बने हुए हैं वहाँ वे सघीर्ण एवं आन्तरिक सिद्धान्तोंमें पड़े तकरार रहे हैं और साम्यवादी पार्टी अपने क्रियाकलापोंके जरिये नहीं बल्कि सशक्तियोंके कालके जरिये अरना प्रभाव कायम रखना चाहती है। इन आतिमूलक विचारोंको त्यागकर अपने कार्य कलाओंको अध्ययन तथा अनुसरणमें मग्न करनेके उपरांत ही पुनर्जीवन सम्भव हो सकेगा।

इसमें कोई विलक्षणता नहीं है क्योंकि अब किसान मजदूरोंका संगठित आण्ड सार्वजनिक आधार ही निर्मल हो, जो सभी क्षेत्रोंमें पूँजीजीवियोंके प्रचलित तरीकों द्वारा नियंत्रण स्थापित करनेकी प्रगति स्वाभाविक है। उस समय 'जन-संगठन' किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूहके हस्तों पर नाचनेवाले बन जाते हैं, निहित स्वार्थ विकसित होने लगते हैं, नीतिनिर्माणमें लोकान्तरिक अनिबन्धित और

सार्थ जनोपेक्षता

कार्पण्यनिरास सहयोग अवश्य हो जाता है। उसका एक अंगारा बन रहना है जिसका समय कुममय सक्रियताकी जरूरत होनेपर उपयोग हो सके।

बाममार्गी पार्टियोंने इन पूँजीपती प्रभावोंको पूरी तरह दूर करनेकी आशा करना एक आदर्शवादी कल्पना है, किन्तु इस परिस्थितिमें समाप्त करनेके लिये जिन संगठनोंका निर्माण हुआ था, उनमें ही इस बातका प्रचार एक गम्भीर समस्या है। यह बात देह यूनिवर्सके सम्बन्धमें ही नहीं बरन अखिल भारतीय शांतिमन्त्रालय तथा भारत-चीन और भारत-सोवियत मित्रता समितियोंके सम्बन्धमें भी सही है। सम्भवतया उनकी वृद्धिके लिये ऐसा अनुकूल अवसर कभी नहीं आया, किन्तु वे सकीर्ण तथा भारतका उचित प्रतिनिधित्व न करनेवाले संगठनों तक ही सीमित हैं।

मिथ्या सिद्धान्तों और गलत आचरणोंके फलस्वरूप मजिद कौशल द्वारा नीति संचालनकी बीमारीकी यहाँ तक अपेक्षा हुई कि साम्यवादी पार्टी भी आश्चर्य इन्ही प्रभावोंमें परेशान है। इसी बीमारीमें संप्रदायवादका परिपोषण होना है। वलकटा कॉंग्रेस (१९४८), मद्रास कॉंग्रेस (१९४४) और पाल्घाट कॉंग्रेस (१९४६) के प्रत्येकके अन्तर्गत वर्तनेमें यह पता चलता है कि भारतीय साम्यवाद शीर्षस्थ गुटबाजीके चरणमें पड़पड़ा हो गया, अभी तक कोई तर्कसंगत राजनैतिक या आर्थिक दृष्टिकोण नहीं अग्रसर जा सका तथा इस आंदोलनकी कोई वृद्धि सम्पत्ति प्रगति न हो सकी। आश्चर्य तो इस बातका है कि इतना सन होते हुए भी पार्टीको सर्वाधिक निश्चिन्ता मदस्फारा समर्थन प्राप्त है।

किन्ती सीमा तक कॉंग्रेस पार्टीकी नीतियों भी इस सत्रणका एक कारण हैं। नेहरू की परराष्ट्रनीति तथा द्वितीय योजनाके अन्तर्गत आचरण देशकी आर्थिक समस्याओंकी आर्थिक ध्यानपूर्वक सुलझानेके प्रयत्नमें प्रशामनिक सन्तुष्टि तथा विरोधी पार्टीके पारस्परिक विमर्शमयिक कारणोंको संतुष्टि कर दिया है। वस्तुतः साम्यवादी नेतृत्व ही अचरक यह निश्चय नहीं कर पाया है कि किस प्रकार आगे बढ़ा जाए ? कॉंग्रेसकी 'सशर्त समर्थन' देनेमें यह भय है कि कहीं अपेक्षाकृत बड़ी पार्टीकी उलझनोंमें डूब कर स्वयं अपनाही आस्तित्व न गिरा जाए। विरोध आकर्षक

दीखता है, किन्तु यह बात सिद्धान्त-विषय है। इस प्रकार यह सिद्धान्तिक अग्रगम्यता उपस्थित हो गया है।

१९५७ के आरम्भ में होनेवाले सामान्य चुनावोंके कारण यह आवश्यक है कि साम्यवादी पार्टी एक तर्कसंगत स्थिति अपना ले। वामपक्षियोंकी ओरसे सभी तरफों परस्पर विरोधी मोर्चे उभरने लगे हैं। कुछ लोग 'वामपक्षीय एमनाकी' बान करते हैं, कुछ 'राष्ट्रीय मंच' पर जोर देते हैं, जब कि कुछ अन्य लोग 'कॉंग्रेस-साम्यवादी गठबंधन' की बान करने लगते हैं। यह सिद्धान्त निरूपण प्रमुखता शीर्षस्थ स्तर पर हो रहा है, क्योंकि साम्यवादी तथा अन्य वामपक्षीय पार्टियोंके कार्यकर्त्ताओंको दरअसल अपने विचार व्यक्त करनेका कभी अवसर ही नहीं दिया जाता।

आजकल भारतके राजनैतिक वातावरणका रूप कैसा है? प्रथम सामान्य चुनावोंका विवेचन करते समय हम देख चुके हैं कि ऊपरी धरातलपर राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता होनेके बावजूद भी देशकी प्रमुख पार्टियोंने राष्ट्रीय स्तर पर एक निश्चित न्यूनतम कार्यक्रम अपनाना स्वीकार किया था। कॉंग्रेस पार्टीकी स्वदेशी और विदेशी नीतियोंके परिणामस्वरूप हम आवश्यक परिवर्तनको अधिनायक शक्ति प्राप्त हुई।

उदाहरणार्थ, आजकल कॉंग्रेस और साम्यवादी पार्टियोंने अधिकृत घोषणामें समझौतेकी काफी गुंजाइश है। विदेशी मामलोंमें साम्यवादी केवल ब्रिटिश राष्ट्रमंडलमें विमुक्त होनेकी तथा समाजवादी म्भारतमें अधिक विकट सफेद स्थापित करनेकी मांग ही पेश कर पाते हैं। स्वदेशी मामलोंमें साम्यवादी द्वितीय योजनाका समर्थन करते हैं, किन्तु उद्योगोंमें अधिक पूंजीविनिवेशित करने पर जोर देने हैं, क्योंकि वे उन्हें पूर्णतया राज्य संचालित बनाना चाहते हैं। जहाँ तक माधन खोजनेका प्रश्न है साम्यवादी उन साधनोंकी शोर म्भग्न करते हैं जिनका अभी तक स्पर्श भी नहीं किया गया है, जैसे विदेशी व्यावसायिक प्रतिष्ठानों और वर्तमान औद्योगिक क्षेत्रोंमें प्रत्यक्ष लाभ। भौमिक समस्या पर दोनोंमें सर्वपरोक्ष है किन्तु आजकल दोनों पार्टियाँ ऐसी मापाक्य प्रयोग कर रही हैं, जिसमें जनताको सामान्यतया बहुत कुछ समझना दिखलाई पड़ती है।

सार्थ ज नी न ए क ता

देशके राजनैतिक जीवनकी इन दोनों प्रमुख प्रवृत्तियोंके अभिसरणका प्रयत्न कांग्रेसमें अभी तक अच्छी तरह जमे हुए प्रमुख व्यापारियोंके प्रतिक्रियावादी प्रतिनिधियों तथा साम्यवादी पार्टीके कट्टरपंथियों द्वारा प्रतिरोधित हो रहा है। उनकी प्रक्रिया पूर्णतया मुस्करा है। प्रतिक्रियावादी, कांग्रेस द्वारा समर्थित नीतिमें भ्रम उत्पन्न करने और उसे साम्यवाद विरोधी रूपमें प्रदर्शित करनेका कोई अवसर नहीं चूकते, कट्टरपंथी आक्रुश्ट नर भेदोंको बम चमककर दिखाने हैं तथा समानताकी अवहेलना करते हैं।

साम्यवादी पार्टी द्वारा स्वतंत्र भारतके परिवर्तनशील वर्ग-घटनधनोंके सुविकरण विवेचन, पूँजीजीवियोंके आतंकिक सुभयोंका लाभ उठाने तथा स्वदेशाभिमानों और राष्ट्रीयतावादी वर्गोंके साथ मजदूरों स्थापनकी सम्भावना खोजनेकी अस्वीकृतिके अंदर कट्टरपंथियोंकी अपेक्षित उत्तोलक मिल जाता है। यह घोषित किया जाता है कि पूँजीजीवियोंमें फूट पड़ी ही नहीं है।

साम्यवादी शक्तिके भी कदाचित्त इसी कारण दर्शन हो जाते हैं कि देशमें जमींदार मौजूद हैं और उनमेंसे अनेकों कांग्रेसमें हैं। मजदूरोंमें निर्धारित पार्टी कार्यक्रमों भी अलपिहित रूपमें कार्यय रक्खा जाता है, यद्यपि अनुभव ने स्पष्ट पहले ही उने अग्रगण्य प्रमाणित कर दिया था। उसका पुनर्व्यवस्थापन शेष है।

व्यवहारमें यह काल अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। आगामी चुनावोंके प्रसंगमें साम्यवादी नेतृत्व कांग्रेस सरकारमें यथामुम्भव परिवर्तन चाहता है। इस सत्यकी प्राप्ति हेतु साम्यवादी पार्टीने, कृपलानी, अरोक मेहता और जयप्रकाशकी प्रजा-समानवादी पार्टीके साथ ही साथ लोहिया की साम्यवादी पार्टीमें भी मिलकर संयुक्त मोर्चा कार्यक्रम करनेकी चर्चा की है। किन्तु प्रजा समाजवादी या समाजवादी पार्टीको वर्तमान कांग्रेसमें किसी भी रूपमें अधिक प्रतिनिधित्व नहीं सम्पन्न जा सकता। वे वर्ग सुधारकी बात मने ही करें, लेकिन साम्प्रदायिक जनसुधारको भी तो इसी प्रकारकी बातें करते हैं। वास्तविकता यह है कि कांग्रेसकी अपेक्षा वे साम्यवादी पार्टीके अधिक विरोधी हैं।

वे नेहरू की विदेश नीति, विशेषतः पर समाजवादी संसार की ओर उनके चुनाव के अधिक विरोधी हैं। उसे भारत में सर्वद्वारा साम्यवाद की प्रगति सहायक समझते हैं। उन्हें यूरोपीय दक्षिण पक्षी समाजवादियों के अनुसर नेहरू आचरण अधिक पसंद आयेगा, जो सीमाव्यवस्था अपनी नीतियों के पुनर्व्यवस्थापन में स्वयं व्यस्त है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि उनमें लिये कांग्रेस के दूर-पक्षियों की अनेक नेहरू अधिक बड़े सकट हैं।

जहाँ तक आर्थिक नीति का सम्बन्ध है, वे द्वितीय योजना की यह कह कर आलोचना करते हैं कि इस अर्थव्यवस्था में सर्वद्वारा के बीच विद्यमान है। विदेशी निहित-स्वाधी और उनके स्थानीय महयोगियों अर्थात् बड़े व्यापारियों के नारा की सम्भावना उन्हें नहीं दिखलाई पड़ती। वे अनेकों प्रकार के तथाकथित सौजन्यिक चुनाव देते हैं, जो समाजवाद की तीव्र प्रगति में सहायता देने के स्थान पर उसे अवरोध करते हैं।

अंत में वे उन विभिन्न 'स्वतंत्र' दलों के प्रति अपना समर्थन प्रदर्शित करते हैं, जो अमेरिकन परराष्ट्र विभाग की नीतियों के प्रेरणा प्राप्त करते हैं तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रतिरोधी अंश के प्रतिस्पर्धी हैं।

अंतर्गोष्ठा, साम्यवादी नेता इन तथाकथित वामपंथी पार्टी के साथ कौंग्रेस विरोधी, संयुक्त मोर्चा स्थापित करने की बात करते हैं। ज्योंही ऐसे चुनाव गठबंधनों का प्रचार होने लगता है, इनको निष्प्रभाव करने के लिये कांग्रेसी नेता प्रजासमाजवादियों के साथ सलाह करने लगते हैं। वे उनके सामने यह दलील पेश करते हैं कि इन दोनों दलों के अंदर 'गांधीवाद' सामान्य रूप में विद्यमान है। कौंग्रेसियों अथवा साम्यवादियों की सुराज्य प्रजासमाजवादियों के लिये उपयोगी राजनीति है। वे सत्ता के इस स्पर्ध में अपने आप को अनिवार्य समझने लगते हैं और लाभकारी गठबंधन स्थापित कर सकते हैं। जहाँ तक कांग्रेसी प्रतिक्रियावादियों का प्रश्न है वे विरोधी शक्तियों के संगठन को रोकने के लिये चिंतित हैं और एतद्ध नाच नाचने के तैयार हैं। किन्तु यह समझना बहुत कठिन है कि साम्यवादी पार्टी किस संवैधानिक लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा करती है।

सार्थ ज नी म प क ता

यदि साम्यवाद, प्रजा-समाजवाद और समाजवादका समुक्त मोर्चा बन गया तो उसकी क्या नीति होगी ? उस समय क्या वे इस बातपर विराम उत्पन्न कर सकेंगे कि कॉंग्रेसकी विदेशी नीति और द्वितीय योजना एक धोखेकी टंठी है ? यदि ऐसा करनेका इरादा नहीं है तो वैयक्तिक सम्कारका नारा किस आधारपर उठाना जा सकता है ? इसके अनिश्चित प्रश्न यह भी हैं कि कॉंग्रेसियों अथवा प्रजामाजवादियों अथवा मोहिन्दके अनुगमियोंमें कौन अधिक समाजवादी है ? क्या वे सधर्पके मिथ्या सिद्धान्तोंका उच्चारण मात्रही समाजवादकी आवश्यक परीक्षा है ?

इस विषयमें अधिक गहरा उतरने पर लोगोंको इस वास्तविकताका पता चलता है कि कॉंग्रेस ही अधिक बड़ी जनसंस्था है और प्रजासमाजवादियों एवं समाजवादियोंकी अपेक्षा कामगारोंका उसे अधिक सम्पर्क प्राप्त है । यह बात प्रामाण्य मोर्चेके साथही साथ युवक संस्थाओं और सांस्कृतिक मोर्चोंके सम्बंधमें भी सही है । इसमें कोई संदेह नहीं कि कॉंग्रेस पूँजीजीवी वर्गके हितोंका प्रतिनिधित्व करती है । तथापि कोई गम्भीर राजनैतिक विचारक इस सम्भावनाकी अपेक्षा नहीं कर सकता कि स्वतंत्र राष्ट्रवादी पूँजीजीवी अव्यक्त भाषायी क्षेत्रोंके मध्यम पूँजीजीवी तथा कुछ बड़े पूँजीजीवी, सामाजिक नवनिर्माणमें महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं । यदि इस बातको मान लिया जाय तो फिर साम्यवादी नेताओंको कॉंग्रेससे भी कम प्रगतिशील शक्तियोंके साथ सहयोग करनेके लिये कौन विवश कर सकता है ?

क्या इसका कारण निम्नलिखित और अविचारपूर्ण अवसरवादिता है जो अपने आपको वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदर्शित करती है ? क्या इसका कारण पूर्वकालीन अपरिष्कृत कहलाता है जो वर्तमान समयमें पूर्ण रूपसे प्रकाशित है ? क्या इसका कारण यह धारणा है कि कॉंग्रेस ईमानदार प्रजासामाजिक विचारधाराके दापरने बाहर है ? अथवा इसका कारण सिर्फ सामान्य भय ही है जो सत्यता गला घोटता है ?

सम्भवतया इसका कारण इन सभी बातोंका सम्मिश्रण है, जिसने साम्यवादी नेताओंके सामने वर्तमान समस्या राखी कर दी है । निन्तु अन्य सभी उल्लेखोंमें अधिक विधान परिपक्वोंमें शक्ति प्रदर्शन पर अत्यधिक बल देनेकी आवश्यकता है, जिसने साम्यवादी पार्टीको ऐसी गलत स्थिति प्रदत्त करने पर विवश कर रखा है ।

किसी समस्याको उसके समय समय देखनेके स्थान पर एकाग्र सचेदणकी यह बीमारी बहुत पुरानी है।

भारत अपने इतिहासके एक अन्योन्य संकटपूर्ण समयके बीचसे गुजर रहा है। गयेष्ट सपन्नना मिल चुकी है, किन्तु यदि वर्तमान परिस्थितिके अनेक स्वीकारात्मक पहलुओंमें समन्वय न हुआ तो यह बट भी हो सकती है। यंत्रण यह तर्क उपस्थित करना, कि प्रगतिमा एकनात्र मांग यही है कि स्वस्थ प्रगतिपथोंमा नेतृत्व करनेवाली सरकारको अधिक तीव्र आलोचनाकी आव, उसी तरहसी विचारधारा जिमने जर्मन साम्यवादियोंको हिटलरसी नबोदेन नाजोवादी शक्तिकी अपेक्षा करनेपर विवश कर दिया, जो वाइमर गणतन्त्रके विनाश हेतु स्रष्टि हो रहा था। वर्तमान समयमें हम हम प्रगतिशील तुलना हम भावनामें कर सकते हैं जिमने ईरानसी द्यूडेह पाठोंको मुमदीक का ऐसे समय त्याग करनेपर विवश कर दिया, जब उन्हें अपने देशवासियोंके समुक्त समर्थनकी आवश्यकता थी।

भारतीय साम्यवादियोंके भूतकालमें इन्हीं विचारोंकी प्रतिध्वनि पाई जाती है। जनसमर्थनकी अपरिधिनी नीति, मुस्लिम लीगी पृथक राष्ट्रीय अविशेषपूर्ण माँगका हम आधार पर समर्थन कि यह माँग राष्ट्रीय आमनिर्णयकी भावनाको प्रतिभासित करती है, इन बात पर धन देना कि शक्ति हस्तांतरण दरअसल हुआ ही नहीं, नेहकी, यदि कुछ नहीं तो हमने हम उनके विषयमें फैले सुधारवादी हमके निवारणार्थ बहुत आलोचना आदि कर्ते उस नीतिके अतर्गत आती हैं, जो आमदक जगती हैं। हाँकि वह यंत्रीक परिस्थितिकी ओर उन्मुख है। किसी परिस्थितिको उसके समर्थन रूपमें अध्ययन करनेके लिये तैयार न होनेके कारण यह महत्वपूर्ण संकट उत्पन्न हुए हैं।

वर्तमान वास्तविकता क्या है? कथिमकी आन्तरिक पतिक्रिया इनकी वलशासी है कि यदि अवसर मिल जाय तो नेहरूके नेतृत्व में शत्रुताओंकी नष्ट कर आते। जो लोग हम परिस्थितिमा मनन करनेके लिये तैयार हैं उनके सामने अनेक समारनाये आती हैं। इस देशकी आत्र भी उस मातृके अंदर गणना की जा सकती है, जो सम्मनवादकी दिशामें होनेवाली सन्न एव लोकतांत्रिक प्रगतिक

सार्ध जनो न एकता

विरोधी है। यह जान चाहे जिस समय यथायक हो सकती है। निर्वाचन कालीन अथवा विधायकों के मित्रताहीन संयुक्त मोर्चे इस बातको नहीं रोक सकते। केवल सुसंगठित और जागृत सार्वजनिक शक्ति ही ऐसा कर सकती है।

यह भी आधिकाधिक स्पष्ट होना आ रहा है कि चाहे अब या कुछ दिनों पीछे साम्यवादी नेतृत्वको इस परिस्थितिका अच्छी तरह सामना करना पड़ेगा। नेहरू और कांग्रेसका समर्थन या विरोध करनेका प्रश्न नहीं है, जैसा कि सामान्यतया समझा जाता है। प्रश्न है उन राष्ट्रीय आंदोलनके समुचित विरोधी दलके रूपमें कार्य करनेका, जो स्वतंत्रता संपर्षकी समीपतया रक्षक तथा अभिभावक और भाग्यनिर्णायकोंकी आत्मा है। प्रतिक्रियावादियोंको इसी स्थितिमें भय है, क्योंकि यह स्थिति पूर्वजाम्हीन दिवालिया नीतियोंकी और प्रतिगमनके विरुद्ध एकमात्र हथ और प्रभावशाली गारंटी है।

संगठित कामपक्षके कार्यकर्त्ताओंकी सदैव यह बलवती इच्छा रही है, ऐसी स्थिति अपनावे। यह ऐसी लगन है जो प्रत्यावर्तन और अशान्तिके समय भी उन्हें साहस और दृढ़ता प्रदान करती है। इस लगनके प्रति नेताओंने विश्वासघात किया है, जनशक्ति प्राप्त करनेके लिये होनेवाले आंदोलनोंको बारबार पथभ्रष्ट किया है तथा संस्थागत कौशलता द्वारा नेतृत्व करने ही हाथमें रक्खा है।

संस्थातिरक्ता हम तथ्यको नहीं छिपा सकती कि कांग्रेस, प्रजा-मोरालिस्ट और लोकद्विवाकी समाजवादी आदि सभी पार्टियोंमें वास्तविक कामपक्षी मौजूद हैं। इन संगठनोंमें प्रतिक्रियावादियोंका अस्तित्व भी इनका ही सही है। ऐसी परिस्थितिमें साम्यवादी पार्टियाँ कार्य सरगार बदलना नहीं है, बरन ऐसे जनसमर्थनका निर्माण करना है जो पार्टी फ्रिस्त्वोंको तोड़ कर विधायकों और विधान सभाओंके बाहर लोगोंमें समाजवादी भावके निर्माणकी प्रेरणा दे सके।

इन कौशलता द्वारा लोकगमा और विधान सभाओंमें सीटें भले ही प्राप्त न हों, किन्तु उसका परिणाम अधिक प्रभावशाली और सुदृढ़ होती होगा अर्थात् सही नीतियोंके प्रति अधिक सामूहिक समर्थन और सार्वजनिक सपर्क सम्भव हो सकेगा। ऐसा सुसंगठित सामूहिक समर्थन, विश्वासघात, विप्लव व्यक्तित्वोंमें अभिभावक रह कर सकल प्रगतिकी निश्चिततथ गारंटी है।

साम्यवादी पार्टीके समुच्च उपस्थित विकल्प भी समझना जरूरी है। क्योंकि जिस समय कांग्रेस पार्टी तीव्र सक्रमणायोन है, उस समय यही एकमात्र शक्तिशाली एवं परिपक्वोन्मुख पार्टी रह जाती है। यह ऐसी शक्ति है जिसका प्रभाव राष्ट्रीय नीति निर्धारणपर अवश्य दिखलाई पड़ेगा। क्योंकि सभ्रम और अस्थिरता पार करके जब यह पूँजीजीवी समस्याकी मध्यस्थता करनेमें समर्थ हो गई है।

जब तक लोकतांत्रिक प्रक्रियाको दूषित नहीं किया जाता जबता उसकी उपेक्षा नहीं होती तब यह मध्यस्थता शक्तिपूर्ण और निर्मोणात्मक बनी रहेगी। यदि साम्यवादी पार्टी तथा अन्य कामगारियोंने जनताकी एकताको पुनर्जी गलतियोंका पुनरावर्तन करके सकटमें डाला अथवा तोत्र परिवर्तनकोस परिस्थितिकी क्षणित विवेचना की, तो हम बलका पूरा डर है कि कहीं राष्ट्रीय आंदोलन प्रतिक्रियाकी राहमें प्रभावहीन न हो जाय।

प्रगति और वामतंत्रिक उन्नतिमें सम्भावनायें चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न दिखलाई पड़ती हों, किन्तु भारतीय परिस्थितिमें यह सकट सदैव विद्यमान रहेगा।

न व क्षि ति ज

आकाश की मौलिक प्रकृति निर्मल है, किन्तु उस और निरंतर देखते रहनेके परिणाम स्वरूप दृष्टि धूमिल हो जाती है और जब आकाश हम प्रकार दूषित दिखलाई पड़ता हो, बुद्धिहीन प्राणी यह नहीं समझ पाते कि हम दोषका कारण उनके मस्तिष्कके अंदर ही विद्यमान है।

— सराव

प्रत्येक देशमें और हर प्रकारके लोगोंमें सिद्ध पुण्य और दूरग्रह हुआ करते हैं। पूर्वकाल और वर्तमानसे शिक्षा ग्रहण करके वे आरंभ तक अनेकित घटनाओंकी भविष्यवालीन प्रक्रियाओंको समझनेके लिये अनुभव प्रस्तुत करते हैं। ऐसे अनुमान और अध्ययनके लिये भारत एक उपयोगी क्षेत्र है। सम्भवतया समारमें किसी अन्य देशके निवासियोंने अपने आपने इतनी आश्चर्यजनक परिस्थितिमें नहीं पाया होगा। और जब विश्वकी घटनाओंका निर्माण करनेवाली शक्तियोंके समुल्ल उपस्थित तत्कालीन स्वरूपमें उसकी तुलना की जाय तो यह बात अधिक स्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

सुख राज्य अमेरिकामें जागरूक व्यक्ति मेसार्थिके अनुयायियोंकी दी जानेवाली जानकारीसे प्रभावित हो सकते हैं, प्रजातांत्रिक विचारोंवाली जनता परराष्ट्र विभागके अंतर्गत राष्ट्रीय व्यवहारोंने स्थापित हो सकती है, किन्तु उन लोगोंने अब ऐसे धर्मोंका कारण खोजना आरम्भ कर दिया है। यदि समृद्धि उनकी चेतना कुटिल कर देती है, अतः नारा करनेमें समर्थ नीतियोंको निष्प्रभाव करनेके प्रयत्नमें उन्हें नपुंसक बन देती है, तो उनमें ऐसे समझदार लोग भी हैं, जो यह जानते हैं कि आगे या पीछे साथ सामने आ ही जायगा। प्रतिदिन यह आवरण बुरा होते जा रहे हैं। शीतयुद्धकी नीतियों उन्हें लोगों पर प्रभावित हो रही है, जिन्होंने उन्हें आरम्भ किया था। ऐसे वातावरणमें मैकलिन डिलानो रजमेन्टके विचार अधिक सुदृढ़ और तीव्र होकर पुनः विजयी हो सकेंगे।

राजद्वियोंकी अंतरराष्ट्रीय टगाई द्वारा भ्रष्ट और अपचरित भेद विवेक अतलातिक महामागरके उस पार रहनेवाले अपने मातृदेशके इशारों पर नाबने लगा है। उसका

साम्राज्य सजुचिन हो रहा है और यद्वा-कदा उसका छोटा या बड़ा टुकड़ा 'साम्राज्यवादी' समवाय कि प्रवर सामीप्य द्वारा हल्य जाता है। स्वदेश में लोकतंत्र और उपनिवेशोंमें नृशंस निरकुसताके उपदेश अब उन्हें ग्रहणा नहीं डे पाते हैं। ब्रिटेन चांमियोंको स्वतृहद्वीप पर चांमिस लौटना ही चाहिये। तभी उन्हें इस बालकी शिदा मिल सकेगी कि अपनी भूमि पर दैमे रहा जाता है।

जदों तक फ्रांसका प्रश्न है यह परिवर्तन आरम्भ हो गया है। आनकृत अग्रिकाके अंदर हम इस 'महा शक्ति' द्वारा अपना शृंगार कायम रखनेके अनेम वन्मान प्रयत्न देख रहे हैं। किन्तु उस बहुमूल्य प्रदेशवाली मजदूरीने अब यह अच्युती तरह समझ लिया है कि यह साज शृंगार, उनके अनेक स्वार्थोंकी पूर्तिके मार्गकी सिंकि बाधक भृल्लाये हो हैं। सपूर्ण रकावटें दूर होनी जा रही हैं। वास्तविक और स्थायी मार्गकी उद्घोषणा करनेवाली एक नवीन शक्तिपुक्त बाणी सुनाई पड रही है।

जर्मनी और जापानने अपनी दैत्याकार औद्योगिक शक्ति सरक्षित रखर, मूल्यवान मैनिज दुसाइसके परिणामस्वरूप प्राप्त गुणोंको पूर लिया है। उनकी अनेकों समस्याये हैं, किन्तु इस उनके पास ही है। वस्तुतः पूर्व और पश्चिमके इन शास्त्रागारोंको अब अपनी अगतिके लिये शक्ति पर आश्रित रहना पक्ता है। उनका भविष्य अब साम्राज्यवादी बीरालोंने नहीं, वरन् अंतराष्ट्रीय तनाव और विदेशी हस्त-क्षेपके तर्कों द्वारा आन्ध्रयदिन है।

नवोदित चीन आशाका भारी साजन है। इन प्राचीन पुर्षोंने अवरिभिन विषमताओंने सपर्य किया है, किन्तु अब एक विशाल देशको आधुनिक औद्योगिक राष्ट्रोंमें परिवर्तित करनेके लिये दस्तकित होकर प्रयत्न कर रहे हैं। १९६२ तक आर्यिक उन्नतिमें वे शेष एशियासे आगे निकल चुकेंगे। वे ऐसा करनेमें समर्थ हैं, क्योंकि उन्होंने मनुष्य निर्मिन दुखों और सचट्यों पर विजय पाने योग्य आयुध खोज लिये हैं। कोई ह्मबड, कोई भूल, अब उनकी इस अगतिसे नहीं रोक सकती।

अपने समाजको स्थानितवादी तरीके के दोषोंसे मुक्त करनेके परचात सोवियत जनता की प्रगति अदेराहृत अधिक निर्णायक होगी। हम तरीके ने उनके तथा पूर्वी यूरोपमें उनमे सम्बद्ध लोगोंके जीवनको व्याकृष्ट कर रहा है। इस निरुक्ति पर विजय पानेके

न व क्षि ति ज

लिये समय और साहस अपेक्षित है। कार्य भारी है और मार्गमें अनेक कठिनाइयों भी हैं।

इस सक्रमणमालीन निर्णायक समयमें जन्म लेकर तथा ऐसे भविष्यमें जो अनेकों समुन्नत लोगोंका भूतकाल हो, अपनी विलम्बित यात्रा प्रारम्भ करते समय स्वतंत्र भारत इन समस्त सबेसों और अनुभवोंका आयात सहाता है। एक समय था जब भारतने सिंधु तथा उसकी सहायक नदियोंके दृष्ट्यार्थ सभ्यताकी उन्नतिका नेतृत्व किया था। आजकल वह दूसरे देशोंमें ग्रहण करता है और प्रतियोगिता करनेमें दूसरे व्यक्तियोंके अनुभवको निर्माणमय रूपमें विकसित करता है।

इस प्रक्रियाका भारतके निरुद्ध पुरुष और भविष्य दृष्ट अपने अपने दृष्टिकोणके अनुसार अर्थ निकालते हैं। हमें तो सर्वोत्तम विवेकपूर्ण एवं सार पार्थित अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

भारत गोबरयुगसे आधुनिक युगमें पदार्पण कर रहा है। ऐसे समय अनेक मूषों और हडियों, चारण्यों और आदतोंमें क्रांतिमयी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। किन्तु यदि अनुभवोंका वृद्ध उपयोग हो, तो यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि दूसरे राष्ट्रोंके सनातन बलिदान विये बिना ही यह सक्रमण हीनताके साथ संपादित हो सकेगा। राष्ट्रोंके अनुरूप बलिदानोंकी भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह सत्य है कि वर्तमान पीढ़ीको कठिन भ्रम करना पड़ रहा है, किन्तु उन्हें यह तो मान्य ही है कि यह प्रयत्न ऐसे समाजके निर्माणसे समुक्त है, जो परिचित पूँजीवादी जगलमें पूर्णतया भिन्न होगा। वर्तमान युगका यही प्रबल तथ्य है, एक ऐसा तथ्य जो समस्त दृष्टिकोण और प्रक्रियाओंका रूप निर्धारित करेगा।

आज इन देशोंके अंदर गभीर भाषावी तनाव हो सकते हैं। कलउत्तर और दक्षिणके बीचमें अंतर पड़ सकते हैं। परसों देशकी स्वतंत्रता और सार्वभौमताके विरुद्ध अनेक अंतर्राष्ट्रीय पट्टेयोंकी रचना हो सकती है। इसमें भी अधिक शोचनीय घटनायें सम्भव हैं, फिर भी यह निश्चित है कि वर्तमान सभ्रम और अनिश्चितता उसी प्रकार समाप्त हो जायगी जिस प्रकार राजकी समाप्ति पर दिवका आगमन होता

है। हम ऐसे युगमें निवास कर रहे हैं जिनमें प्रत्येक क्षेत्रके अंदर स्तंभित अराजकताके ऊपर विज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों के मुहूर्तपूर्वक विजयी होती जा रही हैं।

हम देख चुके हैं कि भारतकी स्वदेशी और विदेशी दोनों नीतियोंकी अकृति स्वतंत्र राष्ट्रीयताके प्रथम दशकमें निम्न प्रकार वर्तमान युगीन तथ्योंद्वारा निर्धारित हुई है। जैसे जैसे अधिकाधिक और राजनैतिक क्षेत्रके अंतर विगलित होते जायेंगे, वैसे वैसे यह निर्माणत्मक क्रिया अधिकाधिक वेग और ओज पूर्ण होती जायगी। इस तरहका सकोच पूर्वकालीन औपनिवेशिक समारम्भमें अधिक दिखलाई पड़ना है, जहाँ कुत्तोंकी तरहका भगदना अब निरर्थक प्रतीत होता है तथा उसकी प्रभावकारी तंगमें प्रचलित करने वाला कोई भारी मुख्यवस्थित दल नहीं है। इसके अनिश्चित यदि ऐसा कोई प्रयत्न हुआ तो सम्राजवादी सत्ताकी प्राविधिक प्रगति तथा उनकी अक्रीक एवं एशियाकी सहृदयता देनेकी सामर्थ्य इस दर्शनके प्रचलनकी सभावनाको विनष्ट कर देगी। भारत एक ऐसे मार्गपर चलनेका प्रयत्न कर रहा है, जिसे स्वयं उसके तथा अन्य देशों द्वारा अनुयुक्त पूर्वकालीन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं द्वारा अवरोधहीन किया गया है।

भारतकी परंपराहीन एवं व्यवस्थित जीवन सपनकी दिशामें अर्धीत समाजवादकी ओर प्रगति, शान्तिपूर्ण और मुक्त हो सकती है। प्रत्येक नया दिन बीतनेके साथ साथ अनेक रूपोंमें यह आधार निर्मित हो रहा है। एक ओर सम्राजवादी उपायोक्त विस्तार किया जा रहा है और दूसरी ओर जनताकी बढ़ती हुई मुन्दना उन्हें अधिक विलु रूपमें वायान्वित करनेकी स्वीकृति प्रदान करती है। यदि कुछ छोटे अल्पसंख्यक इस मार्गमें रुकावटें डालनेका प्रयत्न करते हैं, तो केवल अस्थायी विचलन उपस्थित कर सकते हैं। यदि यही अल्पसंख्यक इस विचलनको स्थायी बनाना चाहें तो उन्हें स्वयं अपने मूल्य पर यह समझानेके लिये बाधित होना पड़ेगा कि अनेकदाकी अधिक समय तक दूषित नहीं किया जा सकता।

अनेक प्रकारसे सम्राजवादकी ओर उन्मुख हम नये संक्रमणके रहस्योंमें होनेवाले परीक्षणोंका पथ प्रदर्शन भारत करेगा, क्योंकि इसी दिशामें अप्रसर होनेवाले, हिंदी-शिया, उर्मी, मित्र आदि नवोदित राष्ट्रोंकी अनेका वह मयेष्ट आने बग हुआ है।

न च क्षितिज

यह निश्चित है कि राजनीति और अर्थशास्त्रमें अद्वितीय प्रगति होगी । उन्हें समझनेके लिये अधिक गंभीर और रचनात्मक ज्ञान अपेक्षित है क्योंकि सामान्य तरीकोंमें इन्हें समझना अत्यंत कठिन है, जिन्हें इस कथनमें संदेह हो उन्हें अपनी सृष्टि जाग्रत करके देखना चाहिये कि भारत, हिन्दोशिया, अरबी और मिथ आदि देशोंमें स्वतंत्रताके प्रारम्भिक वर्षोंके और इस प्रकारके अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद हैं ।

अपने प्रदेशोंके समान भारत भी नवीन अनुभवोंका प्रकाश, नवीन समस्याओंका नाव और नवीन निष्कर्ष खोजनेका गर्व अनुभव करेगा । उसे आरम्भिक औद्योगिक क्रांतिके मर्मभेदी अनुभवोंमें पुनः गुजरनेकी आवश्यकता नहीं है, उसे दूसरोंकी भूलें डुहराने की भी जरूरत नहीं है । वह तो वास्तविक विद्युत बेगीम प्रगतिकी ओर बच सकता है क्योंकि उसने विश्व-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत आणविक युगमें, अपनी यात्राका भीमण्डल मिया है ।

इसका अर्थ समझनेके लिये आपको यही देखना पड़ेगा कि अग्नि, पवन, तथा नवीन धातुकी खोजने मानवजातिकी कद्दानीचे नाटकीय दृग्से किस प्रकार परिवर्तित कर जाता । फिर आणविक शक्ति और उसके प्रयोगोंका आघात कितना अधिक निर्णायक सिद्ध हो सकता है ? प्रथम बार विज्ञानने हमें मस्त्वस्त, पर्वत और समुद्रको परिवर्तित करनेके लिये कामीमित शक्ति प्रदान की है । यह ऐसी शक्ति है जो अनेक शताब्दियों तक पानीवी नन्ही नन्ही बूँदोंमें अव्यक्त अवस्थामें पड़ी थी । इस तरह नवीन प्रयत्नोंकी सीमायें अब बड़े-बड़े विस्तृत हो गई हैं । अब और तो और, क्षुब्धमें स्थित ग्रहों तक तथा उसमें भी आगे बढ़ेवा जा सकता है ।

इन सब बातोंका क्या अर्थ होता है, इसे धतलाना अभी कठिन है । तथापि एक परिणाम निश्चित है । इस तरहके विकासको सम्भावनाओंकी चौकसी तथा रक्षा एक अन्यावरणक कर्तव्य हो गया है । एकमात्र वैज्ञानिक सामाजिक संगठन ही यह कार्य निष्पादन कर सकते हैं । मानवजातीय विशाल साधन्यके बलिदान बिना यह बैसे प्राप्त हो सकता है । राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नेताओंका यही प्रमुख कर्तव्य हो गया है ।

इतिहास इस बातका साक्षी है कि ज्यों ज्यों हमारे पूर्वज विराट प्रहरी पर नियंत्रण प्राप्त करते गये, उनका आश्चर्यजनक रूपमें अपने पारस्परिक सम्बन्धों पर से नियंत्रण हटता गया। वे विराट प्रचुर और बहुधा अमूर्त शक्तियोंके विपश्चिन् आखेट करते गये जिन्होंने उन्हें रक्तिम जगहों, बर्ग सघनों, बर्ण एवं सामयिक कलाओं तथा अन्तराष्ट्रीय युद्धोंमें धनी बना दिया।

विष्णु इतिहास इस वर्तमान प्रश्न तथ्यको भी आलेखित करेगा कि समस्त मानव जातिका महान्तम प्रयत्न मध्य चीनकी राजतन्त्रीमें मिश्रको कलात्मिक विध्वंसने रखा करना रहा है।

इस जीवित अनुभवने शिक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् क्या यह सम्भव है कि भारत विवेक और शक्तिपूर्वक समाजकी उब अनेक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त कर सके जिन्होंने उसे अन्त तक निर्धनता, भूख और अज्ञानमें संदल कर रखा था।

इस प्रश्नका उत्तर हमारे पास है। हम चाहें तो इस दुनियामें आग लगा कर उसे भस्मीभूत कर सकते हैं, अथवा उसके ऊपर एक ऐसे गरीब भवनका निर्माण कर सकते हैं जैसा भूतकालमें भी सम्भव हो चुका है।

सूची

अ

- अवादान - ३५, ६१
 अबुल्ला शेख मोहम्मद - ८६, ६१
 अकगानिस्तान - १२४, १२७
 अमीका - १०, ३२, ३८, ८८, ८६, ६१,
 ११३, ११४, १२१, १२२,
 १२३, १२५, १२६, १२७,
 १२८, १३०, १६६, १८८, १८६,
 १६१, १६३
 अहमदाबादके मिल मालिक - ८६, २०३
 अलबानिया - ५३
 अलजीरिया - ८८, १६८
 अखिलभारतीय शक्तिमन्मेलन - २२६
 अखिलभारतीय रेलवे मेन केडरेशन -
 २१८
 अमेरिजन प्रतिनिधि - ६०
 आय - १२५, १२६, १३० प्रदेशीय-
 सेल १२५, १२६
 अधर्ववेद - ६३
 अतलांतिक संधि - ६०
 अवाकी अधिवेशन - ११७, ११८,
 ११६, २०७
 अइनीमवी समानान्तर - ३८, ८०

आ

- आर्नेम इड - १६७
 आज़ - १००, ११७, ११६, २२१,
 २२७, २२८
 -के चुनाव - ११७, ११८,
 आइसन हावर - राष्ट्रपति - ६२, १०६,
 १२८
 आसक्तभली अदण्डा - ७६, २१६
 आणविक तथ्य - ८०, ८१ १८५-७,
 १६४-६, २४१
 आणविक शक्ति सम्मेलन - १२४
 आणविक शस्त्र - १८७, १६३
 आजाद अमुल कस्तम - ८२
 आजाद हिन्द फौज
 (इंडियन नेशनल आर्मी, } ५, १६६

इ

- इटली - १३
 इकवाल मोहम्मद - २०
 इरोनोमिड मोरलो आरु वाम्बे - १६६
 ई
 ईस्टने इरोनोमिस्ट - ७६
 ईडन, सर एंथोनी - १०, १२५
 ईरान - ३५, ६१, ६२, ८८
 ईराक - १२१

उद्घन वम - ४७, ६१, १८७

उत्तरप्रदेश - ७७, ८७

उड़ीसा - २६

उत्पादनमें वृद्धि - १५६

ए

एशिया १०, ३०, ३१, ३२, ३३,

३५, ३८, ४२, ४३, ५८, ५९,

६१, ६३, ६६, ८८, ११३,

११४, १२१, १२२, १२३,

१२५, १२७, १८८, १८९, १९३

एशियायी - अशोकन सम्मेलन - ११३,

१२१,

एशियन रिलेशन कौमेस, १६४७ - २६

एटली प्रीमेट - ८, १०, ५५

एकीकरण योजना - २६, (विलयन

योजना देखिये)

औ

औषधियों - १५६

औद्योगिक कृषा और विनियोजन

निगम - २१०

औपनिवेशिक स्वशासन - ४०

औद्योगिक नीति विषयक प्रस्ताव

(१६४८) - ६७, (१६४९) -

१४६

अंबर चरखा - १५५

अराधान निर्वाहनिधि - ८७

अत्रेज अफगर - २६

क

केबिनेट मिशन - ८०

कंबोडिया - १२५, १६७

कपडा - १५४, १५५

कोझ कोला - ६८

कोलम्बो सम्मेलन - ११०,

कमिशनर्य - ७६

कामन वेल्थ ब्रिटिश - (राष्ट्र मंडल)

२४, ३०, ३४, ४२, ५५, ६८,

१०७, १२६, १८१, २०६

कौमिल पार्टी - (राष्ट्रीय सभा) ४, ५, ६,

८, ९, ११, १५, २०, २१, २२,

२३, २४, २५, ३८, ४४, ४६, ४७,

६६, ६९, ७७, ८३, ८४, ८५, ८६,

८७, ९९, १०२, ११७

दलीय सपर्य - ४६, ५१, ५८, ६६,

७०, ७७, ७८, ८१, ८४, ८६,

११६, १२१, १८८, २१२, २३४,

२३५

कोरप्टिड कनराड - १८

क्रिया-सर स्टेफर्ड - ५

करीर - ३

कणनोविच - १७०

सूची

बाह्य अर. सी. - १८

अनिदान - १८३

आरुह्य - १३५

आरोह्य - १०८

आर्य - ४५

आर्य अधिवेशन - ४८

आर्य - १३, १८, १९, २०, ४५,

६२, ८१, ८६, ९०, १०६, २०१

युद्धी क्षीम - ४४

विमान निर्मात्री परिषद् - ८१, ८६, १०८

आर्य अधिवेशन - १२१

केनिया - ८८, ११४, १६८, १८८

किदवई एफोअरमद - ६४, ७७, ८२

११५, ११६

क्रिस्टोफर - ६८

कोरिया - ५६ - ५८, ६३, ८०, ८८,

१०३

कोरियाली से. - १२१

केमलिन - ३३, ६२, ११६ (सोपेयन

सुन देखिये)

हृषिकेशी से. सी. - ६४, ७७, २३१

हृषिकेश मजदुर प्रजा पार्टी - २२०

कृष्ण भवन सी. के. - १०५

कृष्णनाचारी टी. टी. - ११५

क्यूनिनटान - ३३

कुशाण - ६४

विमान मजदुर पार्टी - ७६

कल्याणकारी राज्य - ८५

(अवांछित अधिवेशन और समाजवादी
क्षेत्र देखिये).

ख

खान अकबर - ६२

खान लियाक़त अली - ४६

खान अयूब - १०४

पुरचेंच एन - ११५ - २५, १२७,

१७०-७१, १७४, १६३

ग

गाची मो. क - ६, १६, १७, ४०,

४६-४८, ८३, २००. २१५,

२२५, २२६

गाची इरविन समझौता - ४८

गदवाली सेनिट - ४८

गुलब नगर - १२६

गोसा - १०६, २१६, २२१

गोदरेज - ६८

गोदरेज - ६७

ग्राहमपैक - ८१, ८६

गुजरात - १३, ६५, ६६

गुन - ६४

घ

घोष अरविंद - ४७

च

चंदन - १०८

च्यारुई लोक - ३३, ३८, ४२, ४३,

५५, १६८, १८८
चीन-४, ३०-३२, ३७, ४२-
४३, ५३, ५६, ५७, ५८, ६१,
६३, ८०, १११, ११३, ११५,
११६, १२१, १६२, २२२-
२२५, २३८
-हानी यात्रा-२२३
चू एन लाई-१११, ११२, १२६,
१६८
चर्चित विनस्टन-६, १०, २७, २८,
२२५
चतुर्थी शीर्षक सम्मेलन-१२४
चक्रवर्ती-१६३
चितरंजन रेल इजन कारखाना-१३१,
१५६

ज

जालन-२१०
जापान-५, ४१, ८८, १२५, २३८,
-शांति संधि-८०
जम्मू-१४
जनसंघ-१५, २४, ८४, २३१
जारडम-१७४
लेबोस्तेवाकिया-५३
भिनेवा सम्मेलन-१०६-१११
जर्मनी-४, २३८; साम्यवादी-२३४
जिजा मो० य०-८
जोर्डन-१२६

जोशी पी० सी०-१०, २२६
जुनागढ़-१७, २०१
जनयुद्ध (जन संग्राम)-७, २१८
(भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी देखिये)
जहीर, राजा-६२
जमींदारी-५१, ८४, ८५, ८७,
१२०, १२१, २०१

ट

टंकन, पुद्गोत्तमदास-५८, ७८, ८२,
२१६
टाय-६७-६८, १००, १३८, १४०
१४४, २११ (भाषावाद और
कांग्रेसदल देखिये)
टीयो जोसेफ मोज-४१, ११८, १६६,
१७२
ट्रान्समोर कोचीन-२६, ८५
टूमेन हेरी एस-३५, ५७, ६३, ६५,
८०

ट्यूरेड पार्टी-२३४

ट्यूनीशिया-८८

ड

डगुर, रवीन्द्र नाथ-१३

डू

डालमिया-६७

ड्यू-१०६

डूनेस, जान फ्रान्स-१६०

डच शासन-५६

डामन-१०६

सूची



तेल कंपनी - १०१

तटस्थता - ३७, ५१, ५८

तामिल - १३, ६५, ६६ (भाषावाद-
देखिये)

तिरुवन - ५६, ६०, ६४, १११, ११३

तिलक बा० गो० - ४७, २२४

तोगिलयदी - १७१

थ

थाईलैंड - २७, १२१

द

दिभाषावाद - १३३, १३५

दादरा - १०६

देसाई मूलाभाई - ७

देरासुख विलासि - १३५

दक्षिण अफ्रीका - ८८

ध

धर आयोत - १३७, १३८

न

नौकरियों - १४५, १४६, १४८

नागाभूमि - ६०

नागासाक्षी - ३३

नागपुर अधिवेशन - १३७

नारायण जयप्रकाश - २१, ७६, २१६,
२२०, २३१

नासिक अधिवेशन - ५८

नसीर गमाल - ८८, १५८

नाटो - ८८, १६८ (अन्तराष्ट्रिय संधि
देखिये)

नवानगर जाम साहब - २५

नाजिमुद्दीन - ६१

नमोव एम० - ८८

नेहरू जवाहरलाल - ५, ८, १६, २६,
३०, ३१, ३६, ३७, ३८, ४३,
४७, ५१, ५५, ६०, ६३, ६४,
६७, ६८, ७४, ७६, ७८, ८०,
८२, ८४, ८७, ८८, १००-
१०२, १०४, १०७, ११३,
११५, ११६, १२२, १२४, १६६,
१६७, १६८, १८१, १८८, १८९,
२१६, २१७, २३४,

नोबिल फ्रांज पानेवाले वैज्ञानिक - १२४

नरेश-राजा - ८४

नीरोनिक विद्रोह - ८, १६६

प

पूर्वी यूरोप - ३२, ४१

प्रश्न मद्रासागर - ४३

पिने थामस - २२४

पाकिस्तान - ११, १४, १५, १८,
१९, २७, ४२, ४५, ४६, ५६,
६४, ८१, ८६, ९०, १०४-
१०८, ११०, १११, १२५,
१२६, १२८

सयुक्त राज्यमे संधि - १०४, १०७,

मैनिक पडयेज-१०४
 पूर्व पश्चिम का तनाव-१०६, १०७
 पूर्वी पाकिस्तान में चुनाव-११०
 पंचशत-११२, १२२, १२४, १८२,
 १८३, १६२-१६७
 पंडित-विजयलक्ष्मी-१५, ३५
 पनीकर के० एम० ३१
 पटेल बल्लभभाई-२५, २७, २८, ३६,
 ४७, ४६, ५०, ५१, ५५, ५८,
 ६०, ६६, ७०, ७५, २०१
 पटवर्धन अच्युत-२१
 पैकिंग-४२, ५६, ६१ (चीन देखिये)
 पेप्सु-२६ (भाषावाद देखिये)
 पेराम्पूर सवारी डिप्टा कारखाना-१३१
 प्लासीकी लड़ाई-३
 पोलैंड-५३
 पाडीचेरी-१०८
 पुर्नगल-भारतीय वस्तियों-१०६
 पोम्डम सम्मेलन-१२४
 प्रजापार्टी-७७, २२१
 प्रजा सोशलिस्ट (समाजवादी)-२१७-
 २२१, २३१, २३३
 प्रकाशम टी. - ७७
 प्रवदा-समादरीय लेख-११६
 पंजाब-१५, १६, १००, १०६
 पूर्वी पंजाब-२६, (भाषावाद देखिये)

पश्चिमी एशिया-४२ (मध्य पूर्व,
 देखिये)
 पश्चिमी योस-४१, ६०.
 पश्चिमी जर्मनी-६०, ८० (जर्मनी
 देखिये)
 पूर्ण स्वराज्य-४०

क

कैज, कैज अइमद-६२
 कनिस्ट वाद-४, ३२
 फारुह सुल्तान-८८
 फारगोसा-६१
 फोम-१३, ३७, ८८, २३८
 भारतीय वस्तियों-१०८
 किलियाइन-१२१

ख

खिटेज-१२, १६, २७, ३२, ३०७
 ४३, ६६, ८६, २३७
 खिडियामी (अमेन)-४, ६५, ६६,
 २२२-२२५
 खिडिया व्यवसाय-२०२
 खिटेजकी मजदूर पार्टी-४३
 (कामन वेल्थ-राष्ट्र मंडल देखिये)
 खुलानिन, निकोलाई-११५, १२४,
 १२५, १२७.
 खलगेरिया-५३
 खगदद खान-१२२, १२६,

सूची

बर्मा (ब्रह्मा) — ४, ४२, ३६, १२४
 १६०, २४०,
 बाङ्गु सम्मेलन — १२१-१२४, १२७,
 बेङ्गल — ४३
 बेङ्गल — १३, १६, १०७
 बरार — २६
 बैरिया, लेवेरेन्टी — १६६
 बिहार — १३, २६, ६५, १००
 बिलासपुर — १३,
 बिल्हा — ७६, ६६, ६७, ६८,
 १००, ११५, १४४
 बोगर सम्मेलन — ११३
 बम्बई — २६, ६६,
 बम्बई नगर — ४५, ११०, १३४
 — १३६,
 बोम-मुभायय — ५, ४७, ४८
 बिक्रीकर — १५७

अ

भाकरा-नागल — १३१
 भावे, विनोद — १६४
 भिलई इलाहा कारखाना — १२८
 भूदान — १६४
 भोपाल नवाब — १८
 भूपत — ८४
 भारतीय कम्युनिस्ट (साम्यवादी) पार्टी
 ७-११, १६, २१-२२, २६-
 २७, २८, ३०, ३५, ३८, ४७,

४६, ५१, ६०, ६८, ७६, ८३,
 ८५, ८६, ११७-११८, १३७,
 १७५, १७६, २१०, २१६,
 २१८, २२१-२३६

भारतीय धार्मिक संघ — ६६-६६

भारतीय स्थायी स्थिति — ६३-६६,

भारतीय संघटन कालीन अग्र —

— महायुद्ध नियम — ६५

भारत-चीन मित्रता समिति — २२६,

भारतीय गणतंत्र (गणराज्य) — ३८,

४०, ४३,

भारतीय इलाहा प्रतिनिधि मंडल — १२८

भारत पाकिस्तान समझौता — ४६

भारत सोवियत मित्रता समिति — २२६

भाषावाद — ६४-१००, १३७-१४०

२३६, (कामेश पाटी वलीप सचय
 भी देखिये)

भूमध्य सागरीय — ८८

भोजन छोड़ो — १६१

भारत छोड़ो नारा — ५

अ

मिथ — ८७, १२५, १२६, १३०,

१५८, १६८, १६०, २४०

मुद्रास्फोट — १५६

मेकड्यार्थर सी. — ५६, ६३, ८०

मेक नाटन — ४५

मध्य भारत — २६

मद्रास - २६
 महालखोलिम की सी. - ११६, १३२,
 १४०, १४३, १५२, १५७
 माहे - १०८
 मजदूर - १०३
 मलाया - १६८, १८८
 मलयाली - ६५, १००, (भाषावाद
 देखिये)
 मार्शल योजना - ४१, ६०
 मालिनखोव की - ६१, ११५, १२५
 मचूरिया - ५८
 माउ-स्ले-गुग - ३१, २२७
 मराठ - १३, ६५, ६६, (भाषावाद
 देखिये)
 मार्टिन विगले - ३०
 मारवाड़ी व्यापारी - ६७, ६८
 मिश्रियन - १६६, १७०
 मौय - ६४
 मध्यपूर्व - ६६, ८८
 मेहता अशोक - ७६, २१६, २२०,
 २३१
 मुसदीक मोहम्मद - ६२, ६१, २३४
 मैडेस ग्राम की - १११
 मिल ले. एस. - २६४
 मोहम्मद अली - ६१, ११०, १२१
 मोलोनोव - १७०
 मोकटन वास्टर - २७

मोरको - ६१
 माउंटब्रेटन लार्ड हदस - ६, १०
 मुशी क. मा. - ४८
 मुमलनन - १६, १८
 मुस्लिम लीग - ८, ६, १४, ११०,
 २००, २३४
 मेसूर - २६
 मजदूर दल (ब्रिटिश) - ५५
 य
 योरोप - ४२
 योजना प्रथम पंचवर्षीय - ५४, ७३ -
 ७६, ८७, १३१ - १३२, १५७
 योजना आयोग प्रारम्भ में कार्यक्रम - ६६,
 ७१, ७३
 योजना द्वितीय पंचवर्षीय - ११६,
 १३२, १४० - १६६
 योजनाका प्रारूप - १४३, १४५,
 १४६, १५०, १५२
 योजना के लिये वित्त - १५२, १५३
 योजना का अनुक्रम - १६५
 योजना विप्लव टाटा - ७१, ७५
 बालू नदी ५८
 बलाम - १०८
 यूगोस्लेविया - १६६, १७२ (टोटी भी
 देखिये)
 र
 राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम -
 २१०

सूची

राष्ट्रीय योजना समिति - ४८
 रियासतें - १३, १४, १७, २५, २६,
 २०१
 रेडियो सक्रियता - १८५, १८६, १८५
 (आणविक तथ्य देखिये)
 रेल - १५०, १५१
 राजस्थान - १०६ (भाषावाद देखिये)
 राजेश्वरराय - ६०
 राजराज्य - ५०
 रामायण - ६६
 रणदिवे की टी. - १०, २१, ६०
 रण एन जी - ७७
 रजाकार - २६
 रजमरा-ईरानके प्रधान मंत्री - ६१
 रो-मिंगमेन - १८८
 रुजवेल्ट एक. की - २३७
 रुसो - २२४
 राय की सी. १३६
 राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ - १५, २४, ८४
 रुमानिया - ५३
 रुस - ३२ (सोवियत संघ देखिये)
 राज्य यूजीवाद - २०६-२०८
 (सार्वजनिक क्षेत्र देखिये)
 राज्य पुनर्गठन आयोग - १००, १३२-
 १३६, २१६
 राष्ट्रसंघ - २६, ३१, ५६, ५७, ६१,
 ८८५, १०८
 राष्ट्रसंघ सुरक्षा परिषद - ८१

ल

लालबहादूर शास्त्री - ४७, २२४
 लेनियन-प्रासीसी प्रधान मंत्री - १११
 लेनिन की आई. - ४६, १७३, १७४,
 १७६, १८०, १८३
 लीवर नदर - ६८
 ल्हासा - ५६
 लिमये, मधु - २२०
 लोहिया - रा. म. - २१६, २२०,
 २३१
 लखनऊ अधिवेशन कांग्रेस - ४८
 लोकतांत्रिक गवेषणदल - २२०
 लाम बाटने की योजना - ५३

व

विलयन योजना - २०१
 (एकीकरण योजना देखिये)
 विधान निर्मात्री परिषद - २४
 विदेशी लागत - ७०
 कामगारी भारतीय - ४१, ४६, ८५,
 ११६, २१७, २१६
 वन महोत्सव - १५८,
 विदर्भ - १३३, १३४
 वित्तनाय - ४२, ६१, १०६, १११,
 (हिंदीनी देखिये)
 विष्णुवत्स पर्वत गठल्ला - ६६
 विवेकानन्द - ६६
 वाइसर मण्डल - २३४

विमर्श - ६८

विश्व युद्ध द्वितीय - ४१, १३

विपुल रेखा - ५६

स

सामान्य चुनाव ६४, ६६, ८२-८७

- परिणाम - ८६

स्वतंत्र - ८४

सार्व भूमिम्मा - १४

सुरक्षाबंदी वन्दन - २२

सार्वजनिक क्षेत्र - १०१, ११६, १२२,

१६४, २०६ - २०६

संपूर्णानंद - २१६

सात बाइन - ६४

सच्चापद्ध - ३

सरह - २३७

सऊदी अरब - १२५ - १२६, १६७

साँपटू - २६, ८४

सीडो - १२२

सिंदरी उर्वरक कारखाना - १५८

मिषानिया - ६७

समाजवादी ७, २७, ४१, ४६, ७८,

८६, २१८ (प्रजा पार्टी देखिये)

समाजवादी दंग का समाज - ११७,

१२० (कॉंग्रेसके दल, अवादी

अधिवेशन)

सार्वजनिक क्षेत्र और राज्य पूंजीवाद भी

देखिये)

सामाजिक सुरक्षा परियोजना - ८६

समाजवादी सकार - ५८, ७२, ११४,

१६८ - १८१

सोवियत संघ - ३२, ४१, ४२, ५३,

८०, ८१, ६१, ११४, ११५,

१२६ - १२९, १६८, १८१,

१८६, १८७, १८९, २३८

- भारतमें संघ - १२४ - १२६

अफगानिस्तान और काश्मीरमें

संघ १२६

— दशो पंचवर्षीय योजना — १६१

सोवियत इस्लाम की मरान - ११५

(भारतीय इस्लाम प्रतिनिधि मंडल

देखिये)

स्वेन - ६

स्थिति जे - ५७, ८१, ६१, १६८ -

१८१

सुरत अधिवेशन - ४७

सीरिया - १२६

स्वतंत्र व्यवसाय संघ - १५१

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका - ४, १६, २८,

३३, ३५, ३६, ४०-४३, ४५, ५४,

५५, ५७, ५८, ६१-६३, ६६, ६८,

६९, ८२, ८८, ९०, ९१, १०४,

१०८, १६० - १६१, २३७ - २३८.

- भारतमें स्वायत्त राज - ६४-६५

- राजनीतिक पार्टी - ६२.

सूची

— लेजोमंदीके ताम्र - १६४, १६५

साक्षरता - १६८

सयुक्तसोवियत सोशलिस्ट -

रिपब्लिक (रूस और सोवियत यूनियन
देखिये) - ४, ६०

सम्राज सेनायें - २६

सीमान सेनायें - ६

सद-अस्तित्व - वृद्ध भूमि - १८३-१८५

स्वतंत्र एशिया समिति - २२०

सामुदायिक परियोजना प्रस्तावन - ८७,
१६१

सविधान - २०, २२-२३, २६

श

धीनगर - १६

धीरामल पोद्दी - १००,

धीरेका - ११०, १२६

शरणार्थीसंपत्ति - ४४

शांतिवादी - ४१

धर्मदान - १६१

ह

हाथ करण - १५५

हिमाचल प्रदेश - २६

हिन्दो साम्राज्यवाद - ६६

हिन्दुमहाभा - ७, १५, २४, ८४,
८५, ६७, २००, २१२, २१६,
२१७

हिन्दुस्तान मखोन दल केस्टी - १३९

होरोशिमा - ३३

हिटलर - ३२

हंगरी - ५३

हैदराबाद - १३, ८६-२२, ८५,
२०१ - निजाम - २१, २६-२८

हिन्देशिया - ४२, ५६, २४०

१६ राष्ट्रीय सम्मेलन - ३०

हिन्द चीन - ८८, ८९, १०३, १८८
(वित्ताम भी देखिये)

ज

जिन्दगीय समझौते - ५२